बी.ए. तृतीय वर्ष

संस्कृत, द्वितीय प्रश्नपत्र

काव्य, छन्द एवं अलंकार

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Hariram Raidas
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal

2. Dr H.P.Dikxit
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

3. Dr.O .S.Jamra
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr Anjali Singh
   Director
   Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr Hariram Raidas
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

5. Dr H.P.Dikxit
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

6. Dr .S.Jamra
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal

COURSE WRITERS

Dr Mamta Ghatol, Former Guest Faculty, MP Bhoj University.
Units (3, 4.3, 4.5)

Dr Asha Kiran, Assistant Editor of Vaisharadi, Sahitya, Purnanetihas Department, S.L.B.S.R.S. Vidyapeetha, New Delhi
Unit (4.0-4.1, 4.2, 4.4, 4.6, 4.7-4.11)

Dr Pratibha Gautam, Research Scholar - Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, New Delhi
Unit (5)

Dr Mamta Rani, Aligarh Muslim University, Aligarh (UP)
Unit (2)

Shashi Pal Sharma, Former Sanskrit News Editor/Reader on Panel, Prasar Bharti New Delhi
Unit (1)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

काव्य, छन्द एवं अलंकार

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 किरातार्जुनीयम् – प्रथम सर्ग (व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्न)	**इकाई 1** : किरातार्जुनीयम् – प्रथमः सर्गः (व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्न) **(पृष्ठ 3–32)**
इकाई–2 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क (व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्न)	**इकाई 2** : उत्तररामचरितम् प्रथम अङ्क **(पृष्ठ 33–70)**
इकाई–3 नवस्पन्द – (कवि परिचय)– अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ रचनाएं– पञ्जरबद्धःशुकः, वल्लभविलापः, अन्त्यजोद्धारः, मीराचरितम्, भारतीवसन्तगीतिः, भारतम्, नवा कविता, पुरुषार्थ संहिता (व्याख्या एवं प्रश्न)	**इकाई 3** : नवस्पन्दः – आधुनिक काव्यकार – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ एवं उनकी रचनाएं **(पृष्ठ 71–97)**
इकाई–4 संस्कृत काव्य–विधाओं का परिचयः– (महाकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य)	**इकाई 4** : संस्कृत काव्य–विधाओं का परिचयः (महाकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य) **(पृष्ठ 99–136)**
इकाई–5 छन्द एवं अलंकार– अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थम, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, स्रग्धरा। अलंकार– अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास विभावना, विशेषोक्ति (काव्यप्रकाश से)	**इकाई 5** : छन्द एवं अलंकार **(पृष्ठ 137–162)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 किरातार्जुनीयम् – प्रथमः सर्गः (व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्न) **3–32**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 'किरातार्जुनीयम्' प्रथम सर्ग की विषय–वस्तु
1.3 किरातार्जुनीयम् –प्रथमः सर्गः – व्याख्या भाग
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 उत्तररामचरितम् प्रथम अङ्क **33–70**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क की विषय–वस्तु
2.3 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क – व्याख्या भाग
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 नवस्पन्दः – आधुनिक काव्यकार – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ एवं उनकी रचनाएं **71–97**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 नवस्पन्दः– (आधुनिक काव्यकार एवं उनकी काव्य रचनाएं) –कवि परिचय – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ
3.3 रचनाएं– पंजरबद्धः शुकः, वल्लभविलापः, अंत्यजोद्धारः, मीराचरितं, भारतीवसंतगीतिः, भारतं, नवा कविता, पुरुषार्थ संहिता (व्याख्या एवं प्रश्न)
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 संस्कृत काव्य–विधाओं का परिचयः (महाकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य) **99–136**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 महाकाव्य
4.3 गीतिकाव्य
4.4 गद्यकाव्य
4.5 कथासाहित्य
4.6 चम्पूकाव्य
4.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.8 सारांश
4.9 मुख्य शब्दावली
4.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 छन्द एवं अलंकार **137–162**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 छन्द–अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थम्, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, स्रग्धरा।
5.3 अलंकार–अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विभावना, विशेषोक्ति (काव्यप्रकाश से)
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक *'काव्य, छन्द एवं अलंकार'* का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. संस्कृत पाठ्यक्रम के अनुरूप किया गया है।

संस्कृत भाषा विश्व की सभी परिष्कृत भाषाओं में सबसे प्राचीनतम है। इस भाषा में महाकाव्य गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य जैसी काव्य–विधाओं का विकास हुआ है। इस सभी विधाओं से सम्बन्धित अनेक काव्य–ग्रन्थों की रचनाएं कवियों ने की है। संस्कृत भाषा में 'काव्य' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। 'काव्य' का शाब्दिक अर्थ है– काव्यात्मक रचना अथवा कवि की कृति।

'कवेः कर्म काव्यम्' – जिसे 'कवि के कर्म' के रूप में जाना जाता है, वह काव्य कहलाता है। शब्दों के माध्यम से किसी विषय का आकर्षक विवरण प्रस्तुत करना ही काव्य है। संस्कृत वाङ्मय में सामान्यतः लय को बताने के लिए छन्द शब्द का प्रयोग किया जाता है। विशिष्ट अर्थों में वर्णों की संख्या और स्थान से सम्बन्धित नियमों को ही छन्द कहा जाता है।

इसी प्रकार से काव्य रूपी काया की शोभा में वृद्धि करने वाले अवयव को अलंकार कहते हैं। अलंकार का शाब्दिक अर्थ है– आभूषण अर्थात् अलंकार शब्दों के माध्यम से काव्यों को अलंकृत करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'काव्य, छन्द एवं अलंकार' के लिए निर्धारित समस्त अहम आयामों की अभिव्यंजना करती है। अध्येताओं की सुविधा के लिए प्रत्येक विषय का विश्लेषण करने से पूर्व उसका परिचय और उद्देश्य स्पष्ट किया गया है। उनके स्व–परीक्षण के लिए विषय–वस्तु के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तम्भ के अन्तर्गत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में विभाजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

प्रथम इकाई 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग पर आधारित है। इसमें किरातार्जुनीयम् की विषय–वस्तु एवं प्रथम सर्ग की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

द्वितीय इकाई में उत्तररामचरितम् नाटक के प्रथम अङ्क का प्रतिपादन किया गया है इसमें नाटक की विषय–वस्तु तथा प्रथम अङ्क की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

तृतीय इकाई में हम अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराम, जानकीवल्लभ शास्त्री तथा श्रीनिवास – इन कवियों का परिचय एवं इनकी रचनाओं पञ्जरबद्धः शुकः, वल्लभविलापः, अन्त्यजोद्धारः मीराचरितम्, भारतीवसन्तगीतिः, भारतम्, नवा कविता, पुरुषार्थ संहिता के विषय में अध्ययन करेंगे।

चतुर्थ इकाई में संस्कृत काव्य विधाओं जैसे–महाकाव्य, गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

पंचम इकाई छन्द एवं अलंकार पर आधारित है। इसमें अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थम्, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, स्रग्धरा छन्दों एवं अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विभावना तथा विशेषोक्ति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 1 किरातार्जुनीयम् – प्रथमः सर्गः (व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्न)

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 'किरातार्जुनीयम्' प्रथम सर्ग की विषय–वस्तु
1.3 किरातार्जुनीयम् –प्रथमः सर्गः – व्याख्या भाग
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

महाकवि भारवि रचित 'किरातार्जुनीयम्', महाकवि माघ द्वारा रचित 'शिशुपालवधम्' और महाकवि श्रीहर्ष के द्वारा रचित 'नैषधीयचरितम्' संस्कृत साहित्य जगत् में महाकाव्यों की बृहत्त्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं। जहाँ 'शिशुपालवधम्' में जटिल पदावली के कारण सामान्य पाठक को रसास्वादन में बाधा आती है और 'नैषधीयचरितम्' का पांडित्य–पूर्ण दुरूहग्रंथियों के कारण अर्थावबोध सरल नहीं रह जाता, वहीं बृहत्त्रयी के इस मूर्धन्य काव्य किरातार्जुनीयम् की सरल और कोमलकांत पदावली पाठक को सहज ही आकर्षित करती है।

महाभारत के वनपर्व में पांडवों के वनवास के अंतर्गत किरातवेशधारी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध की कथा को आधार बनाकर इस महाकाव्य की रचना भारवि ने की है। उसी कथा के अनुरूप रचना का नामकरण 'किरातार्जुनीयम्' रखा गया है। भारवि ने कथा के अंतर्गत राजनीति, कूटनीति, राजधर्म तथा सामान्य नीति का हृदयग्राहि–विवेचन किया है। यद्यपि महाकाव्य में अनेक रसों की छटा यत्र–तत्र व्याप्त है तथापि वीररस अङ्गीरस है।

भारवि की एकमात्र रचना किरातार्जुनीयम् ही उपलब्ध है। यद्यपि इसकी अनेक टीकाएं विद्वानों ने की हैं तथापि मल्लिनाथ की घंटापथ–टीका का विशिष्ट स्थान है। आंग्ल भाषा में भी इसके अनेक अनुवाद हो चुके हैं। जर्मन भाषा में इसका अनुवाद कार्ल कैप्लर नामक विद्वान् ने किया है। यह हार्वर्ड प्रकाशन की ओरिएंटल सीरीज में प्रकाशित हुआ है।

किरातार्जुनीयम् की कथा

दुर्योधन और शकुनि द्वारा रचित कपट द्यूत में धृतराष्ट्र की आज्ञा से विवश युधिष्ठिर द्यूतरत होकर जब अंततोगत्वा इंद्रप्रस्थ राज्य को गंवा बैठे, तब उन्हें बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए निकलना पड़ा। एक श्रेष्ठ राजा राज्य भ्रष्ट होने पर भी अपने से अधिक अपनी प्रजा के लिए चिंतित रहता है। यही कारण है कि प्रजावत्सल

युधिष्ठिर ने अपनी प्रजा की चिंता करते हुए दुर्योधन की गतिविधियों को जानने के लिए वनेचर को पता लगाने के लिए भेजा। ब्राह्मणवेषधारी वह वनेचर जब वहां से जानकारी लेकर लौटा, वहीं से 'किरातार्जुनीयम्' के कथानक का प्रारंभ होता है।

लौटने पर उस गुप्तचर ने बताया कि दुर्योधन बड़ी चतुराई से उस राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के प्रयास में संलग्न है जिसे उसने कपट–द्यूत द्वारा प्राप्त किया है। वह जानता है कि पांडवों के लौटने पर उनके राज्य को संभाले रखना उसके लिए अत्यंत कठिन होगा। इसीलिए वह युधिष्ठिर की प्रजा को अपने पक्ष में करने की नीति पर चल रहा है। गुप्तचर के जाने के बाद युधिष्ठिर द्रौपदी के सम्मुख अपने सभी भाइयों को गुप्तचर से प्राप्त जानकारी बताते हैं। यह सब जानकर द्रौपदी अत्यंत क्षुब्ध होती है और युधिष्ठिर को स्मरण कराती है कि दुर्योधन के कारण वे सब किस दुर्दशा को झेल रहे हैं। एक अच्छा राजा शर्तों में बंधकर अपनी राज्यश्री को पुनः प्राप्त करने से नहीं रुकता। अतः युधिष्ठिर को तत्काल हस्तिनापुर पर आक्रमण करना चाहिए। भीमसेन भी द्रौपदी के कथन का समर्थन करते हैं।

युधिष्ठिर ने शांतिपूर्ण तरीके से भीमसेन व द्रौपदी के मत को सुना और धर्म के आधार पर अच्छे क्षत्रिय के द्वारा प्रतिज्ञा–भंग को अनुचित बताया। इस बातचीत के मध्य कृष्ण द्वैपायन व्यास अर्थात् महर्षि वेदव्यास का वहाँ आगमन होता है। पांडवों द्वारा भली–भांति सत्कृत महर्षि वेदव्यास उन्हें समझाते हैं कि दुर्योधन शर्त की अवधि समाप्त होने पर उनका राज्य अवश्य लौटा देगा, ऐसी सम्भावना नहीं है। युद्ध में जो जीतेगा राज्य का अधिकारी वही बन पाएगा। एक ओर पितामह भी, आचार्य द्रोण और कर्ण जैसे महारथी दुर्योधन के पक्ष में होकर लड़ेंगे। अतः तदनुरूप शक्ति संवर्धन की बड़ी आवश्यकता होगी अन्यथा पांडवों की पराजय की संभावना बढ़ जाएगी। इसलिए महर्षि वेदव्यास अर्जुन को प्रेरित करते हैं कि वह देवराज इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या का मार्ग अपनाए। एतदर्थ वे इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए विशेष मंत्र विद्या भी प्रदान करते हैं। इन्द्र के वरदान से अर्जुन ऐसे शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो जाएंगे कि कौरव की सेना पर विजय पाना उनके लिए सरल हो जाएगा।

यद्यपि अपने भाइयों और द्रौपदी से अलग होने का विचार अर्जुन के लिए विक्षोभकारक था किन्तु कर्तव्य बुद्धि से वे इसके लिए तत्पर हो जाते हैं। इन्द्र के पर्वत पर अर्जुन की कठिन तपस्या प्रारंभ होती है। अर्जुन की तपस्या के प्रभाव से पर्वत पर वृक्ष स्वयं फूल देने लगते हैं तथा अन्य अनुकूल शुभ लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इन्द्र ने अर्जुन की परीक्षा के लिए अप्सराओं को भी भेजा, किन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन हर परीक्षा में सफल रहे। अंततोगत्वा मुनि वेषधारी इन्द्र स्वयं आए और उन्होंने अर्जुन को लौकिक लक्ष्यों का त्याग करके परमार्थ सिद्धि का उपदेश दिया, किन्तु कौरवों के कपट व्यवहार का उल्लेख करके अर्जुन ने शत्रुओं से प्रतिशोध लेने की अनिवार्यता को सिद्ध किया। इन्द्र ने संतुष्ट होकर अपने औरस पुत्र अर्जुन को शिव को प्रसन्न करने के लिए तपोवृद्धि का मार्ग बताया इत्यादि कथानक विभिन्न सर्गों में पठनीय है।

प्रस्तुत इकाई में किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग की विषय–वस्तु और व्याख्या का वर्णन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- 'किरातार्जुनीयम्' की विषय–वस्तु को जान पाएंगे;
- 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के पात्रों से भली–भाँति परिचित हो पाएंगे;
- किरात के द्वारा बताए गए नीति मार्ग के विषय में जान पाएंगे;
- अलंकार सौन्दर्य का अनुभव कर पाएंगे।

1.2 'किरातार्जुनीयम्' प्रथम सर्ग की विषय–वस्तु

भारवि का समय 550 ई. से 620 ई. के मध्य माना गया है। किरातार्जुनीयम् नामक सुप्रसिद्ध महाकाव्य भारवि की एकमात्र रचना है। इस काव्य का कथानक महाभारत से लिया गया है किन्तु कवि ने अपनी कल्पनाओं तथा वर्णन–प्रतिभा के द्वारा इस महाकाव्य का विस्तार 18 सर्गों तक कर दिया है। महाकवि भारवि ने संस्कृत साहित्य में अपने अर्थ गौरव के लिए बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है।

'भारवेऽर्थ गौरवम्' अर्थात् थोड़े से शब्दों में अधिक अर्थ को भर देना। भारवि ने अपने व्यावहारिक एवं शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर नैतिक सिद्धान्तों की स्थापना की है। कुछ वाक्य जनसामान्य में लोकोक्ति के रूप में प्रयोग किये जाते हैं जैसे–

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।' अर्थात् हितकारी वचन कभी भी मन को प्रिय नहीं लगते।

इस महाकाव्य का प्रारम्भ द्वैतवन में, जहां कि महाराज युधिष्ठिर द्यूतक्रीड़ा में दुर्योधन से हारकर तेरह वर्ष के वनवास के लिए निवास कर रहे थे, युधिष्ठिर के द्वारा दुर्योधन के राज्य की शासन–व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करने के लिए नियुक्त गुप्तचर के लौट आने से होता है। द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण भी प्रथम सर्ग में वर्णित है।

दूसरे सर्ग में युधिष्ठिर और भीष्म का वार्तालाप, भीम के द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता प्रदर्शित करना, व्यास जी का आगमन वर्णित हैं।

तीसरे सर्ग में व्यास जी के द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने का उपदेश, व्यास द्वारा भेजे गए यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान।

चौथे सर्ग में अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचना तथा शरद् ऋतु का मनोरम चित्रण किया गया है।

पाँचवें सर्ग में हिमालय वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्द्रिय–संयम का उपदेश देना वर्णित है।

छठे सर्ग में अर्जुन की तपस्या, इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सराओं के द्वारा तपस्या में विघ्न डालना वर्णित है।

सातवें सर्ग में गन्धर्वों एवं अप्सराओं के विलास वर्णन, वन विहार आदि प्रतिपादित है।

आठवें सर्ग में गन्धर्वों तथा अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा एवं जल–क्रीड़ा का मनोहर चित्रण है।

नवें सर्ग में सायंकाल, चन्द्रोदय, मानभङ्ग तथा प्रभात आदि का वर्णन किया गया है।

दसवें सर्ग में अप्सराओं की चेष्टाएं और उनकी विफलता वर्णित है।

ग्यारहवें सर्ग में मुनि–वेष में इन्द्र का आगमन, इन्द्र–अर्जुन का संवाद तथा अर्जुन को इन्द्र के द्वारा शिव–आराधना का उपदेश है।

बारहवें सर्ग में अर्जुन की शिव–आराधना, अर्जुन के तप से दग्ध सिद्ध तापसियों का शिव के पास जाना तथा अर्जुन के तप के तेज का कथन करना, किरात वेशधारी शिव का आगमन प्रतिपादित किया गया है।

तेरहवें सर्ग में शूकर रूपधारी मूक दानव पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण–प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के अनुचर तथा अर्जुन का विवाद वर्णित किया गया है।

चौदहवें सर्ग में सेना सहित शिव का आगमन तथा सेना के साथ अर्जुन का युद्ध वर्णित है।

पन्द्रहवें सर्ग में अर्जुन तथा शिव का घोर युद्ध, किरात के युद्ध–कौशल को देखकर अर्जुन का क्रोधित होना तथा परास्त होने पर अपनी विफलता पर आश्चर्य करना वर्णित किया गया है।

सौलहवें सर्ग में शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध तथा मल्लयुद्ध का वर्णन किया गया है।

सत्रहवें सर्ग में शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध प्रतिपादित है।

अठारहवें सर्ग में अन्त में अर्जुन के बल पर प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने दर्शन देकर अपना अमोघ पाशुपत अस्त्र देकर अर्जुन की अभीष्ट सिद्धि को पूर्ण किया।

इस महाकाव्य में प्रकृति–वर्णन एवं युद्ध–वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है, प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार माङ्गलिक शब्दों का प्रयोग करके महाकाव्य को मङ्गलमय बनाया गया है।

यहां पर प्रस्तुत इकाई में 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग को प्रस्तुत किया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किरातार्जुनीयम् के रचयिता का क्या नाम है?
   (क) भारवि (ख) भवभूति
   (ग) माघ (घ) भास
2. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में कुल कितने सर्ग हैं?
   (क) 20 सर्ग (ख) 18 सर्ग
   (ग) 14 सर्ग (घ) 8 सर्ग
3. 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य का आरम्भ किस शब्द से हुआ है?
   (क) सरस्वती (ख) पार्वती
   (ग) श्रियः (घ) लक्ष्मी

टिप्पणी

1.3 किरातार्जुनीयम् – प्रथमः सर्गः – व्याख्या भाग

यहां पर किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग की व्याख्या की जा रही है।

1. **श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं**
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।१.१।।

अन्वय– कुरूणाम् अधिपस्य (दुर्योधनस्य) श्रियः प्रजासु पालनीं वृत्तिं वेदितुम् यम् (युधिष्ठिरः) अयुङ्क्त, सः वर्णिलिङ्गी विदितः वनेचरः युधिष्ठिरं समाययौ।

अर्थ– कौरवों के राजा (दुर्योधन) के राज्य की और प्रजा की रक्षा करने के व्यवहार को जानने के लिए जिसको (ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर ने) नियुक्त किया था, ब्रह्मचारी का वेष धारण किए हुए वह किरात (वनेचर) सब जानकारी प्राप्त करके युधिष्ठिर के पास द्वैतवन में आ गया।

(**व्याकरणम्**– विद् + तुमुन् = वेदितुम्, वर्णिनः लिङ्गानि यस्य सः– बहुव्रीहि, वने चरति इति = वनेचरः– सप्तमी अलुक् उपपद तत्पुरुषः)

व्याख्या– कपट–द्यूत में हारे हुए महाराज युधिष्ठिर जब बारह वर्ष के वनवास में थे तब उन्होंने अपनी प्रजा की चिंता करते हुए पांडवों के घोर शत्रु दुर्योधन के राजकाज की जानकारी के लिए एक वनवासी को नियुक्त किया। वह वनवासी एक वर्णी (ब्रह्मचारी) का भेष बनाकर सारी जानकारी प्राप्त करके लौटा, यही इस श्लोक में बताया गया है।

विशेष–यह पद वंशस्थ छन्द में है। जिसका लक्षण है 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' अर्थात् वंशस्थ छंद के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण के क्रम से 12 मात्राएं होती हैं। 'द्वैतवने वनेचर' में वृत्यानुप्रास अलंकार है।

2. **कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे**
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।।१.२।।

अन्वय– कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनो न विव्यथे (यतो) हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति।

अर्थ– (युधिष्ठिर को) प्रणाम करने के पश्चात् उस किरात को शत्रु के द्वारा जीते गए राज्य के विषय में सारा वृत्तान्त बताते हुए तनिक भी मन की व्यथा नहीं हुई क्योंकि जो हितैषी होते हैं, वे प्रिय लगने वाला झूठ नहीं बोला करते।

(व्याकरणम्– कृतः प्रणामः येन तस्य–कृतप्रणामस्य– बहुव्रीहिः, प्र + वच् + तुमुन् = प्रवुक्तम्, हितस्य एषिणः = हितैषिणः – षष्ठी तत्पुरुष)

व्याख्या– इस श्लोक का आशय है कि गुप्तचर के रूप में भेजे गए किरात ने युधिष्ठिर को दुर्योधन के राज्य की सब बातें बिना किसी लाग–लपेट के बताई, भले ही

उसमें शत्रु की प्रशंसा भी सम्मिलित हो। स्वामी के सामने सत्य को छिपाकर इसलिए झूठ कह दिया जाए कि कहीं उन्हें सच्चाई जानकर कष्ट पहुँचेगा, ऐसा गुप्तचर का कर्तव्य भी नहीं होता। जो गुप्तचर अपने स्वामी का हितैषी होता है वह सत्य को नहीं छिपाता। मनुस्मृति में भी कहा गया है "प्रियं च नानृतं ब्रूयात्।"

विशेष– छन्द पूर्ववत्। महीं मही भुजे में वृत्यानुप्रास अलंकार तथा 'न हि प्रियं .... हितैषिणः' इस सामान्य कथन द्वारा विशिष्ट संदर्भ के समर्थन से अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. **द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो**
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे।।१.३।।

अन्वय– रहसि स द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः (युधिष्ठिरस्य) अनुज्ञाम् अधिगम्य सौष्ठवौदार्यशालिनीम् वाचम् आददे इति।

अर्थ– एकान्त में उस (किरात) ने शत्रुओं का विनाश चाहने वाले राजा (युधिष्ठिर) की अनुमति प्राप्त करके नपी तुली और खुले शब्दों वाली वाणी का आश्रय लेकर कहा।

व्याख्या– संदेश को स्पष्टाक्षरों में बता पाना अच्छे गुप्तचर का लक्षण होता है। अतः गुप्तचर किरात ने अपने इसी गुण को प्रकट करके ऐसी स्पष्ट वाणी में जानकारी प्रकट की जिसमें कुछ भी छिपाया नहीं गया था। 'औदार्यशालिनी' का विलोम 'कार्पण्यशालिनी' होता है।

कार्पण्यशालिनी वाणी से तथ्यों की कंजूसी करके कई बातें छिप जाती हैं, जो कि गुप्तचर का दुर्गुण ही कहा जा सकता है। इस गुप्तचर की गुणवत्ता यही है कि उसने कोई भी तथ्य न छिपाते हुए समस्त तथ्यों को औदार्यशाली वाणी में प्रकट किया।

विशेष– 'वाचम्' के लिए 'सौष्ठवौदार्यशालिनीम्' इस पद में दो विशेषण होने से परिकर अलंकार है। 'आददे का अर्थ लेना होता है, तथापि वाणी का आश्रय लेकर ही बात' कही जाती है अतः 'आददे' पद यहाँ इसी आशय को प्रकट कर रहा है।

4. **क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो**
न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।१.४।।

अन्वय– हे नृप! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः वञ्चनीयाः न (भवेयुः), अतः असाधु साधु वा (यदुक्तं मया भवेत् तत् त्वम्) क्षन्तुम् अर्हसि यतो हि हितं च मनोहारि वचःदुर्लभं (भवति)।

अर्थ– (वह वनेचर बोला) हे राजा, कार्यों में नियुक्त किए गए सेवकों के द्वारा गुप्तचरों के नेत्रों से ही देखने वाले स्वामियों (राजाओं) को वंचित नहीं किया जाना

चाहिए, अतः मेरे द्वारा जो कुछ भी बुरा–भला कहा जाए उसे आप क्षमा कीजिएगा क्योंकि जो हितकर भी हो और मनभावन भी हो ऐसा वचन दुर्लभ होता है।

व्याकरणम्– क्षम् + तुमुन् = क्षन्तुम्।

5. **स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं**
हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।।१.५।।

अन्वयः– यः (सखा) अधिपं साधु न शास्ति स किं सखा यः (प्रभुः/स्वामी) हितात् न संशृणुते सः किम्प्रभुः। सदा अनुकूलेषु नृपेषु च अमात्येषु सर्वसम्पदः रतिं कुर्वते।

अर्थ– जो मित्र/मंत्री राजा को उचित परामर्श नहीं देता वह (वस्तुतः) बुरा मित्र/मंत्री होता है तथा जो राजा (उसके) हित के लिए कही गई बात को भली–भांति नहीं सुनता वह दुष्ट राजा होता है। (हित को समझने–समझाने के विषय में) जो राजा और मंत्री अनुकूल होते हैं उनके प्रति सम्पत्तियां अनुरक्त/आकर्षित होती हैं।

(**व्याकरण**– कुत्सितः सखा किं सखा–कर्मधारय समास, कुत्सितः प्रभु = किम्प्रभुः – कर्मधारय समास)

व्याख्या– इस श्लोक में मंत्री और राजा के पारस्परिक संबंधों की श्रेष्ठता की कसौटी बताई गई है। दोनों को हितकथन व श्रवण के विषय में परस्पर अनुकूल होना चाहिए। जो मंत्री हित की बात नहीं करता वह राजा के द्वारा त्याज्य हो जाता है तथा हित का वचन न सुनने वाला राजा मंत्री के लिए त्याज्य हो जाता है। रावण का त्याग करने से पहले विभीषण ने भी उसे कहा था–

सुलभाः पुरुषा राजन्! सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभाः।।16।।
निवार्यमाणस्य मया हितैषिणो
न रोचते ते वचनं निशाचर।
परीतकाला हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्।
वाल्मीकिरामायणम् युद्धकाण्डम्–दशमः सर्गः।।21।।

6. **निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः**
क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।
तवानुभावोऽयमबोधि यन्मया
निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्।।१.६।।

अन्वयः– क्व निसर्गदुर्बोधम् भूपतीनां चरितं (च) क्व? अबोधविक्लवाः जन्तवः? क्व? अयं तव अनुभावः यत् मया विद्विषां निगूढतत्त्वं नयवर्त्म वेदि।

अर्थ– (किरात ने कहा) कहाँ तो राजाओं का व्यवहार जिसे स्वभाव से ही जानना कठिन होता है और कहाँ ज्ञानाभाव से व्याकुल (मुझ जैसे साधारण) प्राणी? यह

तो आपसे ही कुछ सीखने का प्रभाव है कि मैं शत्रुओं के छिपे हुए नीति मार्ग को जान पाया हूँ।

टिप्पणी

व्याख्या– इस श्लोक में किरात ने नीतिमार्ग (नयवर्त्म) के महत्त्व को प्रकट किया है। नीतिमार्ग के अंतर्गत छह गुणों का समावेश होता है। ये हैं– सन्धि, विग्रह, यान, आसन, दम और द्वैधीभाव। ज्ञान के साथ–साथ विनय का गुण भी इस किरात में पर्याप्त है। यह भी किरात के इस कथन में स्पष्ट हो रहा है।

विशेष– दो विपरीत स्थितियों की तुलना से यहाँ विषम अलंकार है। 'निसर्गदुर्बोधम्' और 'अबोधविक्लवाः' ये दो विशेषण पद आगे आने वाले दो संज्ञा पर विशेष्यों पर क्रमशः लागू हो रहे हैं अतः यथासंख्य अलंकार होने से संकर अलंकार भी है।

7. **विशङ्कमानो भवतः पराभवं**
नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।।१.७।।

अन्वयः– नृपासनस्थः अपि भवतः वनाधिवासिनः पराभवम् विशङ्कमानः सुयोधनः दुरोदरच्छद्मजितां जगतीं नयेन जेतुं समीहते।

(**व्याकरणम्**– नृपस्य आसने तिष्ठति इति = नृपासनस्थः, षष्ठी तत्पुरुष व उपपद तत्पुरुष समास, वनम् अधिवासी तस्मात् वनाधिवासिनः द्वितीया तत्पुरुष, दुरोदरे छद्मना जिता, ताम्–दुरोदरच्छद्मजिताम्– सप्तमी तृतीया तत्पुरुष, जि + तुमुन् = जेतुम्।)

अर्थ– राजसिंहासन पर बैठा होने पर भी आप वनवासी (युधिष्ठिर) से पराजय से भयभीत दुर्योधन जुए में कपट से जीते गए राज्य को नीति के बल से (पुनः) जीत लेना चाहता है।

व्याख्या– किरात के इस वचन से स्पष्ट है कि दुर्योधन इस बात से भयभीत है कि युधिष्ठिर के इन्द्रप्रस्थवासी प्रजाजन उसका विरोध करके उसे अपदस्थ न कर डालें, इसलिए वह नीतिमार्ग के हथकंडे साम, दाम, दंड और भेद अपनाकर उन्हें अपने वश में करने के प्रयत्न कर रहा है।

विशेष– 'जेतुं जगतीम्' में अनुप्रास अलंकार है। 'विशंकमानः नयेन जेतुम्' का कारण 'दुरोदरच्छद्मजिताम्' पदं में सन्निहित होने से यहां काव्यलिंग अलंकार है।

8. **तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया**
तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसंगमाद्वरं
विरोधोऽपि समं महात्मभिः।।१.८।।

अन्वयः– तथापि सः जिह्मः भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति। अनार्यसङ्गमात् महात्मभिः समं भूतिं समुन्नयन् विरोधः अपि वरं भवति।

(**व्याकरणम्**– गुणानां सम्पदा = गुणसम्पदा षष्ठी तत्पुरुष, अनार्याणां सङ्गमात् = अनार्यसङ्गमात्– षष्ठी तत्पुरुष, महान् आत्मा येषां तैः = महात्मभिः– बहुव्रीहि, सम् + उत् + नी + शतृ = समुन्नयन्)

अर्थ– (आपसे भयभीत है) फिर भी वह टेढे व्यवहार वाला (दुर्योधन) गुणों की संपत्ति से (अपना) उज्ज्वल यश फैला रहा है। दुष्टों की तुलना में महान लोगों के साथ किया गया ऐश्वर्यवर्धक विरोध/वैर भी अच्छा ही होता है।

व्याख्या– दुष्ट व्यक्ति उच्चपद पर बैठ कर भी प्रायः अपनी उजली छवि बनाने के लिए प्रजा के कल्याण करने के लिए बाध्य होते हैं अतः अपने दुर्गुणों को छिपाकर सद्गुणों का प्रदर्शन करते रहते हैं। इससे प्रजा को कुछ भलाई भी प्राप्त होती रहती है। दुर्योधन ऐसा व्यवहार इसलिए कर रहा है क्योंकि युधिष्ठिर की प्रजा युधिष्ठिर के सद्व्यवहार की अपेक्षा यदि उसके दुर्व्यवहार से पीड़ित होगी, तब जन–आक्रोश उसे ले डूबेगा।

विशेष– 'भवज्जिगीषया यशः तनोति' में कारण की उपस्थिति और अनार्यसंगमात् महात्मभिः सह विरोधोऽपि वरं भवति' इस सामान्य कथन से विशिष्टाचरण के समर्थन से काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास अलंकार का संकर है।

9. **कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी–**
मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।
विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा
वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्।।१.९।।

अन्वयः– कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीम् प्रपित्सुना (सुयोधनेन्) तेन अस्ततन्द्रिणा नक्तन्दिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितन्यते।

(**व्याकरणम्**– कृतः अरीणां षड्वर्गस्यजयः येन तेन कृतारिषड्वर्गजयेन, अगम्यं रूपं यस्याः ताम् = अगम्यरूपाम्– बहुव्रीहि नक्तं च दिवां च = नक्तन्दिवम्– समाहार–द्वन्द्व, अस्ता तन्द्रां यस्य तेन = अस्ततन्द्रिणा– बहुव्रीहि।)

अर्थ– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छह शत्रुओं के वर्ग पर विजय के द्वारा जो अगम्य मनुष्य पदवी प्राप्त होती है, उसे पाने की इच्छा वाला वह (दुर्योधन) रात दिन (के अपने कार्यों) का विभाजन करके बिना आलस्य नीति के द्वारा (अपने) पौरुष का विस्तार कर रहा है।

व्याख्या– काम क्रोध आदि छहों शत्रुओं के वर्ग पर विजय प्राप्त करके मनुष्य सर्वश्रेष्ठ मनुष्य बनता है। दुर्योधन भी इस श्रेष्ठ मनुष्य के पद को पाना चाहता है। वस्तुतः यह उसके लिए संभव हीं नहीं। ये छहों दोष उसके स्वभाव का अंग न होते तो वह पांडवों के साथ और द्रौपदी के साथ वैसा व्यवहार कभी न करता जैसा उसने किया था। 'स्वभावो दुरतिक्रमः' तथा 'अतीत्य हि गुणान् स्र्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते' के अनुसार उसका यह स्वभाव छूट नहीं सकता, तथापि राजनीतिक दांव–पेंच चलकर ही वह छह शत्रुओं पर विजय पाए हुए जैसा दिखना चाहता है, यही इस कथन से ध्वनित हो रहा है।

विशेष– 'पदवीं प्रपित्सुना' में अनुप्रास अलंकार है। 'अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना' के प्रयोजन से 'पौरुषं वितन्यते' की क्रिया होने से काव्यलिंग अलंकार है।

10. **सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः**
समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः
कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।।१.१०।।

अन्वयः– सः सन्ततं गतस्मयः (भूत्वा) अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन् च समानमानान् सुहृदः बन्धुभिः च बन्धुतां कृताधिपत्याम् इव साधु दर्शयते।

(**व्याकरणम्**– गतः स्मयः (गर्वः) यस्य सः = गतस्मयः– बहुव्रीहिः, समानः मानः येषां तान्– बहुव्रीहि, कृतम् आधिपत्यम् यया ताम्– बहुव्रीहि)

अर्थ– वह दुर्योधन निरंतर सेवकों को प्रिय सखाओं के समान, समान सम्मान वाले मित्रों को संबंधियों के समान और संबंधियों को अपने ऊपर शासन करने वालों के समान जैसा भाव दिखलाता हुआ, निरंतर गर्व रहित आचरण का प्रदर्शन कर रहा है।

व्याख्या– दुर्योधन जिस दिखावटी व्यवहार का प्रदर्शन कर रहा है उसी का इस श्लोक में वर्णन हुआ है। जिस अधम स्वभाव के व्यक्ति ने अपने भाइयों पर अत्याचार किए हों वह वास्तव में इस स्वभाव का हो ही नहीं सकता। सेवकों को मित्रों के समान आदि दिखावटी प्रदर्शन करने के द्वारा वह अपनी दुर्जनता को सज्जनता के ढोंग से ढकने का प्रयास कर रहा है, यही गुप्तचर के कथन का आशय है।

विशेष– 'समानमानान्' में मकार एवं नकार होने से अनुप्रास अलंकार है।

11. **असक्तमाराधयतो यथायथं**

विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्न

बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।।१.११।।

अन्वयः– यथायथं विभज्य समपक्षपाततया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य गुणानुरागात् यः त्रिगणः सख्यम् ईयिवान् इव (सः) परस्परं न बाधते।

अर्थ– (धर्म, अर्थ और काम इन) तीनों का जो समूह है उसका ठीक प्रकार से विभाजन करके पक्षपात रहित सेवन करने के कारण वे धर्म आदि परस्पर मित्र बन गए हैं, वह इस (दुर्योधन) के गुणों के प्रति स्नेह से आपस में बाधित नहीं हो रहा। (अर्थात् वह इन तीनों का सेवन सावधानीपूर्वक इस तरह से कर रहा है कि उसके धर्म, अर्थ और काम का निर्वाह बिना किसी बाधा के कुशलतापूर्वक हो रहा है।)

व्याख्या– धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग का ठीक प्रकार से पालन करने से राजा वृद्धि को प्राप्त होता है, ऐसा मनुस्मृति में भी कहा गया है–

तं राजा प्रणयम् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते। (मनुस्मृति)

इसी शास्त्रवचन के आधार पर धर्म से युक्त अर्थ और धर्म से युक्त काम का सेवन करते हुए दुर्योधन अपने राजत्व को सबल करने का प्रयास कर रहा है।

विशेष– 'विभज्य भक्त्या' और 'गुणानुरागादिव' में अनुप्रास अलंकार है।

12. **निरत्ययं साम न दानवर्जितं**

न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियां।

प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी

गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया।।१.१२।।

अन्वयः– तस्य निरत्ययं (निर्बाधम्) साम दानवर्जितं (नास्ति) भूरिदानं सत्क्रियां विना न (अस्ति) (च) विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न (भवति)।

(**व्याकरणम्**– अत्ययस्य अभावः = निरत्ययम्, अव्ययीभाव, दानं वर्जितं यस्मिन् तत् दानवर्जितम्– बहुव्रीहि, गुणानाम् अनुरोधः तेन गुणानुरोधेन– षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– उस (दुर्योधन) की साम नीति (विनयपूर्वक व्यवहार) दान के बिना नहीं होती (अर्थात् जिनके प्रति वह विनय प्रकट करता है उसमें खोखलापन नहीं होता, अपितु वह उन्हें कुछ देता भी है)। जिन्हें वह धन आदि देता है उनका सत्कार (आदर) भी करता है, और उसके द्वारा किया जाने वाला सत्कार गुणों के अनुरोध के बिना नहीं होता (वह गुणीजनों का ही सत्कार करता है)।

विशेष– उत्तरोतर एक–एक क्रिया क्रम से होने के कारण यहाँ एकावली अलंकार है। 'प्रवर्तते तस्य' में तकार की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है।

13. **वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना**
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवं।।१.१३।।

अन्वयः– सः वशी वसूनि वांछन् न (तु) मन्युना, न (तु) निवृत्तकारणः स्वधर्मः इति एव (मत्वा) गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ सुते अपि वा धर्मविप्लवम् निहन्ति।

(व्याकरणम्– स्वस्य धर्मः = स्वधर्मः– षष्ठीतत्पुरुष, निवृत्तं कारणम् यस्य सः = निवृत्तकारणः– बहुव्रीहि, गुरुणा उपदिष्टम् तेन = गुरूपदिष्टेन – तृतीया तत्पुरुष, धर्मस्य विप्लवः तम् = धर्मविप्लवम्– षष्ठीतत्पुरुष)

अर्थ– वह इन्द्रियों को वश में रखने वाला और ऐश्वर्य का अभिलाषी (दुर्योधन) न तो क्रोध से और न ही किसी अन्य कारण से, अपना धर्म समझ कर, चाहे शत्रु हो या पुत्र हो उसके विषय में गुरु के उपदेशानुसार दण्ड (नीति) का प्रयोग करके अधर्म का उपशमन करता है।

व्याख्या– अभिप्राय यह है कि वह दण्डनीति के प्रयोग में पक्षपात न करते हुए गुरु के आदेशानुसार शत्रु और पुत्र तक को भी उचित दण्ड देने में हिचकिचाता नहीं।

विशेष– 'वसूनि वाञ्छन् न वशी' में वकार और नकार की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार है। पदार्थ हेतु काव्यलिंग अलंकार भी है।

14. **विधाय रक्षान्परितः परेतरा–**
नशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः
कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः।।१.१४।।

अन्वयः– शङ्कितः (सन् अपि) परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति (च) क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य (दुर्योधनस्य) कृतज्ञतां वदन्ति।

(**व्याकरणम्**– परेभ्य इतरे तान् = परेतरान्– पंचमी तत्पुरुष, न शंकितः आकारः यस्य तम् = अशङ्किताकारम्– नञ् + बहुव्रीहि, क्रियाणाम् अपवर्गः तेषु = क्रियापवर्गेषु – षष्ठी तत्पुरुष, अनुजीविभ्यः सात्कृताः = अनुजीविसात्कृताः– चतुर्थी तत्पुरुष)

अर्थ– भयभीत रहता हुआ भी स्वजनों को अपना रक्षक बनाकर वह बाहर से निर्भय आकार को प्राप्त किए रहता है और सेवकों के द्वारा काम संपन्न हो जाने पर उस (दुर्योधन) की संपत्तियां उसकी कृतज्ञता का बखान करती है।

व्याख्या– आशय यह है कि वह अपने विश्वासपात्र जनों को ही रक्षाकार्य में नियुक्त करता है तथा सेवकों के द्वारा कार्यों के संपन्न हो जाने पर प्रचुर धनादि द्वारा उनका सत्कार भी करता है।

विशेष– 'परितः परेतरान्, सात्कृताः कृतज्ञताम्' में अनुप्रास अलंकार है। पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार।

15. **अनारतं तेन पदेषु लम्भिता**
विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाम्।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती–
रुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः।।१.१५।।

अन्वयः– तेन अनारतं पदेषु विनियोगक्रियाः सम्यक् विभज्य लम्भिताः, (तेन विहिताः) उपायाः सङ्घर्षम् उपेत्य इव परिबृंहितायतीः अर्थसम्पदः फलन्ति।

(**व्याकरणम्**– विनियोगस्य सत्क्रियाः = षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– उस (दुर्योधन) के द्वारा समस्त सत्कार्यों का विभाजन करके निरंतर ठीक प्रकार से निर्वहन किया जाता है, अतः उसके (साम, दाम, दंड, भेद– ये चारों) उपाय मानों परस्पर संघर्ष करते हुए उसकी धनसंपत्ति का विस्तार कर रहे हैं।

व्याख्या– आशय यह है कि वह दुर्योधन निरंतर सजग–सावधान रहकर प्रमादहीन भाव से कार्यों का संपादन करता और करवाता रहता है, अतः उसके द्वारा किए जाने वाले सत्कार्यों में होड़ लगी रहती है। इस तरह उसके उपाय निरंतर उसकी श्रीवृद्धि कर रहे हैं।

विशेष– उत्प्रेक्षा अलंकार

16. **अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं**
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरं।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः।।१.१६।।

अन्वयः– नृपोपायनदन्तिनाम् अयुग्मच्छदगन्धिः मदः (च) अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम् तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयन्ति।

(**व्याकरणम्**– अयुग्मानि चैतानि छदानि तेषां गन्धः यस्मिन् सः = अयुग्मच्छद–गन्धिः– बहुव्रीहि, नृपैः उपायनाः दन्तिनः तेषाम् = नृपोपायनदन्तिनाम् – तृतीया + षष्ठी तत्पुरुष, अनेकेषां राजन्यानानाम् रथाः च अश्वाः च तेषां सङ्कुलं यस्मिन् तत् (अजिरम्) = अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम्– कर्मधारय + षष्ठी तत्पुरुष + द्वन्द्व +

बहुव्रीहि सङ्कर समास, आस्थानस्य निकेतनस्य अजिरम् = आस्थाननिकेतनाजिरम्– षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– राजाओं के द्वारा उपहार में दिए गए हाथियों के सप्तपर्णी की गंध वाले मदजल से उसका वह सभाभवन का आंगन बहुत गीला हो जाता है, जिसमें अनेक राजाओं के रथ और घोड़ों की भीड़ रहती है।

व्याख्या– कहने का अभिप्राय है कि दुर्योधन को अनेक राजाओं से उपहार में अनेक हाथी प्राप्त हुए हैं तथा उसके सभाभवन में अनेक राजा लोग आकर उपस्थित होते हैं।

(विशेष– उदात्त अलंकार)

17. **सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै–**
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका–
श्चिराय तस्मिन्कुरवश्चकासति।।१.१७।।

अन्वयः– चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्वति, अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्याः इव सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

(**व्याकरणम्**– न कृष्टेन पच्याः–अकृष्टपच्याः – नञ्, तृतीया तत्पुरुष, सस्यानां सम्पदः = सस्यसम्पदः – षष्ठी तत्पुरुष, न देवः (मेघवर्षः) मातेव येषां ते – अदेवमातृकाः – नञ् तत्पुरुष + बहुव्रीहि)

अर्थ– बहुत समय से (कुएं, नहरें आदि बनाने के) उसके क्षेमकार्यों के प्रभाव से कुरुप्रदेश मेघवर्षा पर निर्भर नहीं रह रहे हैं, अतः मानो बिना खेती के कार्य किए ही वे प्रदेश धन–धान्य से संपन्न हो रहे हैं।

व्याख्या– इस श्लोक का आशय है कि दुर्योधन ने किसानों का ध्यान रखते हुए ऐसे विकास कार्य करवाए हैं जिनमें अब किसानों को खेती के लिए मेघों के भरोसे नहीं रहना पड़ रहा, अतः उसके राज्य में भरपूर फसल हो रही है।

विशेष– उत्प्रेक्षा अलंकार

18. **उदारकीर्तेरुदयं दयावतः**
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी।।१.१८।।

अन्वयः– अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयं दिशतः उदारकीर्तेः दयावतः वसूपमानस्य अस्य (दुर्योधनस्य) गुणैः उपस्नुता मेदिनी स्वयं वसूनि प्रदुग्धे।

(**व्याकरणम्**– उदारा कीर्तिः यस्य सः = उदारकीर्तेः – बहुव्रीहि, प्रशान्ताः बाधाःयस्य तम्– प्रशान्तबाधम्– बहुव्रीहि, उप+स्नु+क्त+टाप् = उपस्नुता, वसुः उपमानं यस्य तस्य = वसूपमानस्य– बहुव्रीहि)

अर्थ– इस उदारकीर्ति वाले और दयालु स्वभाव वाले (दुर्योधन) के द्वारा समस्त (अपराधजनित) बाधाओं को समाप्त कर दिया गया है जिससे लोगों का सुखपूर्वक

विकास संभव हो रहा है। उसके ऐसे गुणों से द्रवित होकर पृथ्वी स्वयं उसे संपत्तियों को प्रदान कर रही है।

व्याख्या– इस श्लोक में दुर्योधन के राज्य में रक्षा प्रबंधों की प्रशंसा की गई है। चोरी–हत्या आदि अपराधों से त्रस्त राज्य में सज्जनों का उदय या विकास संभव नहीं होता, इसलिए दुर्योधन ने रक्षाप्रबंधों से अपने राज्य को उपद्रवहीन बना दिया है, जिससे धरती माता स्वयं प्रसन्न होकर राज्य को संपत्तियों से समृद्ध कर रही है।

विशेष– अतिशयोक्ति अलंकार

19. **महौजसो मानधनाः धनार्चिताः**
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भेदवृत्तयः
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।१.१६।।

अन्वयः– महौजसः, मानधनाः, धनार्चिताः संयति लब्धकीर्तयः धनुर्भृतः, न संहताः, न भिन्नवृत्तयः तस्य प्रियाणि असुभिः समीहितुं वांछन्ति।

(**व्याकरणम्**– महत् ओजो येषां ते = महौजसः– बहुव्रीहि, मान एवं धनं येषां ते = मानधनाः बहुव्रीहि, धनैः अर्चिताः = धनार्चिताः, लब्धा कीर्ति यैः ते = लब्धकीर्तयः बहुव्रीहिः, भिन्ना वृत्तिः येषां ते = भिन्नवृत्तयः– बहुव्रीहिः, सम् + ईह् + तुमुन्)

अर्थ– महाबलशाली, सम्मानरूपी धन से संपन्न, युद्ध में यश प्राप्त कर चुके, ऐसे अनेक धनुर्धारी (उसके पास) हैं जो उसके विरुद्ध एकत्र नहीं होते और न ही उससे भिन्न मनोवृत्ति वाले हैं, किन्तु उसके प्रिय कार्यों को, प्राण देकर भी पूरा करने की इच्छा रखते हैं, क्योंकि उन्हें बार–बार धन देकर प्रसन्न किया जाता रहता है।

व्याख्या– कहने का अभिप्राय है कि दुर्योधन के पास श्रेष्ठ योद्धाओं की एक समर्पित सेना है जिस पर वह पर्याप्त धन व्यय करता है।

विशेष– अनेक सभिप्राय विशेषणों के सकारण प्रयोग से पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है। 'धनाः धनार्चिता धनुर्भृतः' में धकार की अनुवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार भी है।

20. **महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः**
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।।१.२०।।

अन्वयः– अशेषित सः सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियां निःशेषं वेद। धातुः ईहितम् इव तस्य (ईहितम् अपि) हितानुबन्धिभिः महोदयैः फलैः प्रतीयते।

(**व्याकरणम्**– न शेषिताः क्रिया यस्य सः = अशेषितक्रियः – बहुव्रीहि, महान् उदयः येषां तैः = महोदयैः – बहुव्रीहि, हिताय अनुबन्धिनः ये तैः = हितानुबन्धिभिः)

अर्थ– समस्त राज्य कार्यों का संपादन कर लेने के पश्चात् वह सदाचारी (धोखा न देने वाले) गुप्तचरों से अन्य की पूरी जानकारी रखता है। किन्तु उसकी कल्याणकारी

योजनाएं अपने महान् उदय से और फलित होने पर वैसे ही जानी जाती हैं, जैसे विधाता के कार्य प्रकट होने पर जाने जाते हैं।

व्याख्या– इस श्लोक का भाव यह है कि दुर्योधन के पास अन्य सभी राजाओं की जानकारी अपने गुप्तचरों के माध्यम से पहुँचती रहती है, किन्तु वह स्वयं जो भी अच्छे कार्य प्रजा हित में करना चाहता है, उनका ज्ञान तभी हो पाता है जब वे कार्य फलीभूत होकर प्रकट होते हैं। इस प्रकार कार्य करने से, कार्य पूरा होने से पहले शत्रु रुकावटें नहीं डाल सकते तथा प्रजा को भी आश्चर्यकारिणी प्रसन्नता मिलती है।

विशेष– उपमा और काव्यलिङ्ग अलंकार का संकर।

21. **न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुर्न**
वा कृतं कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्।।१.२१।।

अन्वयः– तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम् न वा आननं कोपविजिह्मम् कृतम् (तथापि) अस्य शासनं (तस्य) गुणानुरागेण नराधिपैः माल्यम् इव शिरोभिः उह्यते।

(**व्याकरणम्**– कोपेन विजिह्मम् = कोपविजिह्मम् – तृतीया तत्पुरुष, गुणानाम् अनुरागः तेन = गुणानुरागेण – षष्ठी तत्पुरुष, नराणाम् अधिपाः तैः = नराधिपैः – षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– उस (दुर्योधन) के द्वारा कभी भी धनुष पर बाण नहीं चढाया गया और न ही कभी क्रोध के कारण उसने मुँह को टेढ़ा किया, फिर भी उसके गुणों के प्रति स्नेह के कारण (सामंत) राजा लोग उसकी आज्ञा को (प्रसन्नता से) वैसे ही सिर पर धारण करते हैं जैसे फूलों की माला को धारण किया जाता है।

व्याख्या– भय और क्रोध दिखाए बिना अपनी आज्ञा को मनवा लेना दुर्योधन भली–भांति जानता है, यही इस श्लोक का आशय है। ऐसा उसके उदारता और सम्मान–प्रदान आदि गुणों से संभव हो रहा है, यह इस श्लोक में कारण बताया गया है।

विशेष– पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार, गुणानुरागेण में 'ग्' और 'ण्' ध्वनि की आवृत्ति में अनुप्रास अलंकार है।

22. **स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं**
निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।।१.२२।।

अन्वयः– इद्धशासनः सः यौवराज्ये (अनुजम्) नवयौवनोद्धतम् दुःशासनं निधाय, पुरोधसा अनुमतः अखिन्नः (भूत्वा) मखेषु हव्येन हिरण्यरेतसंधिनोति।

(**व्याकरणम्**– नवं च एतत् यौवनं तस्मिन् उद्धतः तम् = नवयौवनोद्धतम् – कर्मधारय, सप्तमी तत्पुरुष, इद्धं शासनं यस्य सः = इद्धशासनः – बहुव्रीहिः, न खिन्नः = अखिन्नः – नञ् तत्पुरुष)

अर्थ– जिसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता ऐसे उस दुर्योधन ने नवयौवन में उद्दंड बने (छोटे भाई) दुःशासन को युवराज पद पर बैठा दिया है और ऐसा करके वह पुरोहित की आज्ञा के अनुसार हवन सामग्री को अर्पित करते हुए अग्निदेव को प्रसन्न कर रहा है।

व्याख्या– शासन के कार्यों को अपने अनुज दुःशासन को सौंपकर वह यज्ञों द्वारा अपनी शक्तियों को वैसे ही बढ़ा रहा है जैसे रावण और मेघनाद युद्धकाल में करते थे। वह सदैव देवताओं को प्रसन्न करने में लगा रहता है।

विशेष– पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार। नकार, शकार, एवं धकार की आवृत्तियों से अनेकत्र अनुप्रास अलंकार।

23. **प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति**
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती–
रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।।१.२३।।

अन्वयः– सः प्रलीनभूपालम् स्थिरायति, आवारिधिः भुवः मण्डलं प्रशासत् अपि त्वदेष्यतीः भियः चिन्तयति एव, अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता (एव भवति)।

(**व्याकरणम्**– प्रलीनाः भूपाला यस्मात् तत् (भुवः मण्डलम्) = प्रलीनभूपालम् – बहुव्रीहि, वारिधेः पर्यन्तम् = आवारिधि – अव्ययीभाव, बलवद्भि सह विरोधिता = बलवद्विरोधिता – षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– (शत्रु) राजाओं से रहित समुद्र तक फैली धरती पर स्थायी शासन के चलते आपकी ओर से आने वाले भयों से वह चिन्ता करता रहता है, अरे बलवानों से विरोध करना बुरे अन्त वाला तो होता ही है।

व्याख्या– पूरी धरती पर स्थायी राज्य पाकर भी दुर्योधन की चिंताओं का एक ही कारण था, पाण्डवों से प्राप्त होने वाला भय। अर्जुन जैसे धनुर्धर और श्रेष्ठ गदाधारी भीम अपने अपमान का बदला लेकर रहेंगे, दुर्योधन इस बात को मन ही मन जानता था। दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ने और दुःशासन की भुजाओं को उखाड़ कर उसके वक्ष का रक्त पीने की प्रतिज्ञा भीमसेन ने भरी सभा में की थी। अतः भावी युद्ध की कल्पना के भय से मुक्त होना दुर्योधन के लिए संभव नहीं था। इसलिए किरात का यह वचन सर्वथा उचित ही है कि बलवानों से विरोध का अन्त बुरा ही होता है।

विशेष– काव्यलिङ्ग और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का संकर–अलंकार।

24. **कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृता–**
दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद्व्यथते नताननः
स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः।।१.२४।।

अन्वयः– कथाप्रसङ्गेन जनैः उदाहृतात् तव (युधिष्ठिरस्य) अभिधानात् आखण्डलसूनुविक्रमः नताननः सः दुःसहात् मन्त्रपदात् उरगः इव व्यथते।

(**व्याकरणम्**– कथानां प्रसंगः तेन = कथा प्रसंगेन – षष्ठी तत्पुरुष, अनुस्मृतः आखण्डलस्य सूनोः (इन्द्रस्य पुत्रस्य) विक्रमः येन सः अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः–

बहुव्रीहि + तत्पुरुष संकर समास, नतम् आननम् यस्य सः = नताननः– बहुव्रीहि, दुःसहं च एतत् मन्त्रस्य पदम् तस्मात् – कर्मधारय)

अर्थ– जिस प्रकार सर्प को वश में करने वाला मन्त्र उसके लिए असहनीय होता है तथा उस मन्त्र के अक्षरों से पीड़ित होकर वह अपना फण झुका लेता है उसी प्रकार (सभा आदि स्थलों में) जब आपका नाम वह किसी बातचीत के अंतर्गत सुन लेता है, तब उसे वैसी ही पीड़ा होती है और अर्जुन के पराक्रम को स्मरण करके वह (दुर्योधन) अपना मुँह नीचे कर लेता है।

व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की तुलना एक सांप के साथ की गई है तथा युधिष्ठिर के नाम को सर्पवशीकरण के मन्त्र के रूप में बताया गया है। दुर्योधन को युधिष्ठिर के नाम श्रवण से होने वाली पीड़ा उसका अपराध बोध नहीं अपितु उसका भय है। अर्जुन का पराक्रम इस भय के मूल में है।

विशेष– उत्प्रेक्षा सांगरूपक अलंकार का संकर।

25. **तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते**
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।।१.२५।।

अन्वयः– तत् त्वयि जिह्मं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम् (यतो हि) परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु।

(**व्याकरणम्**– परैः प्रणीतानि = परप्रणीतानि – तृतीया तत्पुरुष, प्रवृत्तिः एव सारः यासु ताः = प्रवृत्तिसाराः – बहुव्रीहि)

अर्थ– इसलिए आपके प्रति कुटिल व्यवहार करने के लिए उद्यत दुर्योधन के विषय में जो उचित प्रतिक्रिया की जानी चाहिए उसे शीघ्र कीजिए, क्योंकि दूसरों के वचनों के आधार पर कही गई मेरी बातें तो मात्र प्रवृत्ति रूपी सार वाली होती हैं अर्थात् उनसे किस दिशा में प्रवृत्त हुआ जा सकता है यही पता लग सकता है।

व्याख्या– दूत के इस कथन का आशय यह है कि पाण्डवों को वनवास में भेजकर भी दुर्योधन चोट खाए सांप की तरह पुनः प्रहार करने के लिए तत्पर रहता है, अतः उसे आक्रमण का अवसर दिए बिना शीघ्र उसे पराजित किया जाना आवश्यक है। दूत के वचन प्रवृत्ति में सहायक मात्र होते हैं, उनसे प्रवृत्त होना अथवा न होना तो राजा के ही अधिकार में होता है।

विशेष– श्लोक के तृतीय चरण में पकार एवं वकार की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार है।

26. **इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये**
गतेऽथ पत्यौ वनसंनिवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा
तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः।।१.२६।।

अन्वयः– इति गिरम् ईरयित्वा वनसन्निवासिनाम् पत्यौ आत्तसत्क्रिये गते अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद्–वचः आचचक्षे।

(**व्याकरणम्**– आत्ता सत्क्रिया येन तस्मिन् = आत्तसत्क्रिये – बहुव्रीहि, वनस्य सन्निवासिनाम्, वनसन्निवासिनाम् – षष्ठी तत्पुरुष, सन्तः च एते निवासिनः तेषाम् = सन्निवासिनाम् – कर्मधारय, कृष्णायाः सदनम् = कृष्णासदनम् – षष्ठी तत्पुरुष, महीं भुक्ङ्क्ते इति तेन = महीभुजा – उपपद तत्पुरुष, अनुजानां सन्निधौ = अनुजसन्निधौ – षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– (पारितोषिक आदि से) सत्कार प्राप्त कर चुके वन के भीलों के राजा के चले जाने पर द्रौपदी के कक्ष में जाकर राजा (युधिष्ठिर) के द्वारा भाइयों की उपस्थिति में उसकी बातों को कह सुनाया गया।

व्याख्या– भील राजा के संदेश के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हुए युधिष्ठिर ने उसे पुरस्कृत किया तथा तत्पश्चात् द्रौपदी के कक्ष में भाइयों के सामने उस सारी जानकारी को साझा किया। यही इस श्लोक का आशय है। कृतज्ञ होना उन्नति के लिए आवश्यक है– कहा भी गया है–

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं

क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।

शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च

लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः।।

27. **निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती–**

स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा।

नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी–

रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः।।१.२७।।

अन्वयः– ततः द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम् अक्षमा द्रुपदात्मजा नृपस्य मन्युव्यवसाय–दीपिनी गिरः उज्जहार।

(**व्याकरणम्**– वि+नि+यम्+तुमुन् = विनियन्तुम्, न क्षमा = अक्षमा – नञ् तत्पुरुष, मन्योः व्यवसायस्य दीपिनी = मन्युव्यवसायदीपिनीः – षष्ठी तत्पुरुष, वि+आ+हृ लिट् लकार प्रथम पुरुष एक. = व्याजहारं)

अर्थ– तब शत्रुओं की समृद्धि को सुनकर उससे उत्पन्न विकारों (मनोवेदनाओं) को काबू करने में असमर्थ द्रुपद पुत्री द्रौपदी ने राजा (युधिष्ठिर) के क्रोध को भड़काने वाले वचन कहे।

व्याख्या– पाण्डवों पर अत्याचार करके, द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित करके दुर्योधन और उसके साथी फल–फूल रहे हैं– इस प्रकार की जानकारी को प्राप्त करके द्रौपदी को असह्य वेदना का होना स्वाभाविक था। युद्ध का निर्णय लेना महाराज युधिष्ठिर पर निर्भर था, अतः उनके क्रोध को भड़काना भी आवश्यक था। इसलिए द्रौपदी ने महाराज के क्रोध को भड़काने वाली वाणी का प्रयोग किया। 'नृपस्य' शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। द्रौपदी इस समय एक राजा के प्रति कह रही है, न कि अपने पति के प्रति।

विशेष– पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग। 'ततस्ततस्त्या' में तकार की अनुवृत्ति से अनुप्रास अलंकार की छटा द्रष्टव्य है।

28. **भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं**
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया दुराधयः।।१.२८।।

अन्वयः– भावादृशेषु (नृपेषु) प्रमदाजनोदितं (कथनम्) अनुशासनं (प्रति) अधिक्षेपः इव भवति तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः मां वक्तुं व्यवसायन्ति।

(**व्याकरणम्**– प्रमदाजनेन उदितम् = प्रमदाजनोदितम् – तृतीया तत्पुरुष, निरस्ताः नारीणां समयाः येषु ते (दुराधयः) – बहुव्रीहि)

अर्थ– (द्रौपदी ने कहा) आप जैसों (श्रेष्ठ राजाओं) के सामने स्त्रियों के द्वारा कुछ कहा जाना यद्यपि अनुशासन के उल्लंघन के समान होता है तथापि ऐसी मानसिक वेदनाएं जिनमें स्त्री की मर्यादा समाप्त हो चुकी है, वे मुझे बोलने को विवश कर रही है।

व्याख्या– द्रौपदी का भरी सभा में अपमान एक ऐसी घटना थी जो समस्त नारी जाति का घोर अपमान थी। अतः स्त्री होने के कारण उसका क्रोधित होना स्वाभाविक था। यही इस श्लोक का प्रमुख आशय है।

विशेष– काव्यलिङ्ग और उत्प्रेक्षा अलंकार।

29. **अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि–**
श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता।।१.२६।।

अन्वयः– आखण्डलतुल्यधामाभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरम् (च) अखण्डं धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्रग् इव आत्महस्तेन अपवर्जिता।

(**व्याकरणम्**– आखण्डलेन तुल्यम् = आखण्डलतुल्यम् – तृतीया तत्पुरुष, मदं च्यवति इति, तेन = मदच्युता – उपपद तत्पुरुष अथवा मदात् च्युता – पंचमी तत्पुरुष)

अर्थ– इन्द्र के समान तेजस्वी अपने वंशजों द्वारा बहुत समय तक अखण्ड रूप से शासित पृथ्वी को आपके द्वारा ही मद के कारण अपने हाथ से वैसे ही छोड़ दिया गया जैसे किसी मतवाले हाथी के द्वारा अपनी सूंड से पुष्पमाला को पटक दिया जाता है।

व्याख्या– मतवाला हाथी जिस प्रकार लापरवाही से उत्तम वस्तु को तोड़–फोड़ कर चल देता है वैसे ही प्रमाद (लापरवाही) का व्यवहार करके युधिष्ठिर ने इंद्रप्रस्थ के राज्य को अपने हाथों से जाने दिया। यह द्रौपदी की मनोव्यथा भी है और युधिष्ठिर के प्रति आक्षेप भी।

विशेष– 'मदच्युता' और 'आत्महस्तेन' में दो–दो अर्थों की प्राप्ति से श्लेष अलंकार के साथ उत्प्रेक्षा अलंकार की संसृष्टि।

30. **व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं**
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा–
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः।।१.३०।।

अन्वयः– ते मूढधियः पराभवम् (एव) व्रजन्ति ये मायाविषु मायाविनः न भवन्ति। शठाः तथाविधान् (मूढधिय) असंवृतांगान् (योद्धृन्) निशिताः इषवः इव हि प्रविश्य घ्नन्ति।

(**व्याकरणम्**– मूढा धीः येषां ते = मूढधियः – बहुव्रीहि, असंवृतानि अङ्गानि येषां तान् = असंवृतांगान्)

अर्थ– वे मूर्ख पराजय को ही प्राप्त होते हैं जो कपटियों के विरुद्ध कपट का व्यवहार नहीं करते। ऐसे मूर्खों को वे धूर्त वैसे ही मार डालते हैं जैसे खुले अंगों वाले (कवच रहित शरीर वाले योद्धा) लोगों के शरीर में समाने वाले तेज नुकीले बाण।

व्याख्या– द्रौपदी के कथन का आशय यह है कि युधिष्ठिर को कपटी दुर्योधन के प्रति सज्जनता के व्यवहार का त्याग करना चाहिए तथा उसके साथ 'शठे शाठ्यं' की नीति पर चलना चाहिए अन्यथा पाण्डवों का विनाश अवश्यम्भावी है।

विशेष– अर्थान्तरन्यास और उत्प्रेक्षा अलंकार का संकर अलंकार।

31. **गुणानुरक्तां अनुरक्तसाधनः**
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारय–
न्मनोरमां आत्मवधूमिव श्रियं।।१.३१।।

अन्वयः– अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी नराधिपः त्वदन्यः कः इव (स्यात् यः) गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमाम् आत्मवधूम् इव श्रियम् परैः अपहारयेत्।

(**व्याकरणम्**– गुणैः अनुरक्ता ताम् = गुणानुरक्ताम् – तृतीया तत्पुरुष, कुलस्य अभिमानी = कुलाभिमानी – षष्ठी तत्पुरुष, आत्मनः वधूः ताम् = आत्मवधूम् – षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– सेना जिसमें अनुराग रखती हो ऐसा कुलाभिमानी राजा आपके सिवाय और कौन होगा– जो (स्वामी के) गुणों से स्नेह रखने वाली, मन को भाने वाली पत्नी के समान राज्यश्री का हरण शत्रुओं द्वारा हो जाने दे।

व्याख्या– जिस तरह से अपनी सुंदर स्नेहमयी उच्चकुलवाली पत्नी का अपहरण हो जाने देना भारी अपमान का लक्षण है, उसी प्रकार अपनी राज्यश्री को गंवाना भी अत्यंत अपमानजनक है। द्रौपदी का यह अत्यंत तीक्ष्ण वाणी का बाण है, क्योंकि पहले तो युधिष्ठिर ने द्यूत में द्रौपदी को पण्य (दांव) पर लगाकर उसे अपमानित होने दिया तत्पश्चात् पुनः प्रमाद करते हुए पण्य पर राज्य को लगाकर राज्यश्री को भी गंवा दिया। द्रौपदी का यह तीखा वचन युधिष्ठिर के उचित कोप को जगाने के निमित्त से कहा गया है।

विशेष– उत्प्रेक्षा अलंकार।

32. **भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते**
विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः।।१.३२।।

अन्वयः– (हे) नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः उच्छिखः अग्निः शुष्कं शमीतरुम् इव कथं न ज्वलयति?

(**व्याकरणम्**– मनस्विभिः गर्हितम् तस्मिन् = मनस्विगर्हिते, वि+वृत+शानच् = विवर्तमानम् उत्+ईर+क्त = उदीरितः)

अर्थ– हे राजन! मनस्वी जनों द्वारा निन्दित (वनवास के) मार्ग पर वर्तमान आपको उस प्रचंड अग्नि के समान क्रोध क्यों नहीं जला रहा, जिसकी लपटें सूखे शमी वृक्ष को जलाने लगती है?

व्याख्या– द्रौपदी को इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि दुर्योधन के द्वारा प्राप्त दुर्दशा में भी युधिष्ठिर को क्रोध क्यों नहीं आ रहा? एक क्षत्रिय को अधम शत्रु पर क्रोध न आए यह विरुद्ध व्यवहार है और आश्चर्य का विषय भी है। इस कथन का उद्देश्य युधिष्ठिर को शत्रु का प्रतीकार करने के लिए प्रेरित करना है।

विशेष– उत्प्रेक्षा और विरोधाभास का संकर अलंकार।

33. **अवन्ध्यकोपस्य निहन्तुरापदां**
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः।।१.३३।।

अन्वयः– अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुं देहिनः स्वयमेव वश्याः भवन्ति, (किन्तु) अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन जनस्य न (तु) आदरः (भवति, न वा) विद्विषा दरः (भवति)।

अर्थ– जिसका क्रोध (कभी) निष्फल नहीं होता ऐसे व्यक्ति को विपत्तियों के नाश के लिए अन्य शरीरधारी स्वयमेव वश में आ जाते हैं, किन्तु जिसे कभी क्रोध नहीं आता ऐसे व्यक्ति के स्नेह के प्रति लोगों का आदर ही नहीं होता और उसके शत्रु होने पर (उससे शत्रुता करने पर) किसी को कोई डर नहीं होता है।

व्याख्या– शत्रुओं के प्रति तथा दुष्टों के प्रति क्रोध भाव होना राजा के लिए आवश्यक है, यही भाव द्रौपदी के इस कथन में निहित है। शत्रु को जब यह विश्वास होता है कि राजा का क्रोध उसके विनाश का कारण बन सकता है, तब वह भयभीत रहता है तथा ऐसे राजा के विरुद्ध दुष्ट भी शांत रहते हैं। किन्तु जिस राजा को किसी भी प्रकार के आचरण के विरुद्ध क्रोध नहीं रहता उसके न केवल शत्रु प्रबल हो जाते हैं, अपितु वह अपने स्नेही जनों का आदर भी खो देता है।

विशेष– पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार। श्लोक के पराधं में 'जकार' की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार।

34. **परिभ्रमंल्लोहितचन्दनोचितः**
पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं
दुनोति ते कच्चिदयं वृकोदरः।।१.३४।।

अन्वयः– लोहितचन्दनोचितः महारथः रेणुरूपितः पदातिः (भूत्वा) अन्तर्गिरि परिभ्रमन् अयं वृकोदरः (भवतः) सत्यधनस्य मानसं कच्चित् नो दुनोति।

(**व्याकरणम्**– लोहितं च एतत् चन्दनम् तस्मै उचितः = लोहितचन्दनोचितः – कर्मधारय, चतुर्थी तत्पुरुष, गिरीणां मध्ये = अन्तर्गिरि = अव्ययीभाव, महान् रथः यस्य सः महारथः – बहुव्रीहि, सत्यम् एव धनं यस्य तस्य = सत्यधनस्य, वृकस्य इव उदरं यस्य सः = वृकोदरः (भीमः) – बहुव्रीहि)

अर्थ– रक्त चंदन से लेप के योग्य होते हुए भी धूल धूसरित पहाड़ों में पैदल भटकता महारथी वृकोदर (इसे इस दशा में देखकर) आप सत्य रूपी धन की रक्षा में लगे हुए मन को कभी कष्टप्रद नहीं होता है? कितनी विचित्र बात है कि आप अपने सत्य धन की रक्षा के लिए न केवल स्वयं को विपत्तिग्रस्त बना रहे हैं, अपितु अपने भाई को भी अपार कष्ट दे रहे हैं।

व्याख्या– द्रौपदी के इस कथन का आशय यही है कि सत्य के धर्म के साथ मनुष्य को इतनी व्यावहारिकता का तो पालन करना ही चाहिए कि वह अपने स्नेही जनों के कष्ट का कारण न बने।

विशेष– परिकर अलंकार।

35. **विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्**
कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।
स वल्कलवासांसि तवाधुनाहरन्
करोति मन्युं न कथं धनंजयः।।१.३५।।

अन्वयः– वासवोपमः यः धनंजयः उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्य वसु अयच्छत् सः (एव धनंजयः) वल्कलवासांसि आहरन् अधुना तव मन्युं कथं न करोति।

(**व्याकरणम्**– वासवः उपमा यस्य सः = वासवोपमः – बहुव्रीहि)

अर्थ– जिस इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन ने उत्तर कुरु प्रदेश के राजाओं को जीतकर आपको अपार संपत्ति अर्जित करके दी, वही धनंजय अब वल्कल वस्त्र पहने हुए हैं, यह देखकर आपके मन को क्रोध क्यों नहीं आता?

व्याख्या– जो आपको संपन्न बनाए उसे आप विपन्न बनाएं और वह भी अपने अनुज को, यह तो घोर अन्याय हुआ। उसकी ऐसी दशा जिन शत्रुओं के कारण हुई है उन पर क्रोध कीजिए, यही द्रौपदी का इस श्लोक में आशय है।

विशेष– वल्कलवासांसि में अनुप्रास अलंकार।

36. **वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती**
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम्।।१.३६।।

अन्वयः– वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं कथं धृतिसंयमौ बाधितुं न उत्सहसे?

(**व्याकरणम्**– वनान्ते शय्यया कठिनी कृता आकृतिः ययोः तौ = वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती – बहुव्रीहि, कचैः आचितौ = कचाचितौ – तृतीया तत्पुरुष, अगे जातौ इति = अगजौ – उपपद तत्पुरुष, धृतिः च संयमः च तौ द्वन्द्व, बाध् + तुमुन् = बाधितुम्)

अर्थ– वन की सीमाओं पर शयन करने से जिसका शरीर कठोर आकृति वाला हो गया है, चारों ओर से बालों से भरे हुए, वन में उत्पन्न हाथियों के समान दिखाई देने वाले इन जुड़वां भाइयों (नकुल और सहदेव) को देखते हुए, धैर्य और संयम का त्यागने का उत्साह आपमें क्यों नहीं जाग रहा?

व्याख्या– अश्विनी कुमारों के वरदान से उत्पन्न नकुल और सहदेव युधिष्ठिर के विमातृज (सौतेले) भाई थे। वे दोनों सर्वांग सुन्दर थे परंतु दुर्योधन के अन्याय से वनवास को प्राप्त होकर उनके शरीर अत्यंत कठोर व बालों से भरकर कुरूपता को प्राप्त कर रहे थे। उनकी इस दुर्दशा की ओर ध्यान दिलाकर द्रौपदी इस श्लोक में युधिष्ठिर में युद्ध का उत्साह जगाने का प्रयास कर रही है।

विशेष– उत्प्रेक्षा अलंकार।

37. **इमामहं वेद न तावकीं धियं**
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः।।१.३७।।

अन्वयः– अहं तावकीम् इमां धियं न वेद। चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु (वर्तन्ते)। पराम् भवदापदं विचिन्तयन्त्या मम आधयः प्रसभं चेतः रुजन्ति।

(**व्याकरणम्**– विचित्रं रूपं यासां ताः = विचित्ररूपाः, चित्तस्य वृत्तयः = चित्तवृत्तयः षष्ठी तत्पुरुष, भवताम् = भवदापदम् – षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– आपकी इस (प्रकार की) बुद्धि को मैं नहीं समझ पा रही हूँ (जो अपने प्रिय भाइयों के कष्ट से भी युद्ध के लिए उत्तेजित नहीं हो रही)। निश्चित रूप से चित्त की वृत्तियां भी विचित्र रूप वाली होती है। आपकी परम विपत्ति के बारे में सोच–सोचकर (जहाँ) मेरी मनोवेदनाएं मेरे चित्त को पीड़ित कर रही हैं (वहीं आपके चित्त में इनसे कोई हलचल भी नहीं हो रही)।

व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक में द्रौपदी ने अपनी उस मनोव्यथा को व्यक्त किया है जो युधिष्ठिर के उत्साहहीन व्यवहार से उत्पन्न हुई है। युधिष्ठिर का धैर्य सभी भाइयों और उसकी पत्नी द्रौपदी को भी कष्टप्रद प्रतीत हो रहा है, यह समझाने का प्रयास द्रौपदी कर रही है।

विशेष– पदार्थहेतु काव्यलिङ्ग अलंकार।

38. **पुराधिरूढः शयनं महाधनं**
विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।
अदभ्रदर्भां अधिशय्य स स्थलीं
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः।।१.३८।।

अन्वयः– पुरा महाधनं शयनम् अधिरूढः यः (त्वं) स्तुतिगीतिमंगलैः विबोध्यसे (स्म) सः (एव त्वम् अधुना अदभ्रदर्भा) (वनस्य) स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्रां जहासि।

टिप्पणी

(**व्याकरणम्**– महत् धनं (मूल्यं) यस्य = महाधनम् स्तुतीनां गीतयः तासां मंगलानि तैः = स्तुतिगीतिमंगलैः – षष्ठी तत्पुरुष, अदभ्राः (पुष्कलाः) दर्भाः यस्यां ताम् – अदभ्रदर्भाम् – बहुव्रीहि, शिवानां (शृगालीनाम्) रुतानि तैः षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– (अपनी ही दशा देख लीजिए) पहले अत्यधिक मूल्यवाली शय्या पर सोकर जो आप स्तुतियों वाले मंगलाचरण के गीतों द्वारा जगाए जाते थे, वही आप अब ढेरों कुशा वाली वन की भूमि पर सोकर अमंगलकारी गीदड़ियों की आवाज़ों से नींद का त्याग करते हैं।

व्याख्या– द्रौपदी को युधिष्ठिर की दुर्दशा भी अत्यंत पीड़ा पहुँचा रही है। उसने क्रमशः अपने पाँचों पतियों की पीड़ा का वर्णन जिस कष्ट से किया है, उसी से स्पष्ट हो जाता है कि वे क्यों महासती की उपाधि से विख्यात है।

विशेष– विषम अलंकार, अनुप्रास अलंकार।

39. **पुरोपनीतं नृप रामणीयकं**

द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।

तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं

परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः।।१.३९।।

अन्वयः– (हे) नृप! यत् (तव) एतत् वपुः पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतम् (आसीत्) अद्य ते वन्य फलाशिनः तद् (एव वपुः) यशसा समं परं कार्श्यं परैति।

(**व्याकरणम्**– द्विजातिभ्यः शेषः तेन = द्विजातिशेषेण – पंचमी तत्पुरुष, वन्यानि फलानि तेषाम् आशी तस्य = वन्यफलाशिनः – बहुव्रीहि)

अर्थ– हे राजा! जो यह आपका शरीर पहले ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद बचे हुए अन्न के द्वारा सुंदरता को प्राप्त कर चुका था, अब आपके वन के फलों का भोजन करने वाला बन जाने से आपके यश के समान ही कमजोर हो गया है।

व्याख्या– ब्राह्मणों को भोजन कराने से युधिष्ठिर को पुण्य व यश की प्राप्ति होती थी परंतु राज्य के छिन जाने पर पुण्य और यश दोनों का लोप हो रहा है। साथ ही ब्रह्म भोज के पश्चात्, ब्राह्मणों के आशीर्वाद के पश्चात् ग्रहण किया गया भोजन उनके शरीर को भी पौष्टिकता प्रदान करता था। दुर्योधन द्वारा राज्य से वंचित किये जाने के कारण अब युधिष्ठिर उस पौष्टिक भोजन के स्थान पर जंगली फलों को खाकर ही निर्वाह करने के लिए विवश है। परिणामतः उनका शरीर भी निरंतर कमजोर हो रहा है। ये सारी चिंताएं इस श्लोक में द्रौपदी द्वारा व्यक्त हुई हैं।

विशेष– 'यश के साथ शरीर का कृश होना' में सहोक्ति अलंकार। 'पुरोपनीतं नृप' में पकार की अनुवृत्ति से अनुप्रास अलंकार।

40. **अनारतं यौ मणिपीठशायिना–**

वरञ्जयद्राजशिरःस्रजां रजः।

टिप्पणी

निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते

मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम्।।१.४०।।

अन्वयः– अनारतं राजशिरःस्रजां रजः यौ मणिपीठशायिनौ अरंजयत्, ते तौ चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषां कुशानां वनेषु निषीदतः।

(**व्याकरणम्**– आ+रम्+क्त = आरतम्, ततः नञ् समासे– न आरतम् = अनारतम्, मणीनां पीठे शयाते इति – मणिपीठशायिनौ – षष्ठी तत्पुरुष + उपपद तत्पुरुष समास (शेते शयाते शेरते इति शीलट्), राज्ञां शिरस्सु स्रजः, तासाम् – राजशिरस्स्रजाम् – षष्ठी –सप्तमी तत्पुरुष, मृगैः द्विजैः च आलूनाः शिखाः येषां तेषु – मृगद्विजा लूनशिखेषु – द्वन्द्व–बहुव्रीहि)

अर्थ– राजाओं के सिरो पर सजी हुई फूलमालाओं का पराग जिन मणिपीठ पर विश्राम करते हुए आपके चरणों की शोभा बढ़ाता था, आज वही (आपके चरण) हिरणों और ब्राह्मणों द्वारा जिनके उपरी भाग काट दिए गए हैं ऐसी कुशाओं वाले वनों में पड़ते हैं।

व्याख्या– कहाँ राजाओं का प्रणाम स्वीकार करना और कहाँ नुकीली कुशा घास पर भटकना – ऐसी दुर्दशा में युधिष्ठिर के चरण पहुँच गए हैं। इस विडंबना को स्मरण कराते हुए द्रौपदी युधिष्ठिर से उत्साह धारण करने की अपेक्षा कर रही है।

विशेष– दो विपरीत स्थितियों के उल्लेख से 'विषम अलंकार'। स्रजां रजः में अनुप्रास अलंकार।

41. **द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः**

समूलमुन्मूलयतीव मे मनः।

परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां

पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनां।।१.४१।।

अन्वयः– यत् (भवतः) इयं दशा द्विषन्निमित्ता (अस्ति) ततः मे मनः समूलम् उन्मीलयति, (किन्तु) परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां (तु) पराभवः अपि उत्सवः एव (भवति)।

(**व्याकरणम्**– द्विषदः निमितं यस्याः सा = द्विषन्निमित्ता – बहुव्रीहि, अपर्यासिता वीर्यस्य सम्पद् येषां तेषाम् – अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् – बहुव्रीहि)

अर्थ– चूंकि आपकी यह दुर्दशा शत्रुओं के कारण हुई है इसलिए यह (दुर्दशा) मेरे मन को मानो जड़ सहित उखाड़ रही है। किन्तु जो स्वाभिमानी बलरूपी सम्पत्ति से संपन्न होते हैं उनके लिए तो पराजय भी उत्सव के समान होती है।

व्याख्या– द्रौपदी के कथन का आशय यह है कि अपनी बलरूपी सम्पत्ति का प्रयोग करके युधिष्ठिर को विजय प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए।

विशेष– उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास अलंकार।

42. **विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः**

प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।

टिप्पणी

व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः

शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।।१.४२।।

अन्वयः— हे नृप! शान्तिं विहाय विद्विषां वधाय तद्धाम पुनः सन्धेहि (च) प्रसीद। निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं ब्रजन्ति, न (तु) भूभृतः।

(**व्याकरणम्**— वि+हा+ल्यप् = विहाय, निर्गताः स्पृहाः येषां ते = निःस्पृहाः – बहुव्रीहि)

अर्थ— (अतः) हे राजा! शान्ति का त्याग करके अपने तेज को शत्रुओं के विनाश में लगाइए और प्रसन्न होइए। जो निष्काम मुनि होते हैं वे ही (काम, क्रोध आदि) शत्रुओं से किनारा करके शान्ति को प्राप्त करते हैं, न कि राजा लोग।

व्याख्या— कहने का अभिप्राय है कि आप (युधिष्ठिर) को मुनियों जैसा व्यवहार न करके शूरवीर राजा का व्यवहार करते हुए शत्रुओं के वध से संकोच नहीं करना चाहिए।

विशेष— 'शत्रून्' शब्द क्रोधादि विकार और शत्रुपक्ष के योद्धा ये दोनों अर्थ प्रकट कर रहा है, अतः श्लेष अलंकार + अर्थान्तरन्यास अलंकार।

43. **पुरःसरा धामवतां यशोधनाः**

सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशं।

भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिम्—

निराश्रया हन्त हता मनस्विता।।१.४३।।

अन्वयः— भवादृशाः धामवतां पुरःसराः यशोधनाः ईदृशं निकारं प्राप्य चेत् रतिम् अधिकुर्वते, (तर्हि) हन्त मनस्विता निराश्रया एव हता।

(**व्याकरणम्**— धाम + मतुप् – 'मादुपधायाश्च' मतोर्वोऽयवादिभ्यः सूत्र से मत् के स्थान पर वत् होने से = धामवत् षष्ठी वहुवचनम् = धामवताम्, यशः एव धनं येषां ते = यशोधनाः बहुव्रीहि, निर्गतः आश्रय येषां ते = निराश्रयाः – बहुव्रीहि)

अर्थ— आप जैसे ओजस्वियों में अग्रगण्य यश को ही अपना धन मानने वाले, ऐसे असह्य अपमान को पाकर भी यदि संतोष कर लेते हैं, तब तो मनस्विता/स्वाभिमानिता तो बेचारी बेसहारा होकर ही मारी गई।

व्याख्या— इन शब्दों के प्रयोग से द्रौपदी ने युधिष्ठिर के स्वाभिमान को ललकारा है।

44. **अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम्—**

श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।

विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं

जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्।।१.४४।।

अन्वयः— अथ निरस्तविक्रमः (भूत्वा त्वम्) क्षमाम् एव चिराय सुखस्य साधनं पर्येषि (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं विहाय जटाधरः (भूत्वा) इह पावकं संजुहुधिः।

(**व्याकरणम्**— निरस्तः विक्रमः यस्य सः = निरस्तविक्रमः – बहुव्रीहि, लक्ष्म्याः पत्युः लक्ष्म = लक्ष्मीपतिलक्ष्म – बहुव्रीहि, जटा धरति इति = जटाधरः – उपपद तत्पुरुष)

अर्थ– अब अगर आप पराक्रम रहित होकर क्षमाभाव को ही सदा के लिए सुख का साधन मान रहे हैं, तब इस राज्यश्री के स्वामी अर्थात् राजा के चिह्न धनुष का त्याग करके जटाधारी साधु बनकर यहीं (वन में) रहते हुए अग्नि में हवन करते रहिए।

व्याख्या– द्रौपदी के कहने का आशय है कि शूर और पराक्रमी होकर भी आपने व्यर्थ ही धनुष को धारण किया हुआ है, यदि आप शत्रु विजय के लिए आगे कदम नहीं बढ़ाते। यदि शान्तिशील क्षमावान साधुओं की तरह ही जीवन बिताना है तो इस धनुष को भी त्याग दीजिए।

विशेष– दृष्टान्त अलंकार।

45. **न समयपरिरक्षणं क्षमं ते**
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि।।१.४५।।

अन्वयः– निकृतिपरेषु परेषु अरिषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं क्षमं न, विजयार्थिनः क्षितीशाः (तु) सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

(**व्याकरणम्**– समयस्य परिरक्षणम् = समयपरिरक्षणम् – षष्ठी तत्पुरुष, विजयस्य अर्थिनः = विजयार्थिनः – षष्ठी तत्पुरुष, क्षितेः ईशाः = क्षितीशाः (राजानः) – षष्ठी तत्पुरुष)

अर्थ– नीचता पर आये हुए शत्रुओं के मुकाबले में आप जैसे तेजस्वी के लिए (तेरह वर्ष की) सन्धि का पालन उचित नहीं है क्योंकि विजय चाहने वाले राजा तो (शत्रुओं के साथ की गई) सन्धि को किसी न किसी बहाने से तोड़ दिया करते हैं।

व्याख्या– द्रौपदी के कहने का आशय है कि जब कपटी शत्रुओं से मुकाबला हो तो किसी भी सन्धि को महत्त्व देना उचित नहीं है। साहस का आश्रय लेकर विजय के लिए प्रयास करना चाहिए।

विशेष– पुष्पिताग्रा छन्द (अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा)। काव्यलिंङ्ग और अर्थान्तरन्यास अलंकार की संसृष्टि।

46. **विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं**
शिथिलबलमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः।।१.४६।।

अन्वयः– विधिसमयनियोगात् दीप्तिसंहारजिह्मं शिथिलवसुम् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नं दिनादौ रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानं दिनकृतम् (सूर्यम्) इव लक्ष्मीः त्वां भूयः समभ्येतु।

अर्थ– भाग्य के चक्र/फेर से जिसकी दीप्ति (प्रकाश) समाप्त हो जाती है किन्तु अगले दिन के उदयकाल में उसे पुनः अन्धकार पर विजय प्राप्त करके पुनः अपने तेज

की प्राप्ति हो जाती है, उसी प्रकार विपत्ति के समुद्र में डूबे हुए आपको शत्रुरूपी अन्धकार को नष्ट करके पुनः तेजस्विता प्राप्त हो।

व्याख्या– द्रौपदी ने युधिष्ठिर की मंगलकामना के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करके पति के सौभाग्यवृद्धि की कामना इस श्लोक में प्रकट की है। सर्ग के प्रारंभ में श्री और अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द के प्रयोग से मंगलादि और मंगलान्त का सुन्दर संयोग किया गया है।

विशेष– मालिनी छन्द (ननमयय युतेयं मालिनी भोगिलोकैः), पूर्णोपमा अलंकार।

अपनी प्रगति जांचिए

4. युधिष्ठिर गुप्तचर को किसके विषय में पता करने के लिए नियुक्त करते हैं?
   (क) दुर्योधन (ख) कर्ण
   (ग) दुःशासन (घ) शकुनि
5. सर्ग के अन्त में किस शब्द का प्रयोग करके मंगलान्त का सुन्दर संयोग किया गया है?
   (क) पार्वती (ख) लक्ष्मी
   (ग) नारायण (घ) शिव

1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)

1.5 सारांश

'किरातार्जुनीयम्' में दो शब्द हैं– 'किरात' और 'अर्जुनीयम्'। भगवान् शिव किरात अथवा वनेचर का रूप धारण करके आए थे और अर्जुन को पाशुपत–अस्त्र देने से पहले उसकी परीक्षा लेने के लिए भंयकर युद्ध किया था। इस प्रमुख घटना के आधार पर ही इस महाकाव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रखा गया है। अर्जुन महाभारत का एक महान् धनुर्धारी सुप्रसिद्ध पात्र है। काव्य का आरम्भ द्वैतवन से होता है। युधिष्ठिर अपनी पत्नी द्रौपदी तथा भाइयों के साथ वनवास की अवधी व्यतीत कर रहे थे। वे दुर्योधन की शासन–प्रणाली को जानने के लिए एक गुप्तचर को भेजते हैं। यह गुप्तचर सब कुछ पता लगाकर युधिष्ठिर के पास आकर कहता है कि दुर्योधन ने अपनी उत्तम शासन प्रणाली के द्वारा समस्त प्रजाजनों को वशीभूत कर लिया है, वह सबल सेना तथा समस्त आवश्यक साधनों से युक्त है। उसके अधीनस्थ सभी राजा

तथा सेवक उसका अनुगमन करते हैं। यह सब सुनकर द्रौपदी अत्यधिक क्रुद्ध हो जाती है। प्रस्तुत सर्ग में द्रौपदी के तेजस्वी स्वरूप को चित्रित किया गया है। द्रौपदी धृतराष्ट्र को कहती है कि आपने अपने विशाल राज्य का द्यूतक्रीड़ा में परित्याग वैसे ही कर दिया है जैसे कोई मदमस्त हाथी अपने सिर पर रखी हुई माला को फेंक देता है। वह पुनः कहती है कि आपको 'दुष्ट के प्रति दुष्टता' के अनुसार दुर्योधन के प्रति नीतिपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। आपको वीर पुरुष की भाँति व्यवहार करना चाहिए। साहस का आश्रय लेकर विजय का प्रयास करना चाहिए। वह युधिष्ठिर के लिए सौभाग्यवृद्धि की मंगलकामना करती है।

अतः स्पष्ट रूप से भारवि कलापक्ष के कवि है। उनका ध्यान मुख्य रूप से अर्थ की गम्भीरता पर रहा है। इसी कारण से उनके विषय में कही गई 'भारवेऽर्थ गौरवम्' यह उक्ति प्रसिद्धि को प्राप्त हुई।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **किरात** – वनेचर
- **श्रियः** – राजलक्ष्मी
- **विदितः** – जानकर
- **जिताम्** – जीती गई
- **महीं** – पृथ्वी
- **मृषा** – झूठा
- **अनुज्ञाम्** – आज्ञा
- **अधिगम्य** – प्राप्त कर
- **वञ्चनीयः** – ठगना
- **हितं** – प्रिय
- **नक्तं** – रात्रि
- **विभज्य** – विभाग करके
- **अनारतं** – लगातार

1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारवि का परिचय संक्षेप में दीजिए?
2. किरातार्जुनीयम् की विषयवस्तु संक्षेप में बताइए?
3. प्रथम सर्ग की कथावस्तु पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालिए?
4. 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।' सूक्ति का अर्थ बताइए?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या कीजिए?
   (क) कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे
   जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
   न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
   प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।।
   (ख) क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो
   न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
   अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
   हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।
2. 'भारवेऽर्थ गौरवम्' भारति के विषय में कहीं गई इस उक्ति पर प्रकाश डालिए?
3. 'किरातार्जुनीयम्' की कथावस्तु को विस्तृत रूप में प्रतिपादित कीजिए?
4. 'किरातार्जुनीयम्' प्रथम सर्ग का सार लिखिए?

1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. किरातार्जुनीयम् (प्रथम–द्वितीय सर्गात्मकम्), डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग), श्री जनार्दन पाण्डेयकृत
3. किरातार्जुनीयम्, व्याख्याकार, मल्लिनाथसूरी, निर्णय सारग प्रेस, बम्बई।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा विश्वभारती, के, 37/109 गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी।

इकाई 2 उत्तररामचरितम् प्रथम अङ्क

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क की विषय–वस्तु
2.3 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क – व्याख्या भाग
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

'उत्तररामचरितम्' भवभूति द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इस नाटक के द्वारा उनकी नाट्यकला तथा कवित्व शक्ति पूर्ण परिणति को प्राप्त हुई है। इस नाटक में सात अङ्क हैं। भवभूति ने उत्तररामचरितम् में राम के जीवन की उत्तरार्द्ध की घटनाओं को प्रतिपादित किया है। इस नाटक में मुख्य रूप से करुण रस की प्रधानता है। यह नाटक रामायण के उत्तरकाण्ड के सीता-परित्याग कथानक पर आश्रित है। राम लोक कल्याण के लिए स्नेह, दया और सुख की मूर्ति अपनी प्रिय सीता का परित्याग कर देते हैं और स्वयं अन्दर से असहनीय वेदना से दग्ध होते रहते हैं। वे अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करते हैं। प्रजा का कल्याण चाहना ही उनका परम कर्तव्य है।

प्रस्तुत इकाई में 'उत्तररामचरितम्' के प्रथम अङ्क को प्रतिपादित किया गया है। राज्याभिषेक के पश्चात् राम राजा के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने में अत्यन्त संलग्न हो जाते हैं। उनके वसिष्ठ आदि सभी गुरुजन तथा माताएं ऋष्यश्रृङ्ग के द्वारा प्रारम्भ किये गए यज्ञ में चले जाते हैं। गुरु वसिष्ठ राज्य के प्रति कर्तव्यपालन के सम्बन्ध में राम को संदेश भेजते हैं। इस समय सीता पूर्णगर्भा होती है। अतः राम को उनके साथ ही रहने के लिए कहा जाता है। सीता के साथ राम चीत्रवीथी के दर्शन करने के लिए जाते हैं। चित्रवीथी में राम के जीवन से सम्बद्ध चित्रों को प्रदर्शित किया गया है। सीता-वियोग के चित्रों को देखकर राम को पुनः वियोग का संकेत प्रतीत होता है। अन्त में गुप्तचर दुर्मुख राम के समक्ष उपस्थित होकर राज्य में फैले सीतापवाद का समाचार सुनाता है। राम सीता के परित्याग का कठोर निर्णय लेते हैं। वे बहुत ही दुःखी मन से लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि सीता को वन में छोड़ आओ।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उत्तररामचरितम् की कथावस्तु को विस्तार से जान पाएंगे;
- उस समय की सामाजिक परिस्थितियों से अवगत हो पाएंगे;

- तत्कालीन आदर्शों के बारे में जान पाएंगे;
- राम और सीता के हृदय की करुण पीड़ा के बारे में विस्तार से समझ पाएंगे।

टिप्पणी

2.2 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क की विषय–वस्तु

भवभूति विरचित प्रख्यात नाटक 'उत्तररामचरितम्' के प्रथम अंक के अध्ययन से पूर्व नाटक की उत्पत्ति आदि के विषय में समझ लेना आवश्यक है। नाटक की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों की अलग-अलग मान्यताएँ हैं। भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार नाटकों की उत्पत्ति के विषय में चर्चा की है।

विदेशी विद्वानों के मत– डॉ. रिजवे, 'वीरपूजावाद' से नाटकों का आरम्भ स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि जैसे ग्रीक देश में नाटकों का आरम्भ वीर पुरुषों के प्रति आदर के कारण हुआ वैसे ही भारत देश में भी नाटकों का प्रारम्भ वीरों के सम्मान के कारण हुआ। कुछ विद्वानों ने नाटक का प्रारम्भ 'मेपोल' नृत्य को स्वीकार किया है। वहाँ के रहने वाले लोग एक लम्बा बाँस मैदान में गाड़कर उसके चारों तरफ नाचते हैं। डॉ. कीथ का मत है कि प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों को साधारण जन के समक्ष मूर्तरूप में दिखाने की इच्छा से ही नाटकों की उत्पत्ति हुई। प्रो. हिलब्रेण्ट तथा स्टेनकोनो का मत है कि स्वांग से ही नाटक का विकास हुआ। उनका मानना है कि संस्कृत भाषा के साथ प्राकृत का प्रयोग, गद्य एवं पद्य का मिश्रण तथा विदूषक जैसे प्रिय पात्र की कल्पना स्वांगों के आधार पर ही हुई है।

भारतीय मत– नाटक के बीज वैदिक साहित्य में ही प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में संवाद-सूक्तों में यम-यमी संवाद, पुरुरवा-उर्वशी संवाद, सरमा-पणि आदि संवादों से, सामवेद में संगीत के विद्यमान होने से, यजुर्वेद में धार्मिक क्रियाओं के अवसर पर नृत्य का विधान होने से नाटकीय तत्त्वों की प्राप्ति होती है। रामायण-महाभारत काल में रंगशाला, नट जैसे शब्दों का अत्यधिक प्रयोग नाट्यकला की वृद्धि को प्रदर्शित करता है। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य (3/2/111) में कंसवध तथा बालिवध नाम के दो नाटकों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया है।

- **संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ**

संस्कृत के नाटकों में रस की प्रधानता होती है। कवि की सफलता उसके द्वारा की गयी रस की अभिव्यंजना के आधान पर ही तय की जाती है। संस्कृत के नाटक आदर्शवादी होते हैं। उनमें आदर्श चरित्रों की ही रचना की जाती है। वे केवल मनोरंजन ही नहीं करते अपितु कल्याणकारी मार्ग की ओर प्रवृत्त करते हैं। एक सच्चा आदर्श प्रस्तुत करते हैं। 'विदूषक' की कल्पना संस्कृत के नाटकों की स्वयं की ही रचना है। संस्कृत नाटकों में पात्रों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती। उच्च श्रेणी के पात्र संस्कृत बोलते हैं। स्त्रियाँ व सेवक जन प्राकृत भाषा में बोलते हैं। नाटक की भाषा गद्यमय तथा पद्यमय दोनों प्रकार की होती है। संस्कृत भाषा के नाटकों में वध, शयन, भोजन, मृत्यु तथा अन्य लज्जायुक्त व्यापारों को मंच पर दिखाने का निषेध है। वे हमेशा सुखान्त वाले होते हैं। संस्कृत नाटकों में प्रकृति का मानव के साथ गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है।

उत्तररामचरितम् के रचनाकार भवभूति का स्थितिकाल, व्यक्तित्व तथा कृतित्व

स्थितिकाल– महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य की एक बहुमूल्य धरोहर हैं। इनको भी कालिदास के समान ही सम्मान प्राप्त हुआ है। कवि भवभूति ने अपने स्थितिकाल के सम्बन्ध में स्वयं कोई संकेत नहीं दिया है, किन्तु भवभूति के विषय में कुछ ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा उनके स्थितिकाल को निश्चित किया जा सकता है।

आचार्य मम्मट (1100 ई.) ने काव्य प्रकाश में, महिमभट्ट (1100 ई;) ने व्यक्ति विवेक में, आचार्य क्षेमेन्द्र (1100 ई.) ने औचित्य विचार-चर्चा ग्रन्थ में तथा धनञ्जय (995 ई.) ने दशरूपक में भवभूति के उदाहरण दिए हैं।

राजशेखर (900 ई.) ने अपने आपको भवभूति का अवतार रूप माना है। वामन (800 ई.) के द्वारा काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ग्रन्थ में उत्तररामचरित के (1/28) श्लोक को उद्धृत किया गया है। इस प्रकार के प्रमाणों के आधार पर सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को भवभूति का समय माना जा सकता है।

व्यक्तित्व– भवभूति का जन्म दक्षिण में विदर्भ देश के पद्मपुर नगर में, कश्यप गोत्र वाले उदुम्बर वंश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था। ये ज्ञानगुरु नाम वाले गुरु के शिष्य थे। कुछ विद्वान् इनका जन्म-स्थान द्रविड़ देश को स्वीकार करते हैं।

भवभूति व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा के महान् ज्ञाता थे। इनका आरम्भ का नाम श्रीकण्ठ था। ये वेद, उपनिषद्, वेदान्त, सांख्य, योग, धर्मशास्त्र, राजनीति एवं नाट्यशास्त्र के भी पण्डित थे।

भवभूति स्वभाव से गम्भीर थे। भवभूति का व्यक्तित्व संस्कृत-साहित्य में जीवन की कटुता, मधुरता, आन्तरिक प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति के सुकोमल व भयानक दोनों रूपों को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

कृतित्व– भवभूति की हमें तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं–(1) मालतीमाधव (2) महावीरचरित तथा (3) उत्तररामचरित। ये तीनों ही नाटक हैं।

(1) **मालतीमाधव**– इस प्रकरण में 10 अंक हैं। इसमें मालती तथा माधव के प्रेम व विवाह की काल्पनिक कथा को चित्रित किया गया है। भूरिवसु और देवरात पद्मावती और विदर्भ के राजमन्त्री थे। उन्होंने यह निश्चय किया था कि वे अपने पुत्र-पुत्रियों का आपस में विवाह करा देंगे। इस कथा में मुख्य रूप से श्रृंगार-रस प्रधान है।

(2) **महावीरचरित**– इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें श्रीरामचन्द्र के राज्य-अभिषेक तक की कथा का वर्णन किया गया है। इस नाटक के नायक श्रीरामचन्द्र हैं। कवि के द्वारा इसमें अनेक नयी कल्पनाएँ की गयी हैं। नाटक के प्रारम्भ में रावण को सीता से विवाह करने का इच्छुक दिखलाकर कवि ने नाटक में संघर्ष को प्रदर्शित किया है।

(3) **उत्तररामचरित**– 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' कहकर संस्कृत साहित्य में भवभूति की इस रचना को सर्वोपरि रखा गया है। इसमें कवि ने अपनी कल्पना

का विलक्षण व प्रभावी प्रयोग किया है। यह सात अंकों वाला नाटक है और इसमें श्रीरामचन्द्र के राज्यारोहणोत्तर चरित्र का वर्णन किया गया है।

टिप्पणी

• उत्तररामचरित की नाटकीय विशेषताएँ

उत्तररामचरित की कथावस्तु का आधार रामायण महाकाव्य है, किन्तु उसमें भवभूति के द्वारा अनेक परिवर्तन किए गए हैं। अत: उनकी प्रतिभा के कारण उत्तररामचरित का कथानक एक नए रूप में प्रकाश में आया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'उत्तररामचरित' एक सफल नाटक है। राम प्रजा का पालन करने वाले हैं और वे अपना सब कुछ प्रजाहित के लिये समर्पित कर सकते हैं। सीता-करुण रस की मूर्ति हैं। वह महान् विरह युक्त होने पर भी अपने तेज से नाटक के प्रत्येक भाग को प्रकाशयुक्त कर रही है। लक्ष्मण को आज्ञा का पालन करने वाला, कर्त्तव्यनिष्ठ, गम्भीर और तेजस्वी स्वभाव वाला चित्रित किया गया है। कौशल्या कष्टों की मारी हुई हैं तो राजा जनक भाग्य के द्वारा अपहरण किए जाने पर भी क्षत्रिय धर्म निभा रहे हैं। लव-कुश बाल-सुलभ चंचलता वाले होने पर भी अत्यन्त साहसी हैं। चन्द्रकेतु राजकुमार होने पर भी विनय और पराक्रम से युक्त हैं।

नाटक के संवाद छोटे-छोटे और सरलता से समझ आने वाले हैं। कहीं-कहीं पर छोटे-छोटे वाक्य बड़े-बड़े अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं। सीता का 'वत्स! इयमप्यपरा का?' पूछना, लक्ष्मण का **'आर्ये'! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्'** यह कहना, वनदेवता का **'हन्त! तर्हि पण्डितः संसारः'** कहना उनके सारयुक्त वचनों के कुछ उदाहरण हैं। उत्तररामचरित प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। वनों में रहने वाले पशु, पक्षी तथा मृग आदि भी राम व सीता के बन्धु-बान्धव हैं। मयूर भी सीता को याद करता है। पेड़ भी फूलों के द्वारा राम को अर्घ्य देते हैं। उनके विलाप करने पर पत्थर भी रो पड़ते हैं।

उत्तररामचरित में सीता और राम के दाम्पत्य-प्रेम का अत्यन्त मनोहर चित्रण किया गया है।

भाषा की दृष्टि से उत्तररामचरित भवभूति की दूसरी रचनाओं की अपेक्षा सरल है।

'उत्तररामचरित' में करुण रस की प्रधानता है। वीर, अद्भुत इत्यादि रस अंग रूप में विद्यमान है। इसकी कथावस्तु नाट्यशास्त्र की दृष्टि से भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। रस को अभिव्यक्त करने में तृतीय अंक विशेष महत्त्व रखता है।

• पात्र-परिचय

श्रीरामचन्द्रः	–	अयोध्या के राजा (नायक)
सीता	–	राम की पत्नी (नायिका)
लक्ष्मणः	–	राम के छोटे भाई
शत्रुघ्नः	–	राम के छोटे भ्राता
जनकः	–	सीता के पिता
अष्टावक्रः	–	प्रख्यात मुनि

टिप्पणी

वाल्मीकिः – रामायण के निर्माता महर्षि
सौधातकिः – वाल्मीकि शिष्य
दण्डायनः – वाल्मीकि शिष्य
लव-कुशौ – राम के दो पुत्र
चन्द्रकेतुः – लक्ष्मण पुत्र
सुमन्तः – सारथि
विद्याधरः – देवयोनि पात्र
कञ्चुकी – अन्तःपुर के वृद्ध ब्राह्मण
दुर्मुखः – गुप्तचर
शम्बूकः – शूद्रतापस
मुनिकुमारः – सैनिक
वासन्ती – वनदेवता
आत्रेयी – ब्रह्मचारिणी
तमसा तथा मुरला – दो नदी देवता
भागीरथी – गंगाजी
अरुन्धती – वसिष्ठ की पत्नी
विद्याधरी – विद्याधर की पत्नी
प्रतीहारी – अन्तःपुर द्वार की रक्षित्री
शान्ता – दशरथपुत्री
कौशल्या – राम की माता

प्रस्तुत इकाई में भवभूति कृत उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक का अध्ययन किया जा रहा है। प्रारम्भ में यह संकेत किया गया है कि राम के राज्याभिषेक के पश्चात् आमन्त्रित जनक आदि राजा एवं समस्त ऋषिगण विदा कर दिए गए हैं। महर्षि वसिष्ठ के संरक्षण में राजा दशरथ के जामाता ऋष्यश्रृंग द्वारा प्रारम्भ किये गए यज्ञ में राम की माताएँ अरुन्धती के साथ गई हुई है। पूर्णगर्भा सीता के मनोविनोद के लिए राम को अयोध्या में ही रहने का आदेश किया गया है। इसके बाद महर्षि अष्टावक्र आते हैं तथा सीता के पुत्रवती होने के गुरु वसिष्ठ के आशीर्वाद को सुनाते हैं। वे कहते हैं कि वसिष्ठ जी ने राम के लिए कहा है कि प्रजा को प्रसन्न रखने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। इसके उत्तर में राम कहते हैं कि यदि उन्हें प्रजा-कल्याण के लिए सीमा का परित्याग भी करना पड़े तो वे विचार नहीं करेंगे। यहाँ से सीता-परित्याग की आशंका उत्पन्न होती है। इसके बाद लक्ष्मण मनोविनोदार्थ चित्रवीथिका में सीता को ले जाते हैं। सीता के द्वारा वनभ्रमण तथा भागीरथी में अवगाहन की इच्छा होने पर लक्ष्मण को रथ लाने की आज्ञा देते हैं। इसी बीच राम का गुप्तचर दुर्मुख सीता विषयक लोकापवाद की सूचना देता है। अतः राम प्रजा-कल्याण के लिए सीता-परित्याग का निश्चय करते हैं और लक्ष्मण को सीता को रथ में बैठाकर वन में छोड़ने का आदेश देते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'उत्तररामचरितम्' नाटक किस कवि की रचना है?
   (क) भवभूति (ख) भास
   (ग) कालिदास (घ) शूद्रक
2. 'उत्तररामचरितम्' नाटक में कुल कितने अङ्क हैं?
   (क) 5 अङ्क (ख) 6 अङ्क
   (ग) 7 अङ्क (घ) 10 अङ्क
3. 'उत्तररामचरितम्' नाटक की कथावस्तु किस महाकाव्य पर आधारित है?
   (क) महाभारत (ख) रामायण
   (ग) रघुवंश (घ) शिशुपालवध
4. 'उत्तररामचरितम्' नाटक में कौन-से रस की प्रधानता है?
   (क) करुण रस (ख) हास्य रस
   (ग) शानत रस (घ) वीर रस

2.3 उत्तररामचरितम् – प्रथम अङ्क – व्याख्या भाग

यहाँ पर उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की व्याख्या की जा रही है।

प्रथम अंक

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।1।।

• • •

{**अन्वय** : पूर्वेभ्यः कविभ्यः नमोवाकं प्रशास्महे, आत्मनः कलां ताम् अमृतां वाचं विन्देम च।}

प्राचीन (वाल्मीकि, व्यास आदि) कवियों को नमस्कार करके यह प्रार्थना करते हैं कि (हम) ब्रह्म की कलास्वरूप नित्य वाणी की देवी सरस्वती को प्राप्त करें। यहाँ पर मंगलाचरण प्रस्तुत किया गया है। माँ सरस्वती की आराधना की गई है। [श्लोक 1]

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः- अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान्विज्ञापयामि- एवमत्रभवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान्काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।

• • •

{नान्दी पाठ के पश्चात्}

सूत्रधार – अत्यधिक, विस्तार को रहने दो। आज भगवान् कालप्रिय-नाथ (शंकर) की यात्रा के उत्सव पर मैं पूजनीय लोगों से निवेदन करता हूँ कि आप सब लोगों को ज्ञात

हो कि कश्यप गोत्र में पैदा हुए, व्याकरण, मीमांसा एवं न्याय के विद्वान् 'भवभूति' नाम से प्रसिद्ध, 'श्रीकण्ठ' की उपाधि को धारण करने वाले सम्मानीय कवि हैं, जो कि 'जतुकर्णी' के सुपुत्र हैं।

टिप्पणी

• • •

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥2॥

{**अन्वयः**- यम्, ब्रह्माणम्, इयम्, देवीवाक्, वश्या इव, अनुवर्तते, तत्प्रणीतम्, उत्तरं रामचरितम्, प्रयोक्ष्यते।}

यह वाणी की देवी सरस्वती वशवर्तिनी के समान जिस भवभूति को ब्रह्मस्वरूप जानकर उनका अनुसरण करती (सार्थक होती) है। उनके द्वारा रचित 'उत्तररामचरितम्' नाटक का अभिनय प्रस्तुत किया जा रहा है। [श्लोक 2]

• • •

एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः। (समन्तादवलोक्य) भो भोः यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोर्महाराजरामस्यायं पट्टाभिषेकेसमयो रात्रिदिवमसंहृतनान्दीकः, तत्किमिदानीं विश्रान्तचारणानि चत्वरस्थानानि।

(प्रविश्य)

नटः- भाव! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत्।

सूत्रधारः- आ, अस्त्येतन्निमित्तम्।

नटः- अन्यच्च-

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्या गता रामस्य मातरः।
अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्॥3॥

{**अन्वयः**- वसिष्ठाधिष्ठिता देव्या, रामस्य मातरः अरुन्धतीं पुरस्कृत्य, यज्ञे, जामातुः आश्रमम् गताः।}

अनुवाद – यह मैं कार्य विशेष के कारण अयोध्या में निवास करने वाला एवं उन्हीं श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक के समय वाला हो गया हूँ। (चारों तरफ देखकर) अरे, जब रावण-वंश के लिये अग्नि के समान (संहारक) सम्माननीय श्रीरामचन्द्र जी के राज्याभिषेक के समय रात-दिन मंगलवाचक नान्दी का प्रयोग हो रहा है तब फिर चौराहे इस समय चारणों अर्थात् मांगलिक वाद्ययन्त्रों से रहित क्यों हैं?

[**प्रवेश करके**]

नट– आर्य! जिनके सम्मान में इतने दिन तक यह उत्सव चल रहा था, उन राजा राम ने लंका युद्ध में सहायता करने वाले उन वानरों, राक्षसों तथा अभिनन्दन करने के लिये आए हुए, विभिन्न दिशाओं को निर्मल करने वाले ब्रह्मर्षि एवं राजर्षियों को अपने घर जाने के लिये विदा कर दिया है।

सूत्रधार- अरे! तो यह कारण है?

टिप्पणी

नट– और भी है–

महर्षि वसिष्ठ के अपने संरक्षण में ले जाई गई श्रीरामचन्द्र जी की (कौशल्या आदि) माताएँ भगवती अरुन्धती को आगे करके यज्ञ में जामाता (ऋष्यशृङ्ग) के आश्रम में गई है। [श्लोक 3]

• • •

सूत्रधारः– वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

नटः– **कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।**
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ॥4॥

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृङ्ग उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

{**अन्वयः**– राजा, दशरथः, शान्तां, नाम, कन्यां, व्यजीजनत्। राज्ञे, रोमपादाय अपत्यकृतिकां, तां ददौ।}

अनुवाद

सूत्रधार – मैं दूसरे देश में रहता हूँ, इसलिए पूछता हूँ कि जामाता अर्थात् दामाद कौन है?

नट – राजा दशरथ के यहाँ पर शान्ता नाम की पुत्री पैदा हुई। उन्होंने उसको दत्तक पुत्री के रूप में राजा रोमपाद को दे दिया। [श्लोक 4]

विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यशृङ्ग ने उसके साथ विवाह कर लिया। इस समय उन्होंने बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ प्रारंभ किया है। उनके आग्रह करने पर, पूरी तरह से गर्भवती होने पर भी श्री सीता को छोड़कर गुरुजन वहाँ गए हैं।

सूत्रधारः– तत्किमनेन? एहि राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः।

नटः– तेन हि निरूप्यतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भाव।

सूत्रधारः– मारिष!

सर्वथा व्यवहर्तव्यं, कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः॥5॥

{**अन्वयः**– सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता कुतः? हि जनः, यथा, स्त्रीणां, तथा, वाचां, साधुत्वे, दुर्जनः।}

अनुवाद

सूत्रधार – तब (हमें) इससे क्या लेना? आओ, अपनी जाति के व्यवहार के अनुसार हम राजदरबार में ही उपस्थित हों।

नट – यदि ऐसी बात है तो आप महाराज की प्रशंसा करने योग्य अत्यन्त शुद्ध प्रशस्ति-वाचन के बारे में सोच-विचार कर लें।

सब प्रकार से उचित व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि सदैव दोष रहितता कैसे हो सकती है? दुर्जन व्यक्ति जैसे स्त्रियों के चरित्र के बारे में शंका करते रहते हैं वैसे ही निर्दोष लोगों की वाणी में भी दोष देखने वाले होते हैं अर्थात् दुष्ट प्रवृत्ति वाले सर्वत्र दोष ढूंढ़ने वाले होते हैं। [श्लोक 5]

• • •

नटः- अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्या अपि हि वैदेह्याः साऽपवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः॥6॥

टिप्पणी

{**अन्वयः**- यतो, देव्याः, वैदेह्याः अपि, जनः, सापवादः। रक्षोगृहस्थितिः मूलम्, अग्निशुद्धौ, तु, अनिश्चयः।}

अनुवाद

नट- ऐसे लोगों को तो 'अत्यन्त दुर्जन कहना' चाहिए। क्योंकि-

(परम पवित्र) सीता में भी लोग दोष देखने वाले हैं। इसका कारण राक्षस रावण के घर में निवास के बारे में तो लोगों का निश्चय है परन्तु तदुपरान्त सीता की अग्नि परीक्षा देकर सिद्ध की गयी दोष रहितता पर तो लोग विश्वास नहीं करते। यहाँ पर कहने का अभिप्राय यह है कि सीता जी के अग्निपरीक्षा देने पर भी अत्यन्त दुर्जन व्यक्ति विश्वास नहीं करते। [श्लोक 6]

• • •

सूत्रधारः- यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।

नटः- सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः, क्वेदानीं महाराजः? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति-

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि,
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय,
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः॥7॥

(इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रस्तावना

{**अन्वयः**- स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य, अमूनि, दिनानि, उत्सवेन, नीत्वा, जनकः अद्य, विदेहान् गतः। ततः, विमनसः, देव्याः, परिसान्त्वनाय, नरेन्द्रः, धर्मासनात् वासगृहं विशति।}

सूत्रधार- यदि यह झूठी फैली हुई बात महाराज के कानों में पड़ जाय तो बड़ा कष्ट (अनर्थ) होगा।

नट- सब तरह से ऋषिगण और देवता लोग कल्याण करेंगे। (घूमकर) अरे, अरे! इस समय महाराज कहाँ पर है? (सुनकर) लोग (इस प्रकार) कहते हैं कि-

प्रेम पूर्वक स्वागत करने के लिए आए हुए राजा जनक इतने दिन उत्सव के रूप में बिताकर आज अपने विदेह-नगर को चले गए हैं। इस कारण से दुःखी मन वाली सीता को सान्त्वना देने के लिये महाराज धर्म के आसन से उठकर शयनघर में प्रवेश कर रहे हैं। यहाँ पर कहने का तात्पर्य यह है कि राजा जनक के जाने के बाद सीता जी अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं, तब राजा राम उनको सान्त्वना देने के लिए शयनकक्ष में आते हैं। [श्लोक 7]

(इस प्रकार कहकर दोनों निकल जाते हैं।)

• • •

टिप्पणी

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

रामः- देवि! वैदिहि! विश्वसिहि, ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।

किंत्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।8।।

{**अन्वयः**- किन्तु, अनुष्ठाननित्यत्वम्, स्वातन्त्र्यमपकर्षति, हि आहिताग्नीनाम् गृहस्थता, प्रत्यवायैः, सङ्कटा।}

अनुवाद

[इसके बाद बैठे हुए राम और सीता प्रवेश करते हैं।]

राम - महारानी सीता! धैर्य धारण करो, वे गुरुजन हमको छोड़ने में समर्थ नहीं है।

परन्तु अनुष्ठान (नित्य किए जाने वाले यज्ञ आदि) का प्रतिदिन सम्पन्न करना स्वतन्त्रता को छीन ही लेता है क्योंकि अग्निहोत्रियों का गृहस्थ जीवन कठिनाईयों के कारण दुःखों से भरा होता है। कहने का अभिप्राय है कि प्रतिदिन यज्ञ आदि अनुष्ठान का किया जाना कहीं न कहीं स्वतन्त्रता को तो छीन ही लेता है। [श्लोक 8]

• • •

सीता- जाणामि अज्जउत्त! जाणामि। किंदु संदावआरिणो बन्धु जणविप्पओआ होन्ति! [जानामि आर्यपुत्र! जानामि, किन्तु सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।]

रामः- एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः। येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी- रामभद्र! (इत्यर्धोक्ते साशंकम्) महाराज!

रामः- (सस्मितम्) आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य, तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

कञ्चुकी- देव! ऋष्यृङ्गाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः।

सीता- अज्ज। तदो किं विलम्बीअदि। [आर्य! ततः किं विलम्ब्यते]।

रामः- त्वरितं प्रवेशय।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः। प्रविश्य-)

अष्टावक्रः- स्वस्ति वाम्।

रामः- भगवन्! अभिवादये, इत आस्यताम्।

सीता- भअवं णमो दे। अवि कुसलं सजामातुअस्स गुरूअणस्स अज्जाए सन्ताए अ? [भगवन्, नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च?]

रामः- निर्विघ्नः सोमपीथी भावुको मे भगवानृश्यशृङ्गः, आर्या च शान्ता?

सीता- अम्हे वि सुमरेदि? [अस्मानपि स्मरति?]

अष्टावक्रः- (उपविश्य) अथ किम्। देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह-

अनुवाद

टिप्पणी

सीता - आर्यपुत्र! मैं जानती हूँ, परन्तु बन्धुजनों का बिछुड़ना दु:ख देने वाला होता है।

राम - इस प्रकार ही है, ये संसार के बन्धन निश्चय ही हृदय के मर्म-स्थलों को चीर देने वाले हैं जिनसे घृणा करते हुए विद्वान् लोग सारी इच्छाओं का परित्याग करके वनों में आराम करते हैं। अत: ['इच्छा' ही दु:खों का कारण है। इनका त्याग करके ही ज्ञानी मनुष्य सब सांसारिक बन्धनों को छोड़कर शान्तिपूर्ण जीवन बिताते हैं।]

(प्रविष्ट होकर)

कञ्चुकी- रामभद्र ....! (इतना ही कहने पर बीच में शंकायुक्त होकर, महाराज!)-

राम- (मुस्कराहट सहित) आर्य! पिताजी के सेवकों के द्वारा मेरे लिये निश्चय ही 'रामभ्रद्र' इस प्रकार का सम्बोधन करना उचित लगता है ('महाराज' कहना नहीं।) अत: पहले किए गए अभ्यास के अनुसार ही कहिये।

कञ्चुकी- स्वामी! ऋष्यशृङ्ग जी के आश्रम से अष्टावक्र जी आए हैं।

सीता- आर्य! तब देर किसलिए की जा रही है।

राम- उनको तुरन्त प्रवेश कराइए।

['कञ्चुकी' चला जाता है।]

(प्रवेश करके)

अष्टावक्र– आप दोनों का सदैव कल्याण हो।

राम- भगवन्! मैं नमस्कार करता हूँ। इधर बैठिये।

सीता- भगवन्! प्रणाम! जामाता गुरुजन तथा आर्या शान्ता देवी कुशलपूर्वक तो हैं?

राम- सोमरस का पान (सोमपीथी तु सोमप:–अमरकोश:) करने वाले मेरे जीजा भगवन् ऋष्यशृङ्ग तथा आर्या शान्ता आनन्दपूर्वक तो है?

सीता- क्या वे हम लोगों को भी याद करती हैं?

अष्टावक्र- (बैठकर) जी हाँ। देवी! कुल के गुरु भगवान् वसिष्ठ ने तुम्हारे लिये यह कहा है कि–

• • •

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनक: पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च॥9॥

{**अन्वय:**- हे नन्दिनि! भगवती विश्वम्भरा, भवतीमसूत, प्रजापतिसम:, जनकस्ते पिता, त्वं, तेषां पार्थिवानां, वधू:, असि येषां कुलेषु, सविता, गुरु:, वयं च (गुरव:)।}

तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूया:।

राम:- अनुगृहीता: स्म:।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥10॥

{**अन्वयः**- लौकिकानां, साधूनां, वाक्, अर्थम्, अनुवर्तते, हि पुनः, आद्यानाम्, ऋषीणाम्, वाचम्, अर्थः, अनुधावति।}

अनुवाद

यहाँ पर अष्टावक्र सीता जी को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि संसार का पालन-पोषण करने वाली भगवती भूमि ने तुमको पैदा किया है, विधाता के समान राजा जनक तुम्हारे पिता है तथा हे आनन्द से युक्त सीता! तुम उन राजाओं की पुत्रवधू हो, जिनके वंश में भगवान् सूर्य एवं हम गुरुजन हैं। [श्लोक 9]

तब इससे बढ़कर और क्या आशीर्वाद दें? केवल (यही कामना है) कि तुम पराक्रमी सन्तान को पैदा करने वाली हो।

राम- हम धन्य हो गए। 'क्योंकि-

लौकिक सज्जन पुरुषों की वाणी तो अर्थ का अनुगमन करती है किन्तु प्राचीन ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ दौड़ता है। यहाँ पर कहने का अभिप्राय यह है कि लौकिक साधु पुरुषों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है किन्तु प्राचीन ऋषियों की वाणी का अर्थ पीछा करता है। [श्लोक 10]

• • •

अष्टावक्रः- इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः, शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम्- "यः कश्चिद्गर्भदोहदो भवत्यास्याः, सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्य" इति।

रामः- क्रियते यद्येषा कथयति।

अष्टावक्रः- ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्- "वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासीः। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः। तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्याम, इति।

रामः- (सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु। भगवता वसिष्ठेन न किञ्चिदादिष्टोऽस्मि?

अष्टावक्रः- श्रूयताम्।

अनुवाद

अष्टावक्र- भगवती अरुन्धती ने, (कौशल्या प्रभृति) महारानियों ने तथा शान्ता ने बार-बार यह संदेश दिया है कि-

(सीता की) "गर्भ के समय में जो भी कोई अभिलाषा हो उसको बिना देर किए अवश्य मान लेना चाहिए।"

राम- यदि ये बताती हैं, तो (अवश्य) पूर्ण की जाती है।

अष्टावक्र- ननद के पतिदेव (ऋष्यशृङ्ग) ने देवी के लिये आपको सन्देश दिया है कि- "वत्से! गर्भ परिपक्व होने के कारण तुमको यहाँ पर (इस उत्सव में) नहीं लाया गया है। वत्स रामचन्द्र को भी तुम्हारा मन बहलाने के लिए वहीं रहने दिया गया है। (इसलिए) पुत्र से भरी हुई गोद वाली सौभाग्यशालिनी तुमको देखेंगे।"

राम- (प्रसन्नतापूर्वक लज्जा और मुस्कान सहित) ऐसा ही हो! भगवान् वसिष्ठ के द्वारा क्या मेरे लिए कोई आदेश नही दिया गया है।

अष्टावक्र- सुनिये-

• • •

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥11॥

{**अन्वयः**- जामातृयज्ञेन, वयं निरुद्धाः, त्वं, बालः, एव, असि, राज्यं च नवम्, प्रजानाम्, अनुरञ्जने, युक्तः, स्याः, तस्माद्, यशः (भविष्यति), यद् वः, परमं, धनम्।}

रामः- यथा समादिशति भगवान्मैत्रावरुणिः।

स्नेहं, दयां च, सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥12॥

{**अन्वयः**- लोकस्य, आराधनाय, स्नेहं, दयां, सौख्यं, च, यदि वा जानकीम् अपि, मुञ्चतः, में व्यथा, न अस्ति।}

अनुवाद

जामाता के यज्ञ के कारण हम लोग रुके हुए हैं, तुम बालक ही हो और राज्य भी नया है। अतः तुम प्रजा के सन्तोष में लीन रहो। प्रजा के सन्तोष से जो कीर्ति प्राप्त होगी, वही तुम्हारी श्रेष्ठ सम्पत्ति होगी। यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि प्रजा का सन्तोष ही सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। उससे ही तुमको वास्तविक यश की प्राप्ति होगी। [श्लोक 11]

राम- भगवान् वसिष्ठ जी जैसा भी आदेश देते हैं।

यहाँ पर राम कहते हैं कि प्रजा का कल्याण करना ही मेरा परम कर्तव्य है। प्रजा का कल्याण करने के लिये, मुझे, अनुराग, करुणा, सुख अथवा प्राणों से प्रिय सीता को भी यदि छोड़ना हो तो मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। [श्लोक 12]

• • •

सीताः- अदो जेव्व राहवधुरन्धरो अज्जउत्तरो। [अत एव राघवधुरन्धर आर्यपुत्रः]

रामः- कः कोऽत्र भोः? विश्राम्यतादष्टावक्रः।

अष्टावक्रः- (उत्थाय परिक्रम्य च।) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः। (इति निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः- जयति जयत्यार्यः। आर्य! अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम्। यत्पश्यत्वार्यः।

रामः- जानासि वत्स! दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिं यावत्?

लक्ष्मणः- यावदार्याया हुताशनशुद्धिः।

रामः- शान्तं पापम् (ससान्त्ववचनम्।)

उत्पत्तिपरिपूतायाः, किमस्याः पावनान्तरैः?
तीर्थोदकं च वह्निश्च, नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥13॥

{**अन्वयः**– उत्पत्तिपरिपूतायाः, अस्याः, पावनान्तरैः किम्? तीर्थोदकं वह्निः, च अन्यतः, शुद्धिं न, अर्हतः।}

अनुवाद

सीता– इसलिए तो आर्यपुत्र रघुवंशियों में सबसे सम्माननीय हैं।

राम– अरे, यहाँ पर कौन है? अष्टावक्र को आराम कराइए।

अष्टावक्र– (उठकर और धूमकर) अरे, राजकुमार लक्ष्मण आ गए हैं। (इस प्रकार कहकर निकल जाते हैं।)

[प्रवेश करके]

लक्ष्मण– विजय हो, आर्य की विजय हो! आर्य! हमारे द्वारा बताए गए आपके चरित्र को अर्जुन नामक चित्रकार के द्वारा इस चित्रफलक पर बना दिया गया है। तो आर्य आप इसको देखिये।

राम– वत्स! तुम उदास हुए मन वाली सीता को प्रसन्न करना जानते हो। तो किस समय तक चित्रित किया गया है?

लक्ष्मण– जब तक आर्या की अग्नि–परीक्षा द्वारा शुद्धता प्रमाणित हुई है।

राम– पाप शान्त हो। (सान्त्वनायुक्त वचनों से)

जन्म से ही पवित्र इस सीता की पवित्रता के लिए अन्य पवित्रता के साधनों की क्या आवश्यकता है? तीर्थ स्थानों का जल तथा अग्नि शुद्ध होने के कारण अन्य साधनों से शुद्ध किए जाने योग्य नहीं है। [श्लोक 13]

• • •

देवि देवयजनसम्भवे, प्रसीद! एष ते जीवितावधिः प्रवादः।

क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि॥14॥

सीता– होदु। अज्जउत्त, होदु। एहि। पेक्खह्म दाव दे चरिदम्। (इत्युत्थाय परिक्रामति।) भवत्वार्यपुत्र, भवतु एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।

{**अन्वयः**– क्लिष्टः, जनः, जनैः, अनुरञ्जनीयः, किल तत् ते, नः यत्, अशुभम् उक्तम, तत्, न, क्षमम्। सुरभिणः कुसुमस्य, मूर्ध्नि स्थितिः, नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न।}

अनुवाद

यज्ञ की भूमि से उत्पन्न देवी! प्रसन्न होइए! यह तुम्हारे जीवन के अन्त तक रहने वाली निन्दा है।

दुःख है कि वंश के कीर्ति रूपी धन वाले (राजाओं) को लोगों को खुश रखना चाहिए। हमारे द्वारा तुम्हारे बारे में जो अनुपयुक्त बातें कही गयी हैं, वे तुम्हारे योग्य नहीं हैं, क्योंकि सुगन्धित फूल को शिर पर धारण करना ठीक है, न कि पैरों से उसको कुचल देना उचित है। [श्लोक 14]

सीता– आर्यपुत्र! होने दें। आइए, आपकी लीलाओं को देखते हैं। (इस प्रकार कहकर घूमती है।)

• • •

लक्ष्मणः- इदं तदालेख्यम्।

सीता- (निर्वर्ण्य!) के एदे उवरि णिरन्तरट्ठिदा उवस्थुवन्दि विअ अज्जउत्तम्? [क एते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्?]

टिप्पणी

लक्ष्मणः- देवि, एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतः कृशाश्वात्कौशिक-मृषिमुपसंक्रान्तानि। तेन च ताड़कावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

रामः- वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा, परः सहस्त्रं शरदां तपांसि।
एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि॥15॥

{**अन्वयः**- ब्रह्मादयः पुराणाः गुरवः ब्रह्महिताय शरदां परःसहस्त्रं तपांसि तप्त्वा स्वानि एव तपोमयानि तेजांसि एतानि अदर्शन्।}

सीता- णमो एदाणम् (नमो एतेभ्यः)

रामः- सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

सीताः- अणगहीदह्मि। (अनुगृहीतास्मि)

अनुवाद

लक्ष्मण- यह वह चित्र है।

सीता- (देखकर) ये कौन हैं जो ऊपर लगातार उपस्थित हुए मानो आर्यपुत्र की स्तुति कर रहे हैं?

लक्ष्मण- हे देवी! ये वे रहस्य से युक्त जृम्भक अस्त्र हैं जो कि भगवान् कृशाश्व से विश्वामित्र मुनि को प्राप्त हुए थे और उन्होंने 'ताड़का-वध' के समय 'आर्य' (श्रीरामचन्द्र जी) को उपहार के रूप में प्रदान किए थे।

राम- देवी! दिव्य अस्त्रों को प्रणाम करो!

ब्रह्मा आदि पुरातन गुरुजनों ने वेदों (अथवा ब्राह्मणों) की रक्षा के लिये हजारों से भी अधिक सालों तक तपस्या करके अपने तपयुक्त तेज से उत्पन्न इनका साक्षात्कार किया था। यहाँ पर राम सीता को दिव्य अस्त्रों के रहस्य को बताते हुए कहते हैं कि इनको प्राचीन ऋषियों ने कठिन तपस्या करके प्राप्त किया था। [श्लोक 15]

सीता- इनको प्रणाम है।

राम- अब ये सब दिव्य अस्त्र तुम्हारी सन्तान को प्राप्त हो जायेंगे।

सीता- मैं धन्य हुई।

• • •

लक्ष्मणः- एष मिथिलावृत्तान्तः।

सीता- अम्हहे, दलन्त-णवणीलुप्पल-सामल-सिणि)-मसिण-सोह माणमंसलेन देह-सोहग्गेण विहाअ-त्थिमिद-ताद-दीसन्तसोम्म-सुन्दरसिरी, अणदरत्थुडिद-संकर-सरासणो, सिहण्ड-मुद्ध-मुहमण्डलो अज्जउत्तो आलिहिदो! [अहो, दलन्नवनीलोत्पल- श्यामल-स्निग्ध- मसृण-शोभमान-मांसलेन देह-सौभाग्येन विस्मय-स्तिमित-तात-दृश्यमान-सौम्य-सुन्दरश्रीरनादरत्रुटि शंकर-शरासनः, शिखण्ड-मुग्ध-मुखमण्डलः आर्यपुत्र आलिखितः।]

लक्ष्मणः- आर्ये, पश्य पश्य-

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो, जनकानां पुरोहितः॥16॥

टिप्पणी

{**अन्वय** : सम्बन्धिनः वसिष्ठादीनस्य तातः तव आर्चति, गौतमः च शतानन्दः, जनकानां पुरोहितः।}

रामः- सुश्लिष्टमेतत्।

जनकानां रघूणां च, सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता गृहीता च, स्वयं कुशिकनन्दनः॥17॥

{**अन्वय** : जनकानां च रघूणां सम्बन्धः कस्य न प्रियः अस्ति, यत्र दाता च गृहीता स्वयं कुशिकनन्दनः।}

अनुवाद

लक्ष्मण- यह मिथिला की कथा है।

सीता- अहा! खिले हुए नए नील कमल के समान श्याम रंग, कोमल, चिकने और गठीले शरीर की सुन्दरता के कारण, जिनकी अत्यन्त मनोहर सुन्दरता को पिताजी आश्चर्यपूर्वक स्थिर होकर देख रहे हैं, जिन्होंने शिव के धनुष को तोड़ डाला है, जिसका मुख मण्डल मयूर पक्षी से शोभित है, ऐसे आर्यपुत्र ही इसमें बनाये गए है।

लक्ष्मण- आर्ये! देखिये, देखिये-

ये आपके पिताजी तथा जनक-वंश के पुरोहित गौतम-पुत्र शतानन्द और सम्बन्धीगण वसिष्ठ आदि की आराधना कर रहे हैं। [श्लोक 16]

राम- यह बहुत ही सुन्दर है।

जनक के कुल में उत्पन्न तथा रघुवंश में उत्पन्न राजाओं का सम्बन्ध किसे प्यारा नहीं है? जहाँ पर देने वाले और स्वीकार करने वाले स्वयं महर्षि विश्वामित्र हैं। [श्लोक 17]

• • •

सीता- एदे क्खु तक्कालकिदगोदाणमग्ला चत्तारो भादरो विआहदिक्खिदा तुह्मे! अह्मो! जाणामि, तस्सि जेव्व पदेसे, तस्सि जेव्व काले वत्तामि। [एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्, अहो! जानामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे, तस्मिन्नेव काले वर्ते।]

रामः- **समयः स वर्तत इवैष यत्र मां**
समनन्दयत्सुमुखि गौतामार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः॥8॥

{**अन्वयः**- सुमुखि! एषः सः समयः वर्तते इव यत्र गौतमार्पितः आग्रहीतकमनीय कङ्कणः अयं तव करः मूर्तिमान् महोत्सवः इव मां समनन्दयत्।}

लक्ष्मणः- इयमार्या। इयमप्यार्या माण्डवी। इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।

सीता- वच्छ, इअं वि अवरा का? [वत्स, इयमप्यपरा का?]

लक्ष्मणः- (सलज्जास्मितम्। अपवार्य) अये, उर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यतः सञ्चारयामि। (प्रकाशम्) आर्य! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान्भार्गवः।

सीता- (संसभ्रमम्) कम्पिदह्मि! [कम्पितास्मि!]

रामः- ऋषे! नमस्ते।

लक्ष्मणः- आर्ये! पश्य। अयमार्येण- (इत्यर्धोक्ते।)

रामः- (साक्षेपम्) अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता- (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य।) सुट्ठु सोहसि अज्जउत्त एदिणा विणअमाहप्पेण। [सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र! एतेन विनयमाहात्म्येन।]

लक्ष्मणः- एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

रामः- (सास्रम्।) स्मरामि हन्त! स्मरामि।

जीवत्सु तातपादेषु, नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां, ते हि नो दिवसा गताः॥19॥

{**अन्वयः**- तातपदेषु जीवत्सु दारपरिग्रहे नवे मातृभिः चिन्त्यमानानाम् नः ते दिवसाः गताः हि।}

अनुवाद

सीता- ये तभी किए गए 'गोदान-संस्कार' नामक मांगलिक कर्म वाले विवाह में दीक्षित आप चारों भाई हैं। ओह, मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे मैं उसी प्रदेश और उसी समय पर ही हूँ।

राम- [श्लोक 18]- हे सुन्दर बोलने वाली सीता! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मानों यह वही समय है जब गौतम (शतानन्द) के द्वारा समर्पित किए गए सुन्दर कंगन वाले तुम्हारे इस हाथ ने मूर्तिमान् महान् उत्सव के समान मुझे आनन्दयुक्त किया था।

लक्ष्मण- यह आर्या आप हैं। यह आर्या माण्डवी हैं और यह वधू श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्न-पत्नी) हैं।

सीता- वत्स! और यह अन्य कौन हैं?

लक्ष्मण- (लज्जा और मुस्कराहट सहित दूसरी तरफ को मुख करके) अरे, अरे आर्या उर्मिला के बारे में पूछ रही हैं! ठीक है। इनका ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित करता हूँ। (प्रकाश में) आर्या, इस देखने योग्य को देखिये। ये भगवान् भार्गव अर्थात् परशुराम जी हैं।

सीता- (घबराहट पूर्वक) मैं तो कम्पित हो रही हूँ।

राम- ऋषे! आपको नमस्कार है।

लक्ष्मण- आर्य! देखिये यह आर्य ने......................इस तरह अधूरी बात कहने पर।

राम- (रोकते हुए) अरे! काफी कुछ देखना है। अतः अन्य दिखलाओ।

सीता- (स्नेह और सम्मान के साथ देखकर) आर्यपुत्र! आप इस विनय की बहुलता से बहुत शोभायमान हो रहे हैं।

लक्ष्मण- ये हम लोग अयोध्या में आ पहुँचे हैं।

राम- (आँसुओं के सहित) स्मरण है, मुझे स्मरण है।

'जिस समय पिताजी जीवित थे, नया विवाह हुआ था, माताएँ हमारे लिये ही विचार करती रहती थीं। आज हमारे वे (सुखमय) दिन बीत गए।' यहाँ पर राम चित्रों को देखते हुए बीते दिनों को याद करते हैं। [श्लोक 19]

टिप्पणी

इयमपि तदा जानकी-

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-
र्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-
रकृतमधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः॥20॥

{**अन्वयः**- प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः, दशन-कुसुमैः, मुग्धालोकमुखं, दधती (इयं), शिशुः, ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः, अकृत्रिमविभ्रमैः, मधुरैः अङ्गकैः, मे, अम्बानां, च, कुतूहलम् अकृत।}

लक्ष्मणः- एष मन्थरावृत्तान्तः।

रामः- (सत्वरमन्यतो दर्शयन्।) देवि वैदेहि!

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र, स्निग्धेनासीत्समागमः॥21॥

लक्ष्मणः- (विहस्य। स्वगतम्।) अये। मध्यमाम्बावृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण।

{**अन्वयः**- शृङ्गवेरपुरे, अयं, स, इङ्गुदीपादपः, यत्र, पुरा, स्निग्धेन, निषादपतिना, (सह अस्माकं) समागमः आसीत्।}

अनुवाद

और तब यह सीता भी-

यहाँ पर राम सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अत्यन्त सूक्ष्म तथा गालों पर सुशोभित होने वाले सुन्दर काले बालों से, और श्वेत अंकुर के समान दाँतों से रमणीय प्रतीत होने वाले मुख को धारण करती हुई, अत्यन्त सुन्दर, चाँदनी के समान, स्वाभाविक प्रिय बालसुलभ भोले हाव-भावों से मेरी और माताओं की उत्सुकता को बढ़ा देती थी। [श्लोक 20]

लक्ष्मण- यह ''मन्थरा'' की कथा है।

राम- (तुरन्त दूसरी तरफ दिखाते हुए) देवी! जानकी!

यह वही शृङ्गवेरपुर में 'इंगुदी' (हिङ्गोट) का पेड़ है, जहाँ पर पहले अत्यन्त स्नेह वाले निषादराज के साथ हमारा मिलन हुआ था। [श्लोक 21]

लक्ष्मण- (हंसकर, अपने आप से) अरे, 'आर्य ने' मंझली माता (कैकेयी) के वृत्तान्त को छिपा लिया।

सीताः- अह्मो, एषो जडासंजमणवुत्तन्तो? [अहो, एष जटासंयमन वृत्तान्तः?]

लक्ष्मणः-

टिप्पणी

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्॥22॥

{**अन्वयः**- पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः, वृद्धेक्ष्वाकुभिः, यत्, धृतम्, तत्, पुण्यम्, आरण्यकव्रतम्, आर्येण, बाल्ये, धृतम्।}

सीता- एसा पसण्णपुण्णसलिला भअवदो भाईरही। [एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।]

रामः- रघुकुलदेवते**!** नमस्ते।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो,
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्॥23॥

सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

{**अन्वयः**- भगवति! भगीरथः अगणिततनूतापः (सन्) तपांसि तप्त्वा, तव, स्पृष्टान् सगराध्वरे, तुरगविचयव्यग्रान् उर्वीभिदः रोषात्, कपिलमहसा प्लुष्टान् पितुः पितामहान्, चिरात् उदतीतरत्।}

सीता- अरे! यह तो 'जटा-धारण' करने की कथा है।

लक्ष्मण- बेटों को राज्य का भार सौंपकर, 'इक्ष्वाकु' वंश के राजा बुढ़ापे की अवस्था में जिस वनवास के व्रत को धारण करते थे, उस वानप्रस्थ आश्रम के व्रत को आर्य ने बाल्यावस्था में ही धारण कर लिया। [श्लोक 22]

सीता- यह स्वच्छ और निर्मल जल वाली भगवती भागीरथी हैं।

राम- रघुकुल की देवी! आपको नमस्कार है।

हे भगवती! भगीरथ ने शारीरिक पीड़ा के बारे में चिन्ता किए बिना तपस्या करके, सगर के (अश्वमेध) यज्ञ में घोड़े को खोजने में तत्पर, भूमि को खोदने वाले एवं महर्षि कपिल की क्रोध की आग में जले हुए अपने पिता के भी पितामहों (सगर पुत्रों) का तुम्हारे शुद्ध जल के छूने से उद्धार कर दिया था। [श्लोक 23]

वह (रघुकुल की देवी) माँ! आप पुत्रवधू सीता के लिए भगवती अरुन्धती के समान सदैव कल्याण करने वाली हों।

• • •

लक्ष्मणः- एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

(रामः सस्पृहमवलोकयति)

सीता- सुमरेदि वा तं पदेसं अज्जउत्तो? (स्मरति वा तं प्रदेशमार्य पुत्रः?)

रामः- अयि, कथं विस्मर्यते?

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदादशिथिलपरिम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यंगकानि, त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता॥24॥

(रामः सस्पृहमवलोकयति)

टिप्पणी

{**अन्वयः**- यत्र, त्वम् अध्वसम्पातखेदात्, अलसललितमुग्धानि, अशिथिलपरिरम्भैः दत्तसंवाहनानिः, परिमृदितमृणालीदुर्बलानि, अङ्गकानि, मम, उरसि कृत्वा, निद्राम्, अवाप्ता।}

लक्ष्मणः- एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः।

सीता- अलं दाव एदिणा! पेक्खम्मि दाव अज्जउत्तसहत्तधरिदतालवुन्तादव त्तं अत्तणो अच्चाहिदं दक्खिणारण्णपहिअत्तणम्। [अलं तावदेतेन! पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रमात्मनोऽत्याहितं दक्षिणारण्यपथिकत्वम्।]

रामः-

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु,
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि॥25॥

{**अन्वयः**- गिरिनिर्झरिणीतटेषु, वैखानसाश्रिततरूणि, एतानि, तानि, तपोवनानि, येषु, आतिथेयपरमाः, नीवारमुष्टिपचनाः, यमिनः, गृहिणः, गृहाणि, भजन्ते।}

अनुवाद

लक्ष्मण- यह 'चित्रकूट' को जाने वाले रास्ते में युमना के तट पर स्थित भारद्वाज ऋषि के द्वारा निर्देश किया गया श्याम नामक वटवृक्ष है।

[राम उत्सुकतापूर्वक देखते हैं।]

सीता- आर्यपुत्र! क्या आपको वह स्थान याद है?

राम- अरे! वह किस प्रकार भूला जा सकता है?

जहाँ पर तुम रास्ते में चलने की थकान से आलस्य-वाली, कोमल और मनोहर, दृढ़, आलिङ्गन से कसे हुए तथा सहलाए हुए कमल-नाल की भाँति अपने कोमल अङ्गों को मेरी छाती पर रखकर तुम नींद को प्राप्त कर गयी थी। [श्लोक 24]

लक्ष्मण - यह 'विन्ध्याटवी' के मुख्य प्रवेश मार्ग पर विराध (राक्षस) का संवाद है।

सीता - अरे, इसे देखना छोड़ो। मैं तो दक्षिण-वन में स्वयं के प्रवेश करने के प्रारम्भ को देख रही हूँ जहाँ आर्यपुत्र ने अपने हाथ में (धूप से बचने के लिए) ताड़ के पत्ते को छाते के समान धारण किया था।

राम - [श्लोक 25] पहाड़ी नदियों के तट पर वानप्रस्थियों के द्वारा सेवित पेड़ों वाले ये वे तपोवन है, जहाँ अतिथि सम्मान में लगे हुए, केवल मुट्ठी भर 'नीवार अन्न' पकाकर जीवन चलाने वाले एवं यम-नियम आदि का पालन करने वाले गृहस्थ अवस्था वाले मुनिलोग घरों में रहते हैं।

• • •

लक्ष्मणः– अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तर–स्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरी मुखरकन्दरः सततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

टिप्पणी

रामः–

स्मरसि सुतनु! तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि?
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा,
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि॥26॥

{**अन्वयः**– सुतनु! तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः तानि अहानि स्मरसि? तत्र सरसनीरां गोदावरीं वा स्मरसि? तदुपान्तेषु आवयोः वर्तनानि च स्मरसि?}

किंच–

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिम्भव्यापृतैकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥27॥

{**अन्वयः**– आसक्तियोगात् किमपि, किमपि मन्दं अविरलितकपोलम् अक्रमेण, जल्पतोः, अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकदोष्णोः (आवयोः) अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।}

अनुवाद

लक्ष्मण– यह घने वृक्षों के समूह से पूर्ण, चिकने तथा श्याम रंग वाले वन के भागों से युक्त गोदावरी के जल से गुंजायमान गुफाओं वाला स्थान है तथा परस्पर वर्षा करने वाले बादलों से और भी अधिक नीलेपन को धारण करने वाला जनस्थान के बीच में विद्यमान 'प्रस्रवण' नाम का पर्वत है।

हे सुन्दर शरीर वाली! क्या तुम उस 'प्रस्रवण' पर्वत पर लक्ष्मण के द्वारा की गयी सेवा से प्रसन्न हुए हम दोनों के उन सुखी दिनों को याद करती हो? अथवा स्वादिष्ट जल वाली गोदावरी नदी को याद करती हो? और क्या तुमको उसके तट पर हमारा भ्रमण करना याद है? [श्लोक 26]

और– जहाँ प्रेमभाव के कारण निकटता से गालों को सटाकर तथा परस्पर एक दूसरे की भुजाओं के गहरे आलिंगन से युक्त होकर धीरे-धीरे यहाँ-वहाँ की बातें करते हुए मालूम हुए बिना ही हम दोनों की (पूरी) रात ही व्यतीत हो गयी। यहाँ पर राम प्रस्रवण पर्वत और गोदावरी नदी के तट पर बिताए गए समय का स्मरण करते हैं। [श्लोक 27]

● ● ●

लक्ष्मणः– एष पञ्चवट्यां शूर्पणखाविवादः।

सीता– हा अज्जउत! एत्तिअं दे दंसणम्? [हा आर्यपुत्र । एतावत्ते दर्शनम्?]

रामः– अयि वियोगत्रस्ते? चित्रमेतत्।

सीता– जहा तहा होदू। दुज्जणो असुहं उप्पादेह। [यथा तथा भवतु दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।]

रामः– हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

लक्ष्मणः–

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।

टिप्पणी

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।28।।

सीता - (सास्रमात्मगतम्।) अह्यो, दिणअरकुलाणन्दणो एव्वंवि मह कालणादो किलन्तो आसि! [अहो, दिनकरकुलनन्दन एवमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्!]

{**अन्वयः**- अथ, पापैः, रक्षोभिः कनकहरिणछद्मविधिना, इदं तथा वृत्तम्, यथा क्षालितमपि विकलयति, शून्ये, जनस्थाने, विकलकरणैः, आर्यचरितैः, ग्रावा अपि, रोदिति, वज्रस्य, अपि हृदयं दलति।}

लक्ष्मणः- (रामं निर्वर्ण्य साकूतम्।) आर्य! किमेतत्?

अयं तावद्वाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया,
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः।।29।।

{**अन्वयः**- तावत् धराभिर्विसर्पन्, जर्जरकणः, अयं, वाष्पः, त्रुटितः, मुक्तामणिसरः, इव, धरणीं, लुठति, चिरमाध्मातहृदयः, आवेगः, निरुद्धोऽपि, स्फुरदधरनासापुटतया, परेषाम्, उन्नेयो, भवति।}

अनुवाद

लक्ष्मण- यह पञ्चवटी में शूर्पणखा-विवाद है।

सीता- हा आर्यपुत्र! बस यहीं तक आपको देखा था।

राम- अरी वियोग से डरी हुई सीता! यह तो चित्र है।

सीता- चाहे जो कुछ भी हो, दुष्ट पीड़ा उत्पन्न करता ही है।

राम- अरे! मुझको जनस्थान का वृत्तान्त वर्तमान सा लग रहा है।

लक्ष्मण- उसके बाद उन दुष्ट राक्षसों ने सोने के हिरन के छल से ऐसा बुरा कार्य किया, जो कि प्रतीकार किए जाने पर भी कष्ट दे रहा है। उस सुनसान दण्डक वन में शून्य इन्द्रियों वाले आर्य के चरित्रों से अर्थात् मूर्च्छा आदि व्यापारों से एक बार तो पत्थर भी रो पड़ता है और वज्र का हृदय भी खण्डित हो जाता है। [श्लोक 28]

सीता- (रोती हुई, स्वंय ही) ओह! सूर्यवंश को आनन्द देने वाले आर्य पुत्र मेरे लिये दुःखी हुए थे? (दूसरों को आनन्द देने वाले होकर भी स्वयं दुःखी हुए थे)।

लक्ष्मण- (राम को देखकर अभिप्राय के साथ) आर्य! यह क्या है?)

यहाँ पर लक्ष्मण सीता का हरण हो जाने के पश्चात् राम की मनोदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आपका यह आँसुओं का प्रवाह टूटी हुई मोतियों की माला के समान अनेक धाराओं में बिखरता हुआ टूटे हुए कणों वाला होकर भूमि पर फैल रहा है। आपके हृदय का यह आवेग बहुत समय तक रोके जाने पर भी होठों और नासिका के छिद्रों के फड़कने से दूसरों के लिए अनुमान करने योग्य होता है। [श्लोक 29]

• • •

रामः- वत्स!

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो,
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति॥30॥

{**अन्वयः**- प्रियजनविप्रयोगजन्मा, तीव्रः, अपि, प्रतिकृतिवाञ्छया, तत्कालं विसोढः, पुनः, मनसि, विपच्यमानः (सन्), हृन्मर्मव्रणः इव, वेदनां तनोति।}

सीता- हद्धी हद्धी। अहंवि अदिभूमिं गदेण रणरणएण उज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि। [हा धिक्! हा धिक्! अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्र शून्यमिवात्मानं पश्यामि।]

लक्ष्मणः- (स्वगतम्।) भवत्वन्यतः क्षिपामि। (चित्रं विलोक्य प्रकाशम्।) अथैतन्मन्वन्तरपुराणगृध्रराजस्य तत्रभवतस्तातजटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम्।

सीता- हा ताद! णिव्वूढो दे अवच्चसिणेहो। [हा तात! निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः।]

रामः- हा तात काश्यपगोत्रोत्पन्नशकुन्तराज! क्व न खलु पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधोः सम्भवः?

लक्ष्मणः- अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः कुञ्जवान्नाम (पर्वतो) दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभागः। तदिदमुष्य परिसरे मतङ्गाश्रमपदम्। तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी। तदेतत्पम्पाभिधानं पद्मसरः।

सीता- जत्थ किल अज्ज्उत्तेण विच्छिण्णांमरिसधीरत्तणं पमुक्ककण्ठं परूण्णं आस। [यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितमासीत्।]

अनुवाद

राम- वत्स!

उस समय (तो) मैंने सीता के वियोग से उत्पन्न हुई दुःख की अग्नि को (शत्रु-रावण से) बदला लेने की अभिलाषा से जिस किसी प्रकार से सहन कर लिया था परन्तु आज वही दुःख हृदय के मर्मस्थान में अत्यन्त पके हुए घाव के समान असहनीय कष्ट दे रहा है। [श्लोक 30]

सीता- हाय धिक्कार है! हाय धिक्कार है! मैं भी सीमा को लांघ देने वाली घबरायी हुई स्वयं को 'आर्य-पुत्र' से रहित हुई के समान देख रही हूँ। (मुझे भी पतिदेव के वियोग की दशा साक्षात् सी लग रही है।)

लक्ष्मण- (अपने आप से) ठीक है अच्छा तो मैं इनका ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित करता हूँ (चित्र को देखकर प्रकट रूप में) अब यह 'मन्वन्तर' से भी पुराने माननीय गृध्रराज जटायु के चरित्र तथा वीरता का उदाहरण है।

सीता - हा तात! आपका सन्तान-के प्रति स्नेह पूरी तरह से सफल हुआ।

राम- हा तात! काश्यप गोत्र में उत्पन्न! पक्षिराज! अब आप जैसे महान् और अत्यन्त पवित्र आत्मा वाले सज्जन की उत्पत्ति कहाँ हो सकती है?

लक्ष्मण- यह 'जनस्थान' की पश्चिम दिशा की तरफ 'कुञ्जवान्' नाम का पर्वत है तथा वहीं पर ''दनुकबन्ध'' नाम से स्थित 'दण्डक वन' का भाग है। इसी के निकट ही 'मतङ्ग' ऋषि का आश्रम है। वहीं यह 'श्रमणा' नाम वाली सिद्ध शबर जाति की तपस्विनी (भीलनी) रहती थी और यह 'पम्पा' नामक कमलों वाला सरोवर है।

टिप्पणी

सीता- निश्चय ही जहाँ पर आर्यपुत्र के द्वारा क्रोध तथा स्वाभाविक धीरता को त्यागकर खुले गले से रुदन किया गया था।

● ● ●

रामः- देवि! परं रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः
बाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले, सन्दृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः॥31॥

{**अन्वयः**- एतस्मिन्, मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीका, कुवलयिनः विभागाः मया, बाष्पाम्भः परिपतानोद्गमान्तराले संदृष्टा।}

लक्ष्मणः- अयमार्यो हनूमान्।

सीता- एसो सो चिरणिव्वूढजीवलोअपच्चुद्धरणगुरूओवआरी महानुभावो मारूदी। [एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूपकारी महानुभावो मारुतिः।]

रामः-

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः।
यस्य वीर्येण कृतिनो, वयं च भुवनानि च॥32॥

{**अन्वय** : दिष्ट्या सः अयं महाबाहुः अञ्जना आनन्दवर्धनः यस्य वीर्येण कृतिनो, वयं च भुवनानि च।}

अनुवाद

राम- देवि! यह सरोवर अत्यन्त सुन्दर है।

इस पम्पा सरोवर में मस्ती के कारण मीठा शब्द करने वाले मल्लिकाक्ष नामक हंसों के पंखों के द्वारा कम्पित किए जाते हुए और चंचल लम्बे नाल वाले श्वेत कमलों से युक्त स्थानों को मैंने आँसुओं के बहने और निकलने के समय नीले-कमलों से युक्त देखा था। [श्लोक 31]

[यहाँ पर कहने का अभिप्राय यह है कि पम्पा नामक तालाब में अत्यन्त मधुर ध्वनि करते हुए मल्लिकाक्ष जाति के हंसों के पंखो से मृणाल-दण्ड काँप रहे थे। नीले कमलों वाले स्थानों की ऐसी रमणीयता को देखकर सीते! तुम्हारे नेत्रों की याद आ जाने के कारण मेरे नेत्रों में भी आँसू आ गए। मैने आँसू भरी हुई आँखों से इन प्रदेशों को देखा था।]

लक्ष्मण- ये आर्य हनुमान् जी हैं।

सीता- ये वह बहुत समय से जीवलोक पर कृपा करने से गौरवशाली महान् उपकारी तथा विशाल प्रभाव वाले हनुमान् जी हैं।

राम- सौभाग्य से ये वही महान् भुजाओं वाले एवं अपनी माता अञ्जना के सुख में वृद्धि करने वाले हनुमान् जी हैं, जिनकी वीरता से हम सभी लोग और तीनों लोक धन्य हुए है। [श्लोक 32]

• • •

सीता- वच्छ! एसो सो कुसुमिदकदम्बताण्डविअबंहिणो किंणामहेओ गिरि? जत्थ अणुभावसोहग्गमेत्तपरिसेसुंन्दरसिरी मुच्छन्दो तुए परूण्णेण ओलम्बिओ तरूअले अज्जउत्तो आलिहिदो? [वत्स! एष स कुसुमितकदम्बताण्डवितबर्हिणः किन्नामधेयो गिरिः? यत्रानुभावसौभाग्य-मात्रपरिशेषसुन्दरश्रीर्मूर्च्छस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुतले आर्यपुत्रः आलिखितः?]

लक्ष्मण- **सोऽयंशैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मि-**
न्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः।
आर्येणास्मिन् ....

रामः-

.................-विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि,
प्रत्यावृत्तः स पुनरपि मे जानकीविप्रयोगः॥33॥

{**अन्वय** : सः अयं शैलः ककुभसुरभिः माल्यवान् नाम यस्मिन् नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनः तोयवाहः आर्येण अस्मिन् .... विरम विरमातः परं न क्षमो अस्मि, स जानकीविप्रयोगः मे पुनः अपि प्रत्यावृत्तः।}

अनुवाद

सीता- वत्स! फूलों से भरे हुए कदम्ब के पेड़ों पर नाचने में लीन मोरों से युक्त यह कौन सा पर्वत है, जहाँ पेड़ के नीचे विलाप करते हुए, तुम्हारे द्वारा सहारा दिए गए, प्रभाव के सौन्दर्य से शेष बची हुई स्वच्छ शोभा वाले, मूर्च्छित होते हुए आर्यपुत्र को चित्र में बनाया गया है।

लक्ष्मण- यह वही अर्जुन वृक्ष के फूलों से सुगन्धित माल्यवान् नामक पर्वत है जिसकी चोटी पर नीला, चिकना और नया बादल आश्रय लेता है। आर्य ने यहाँ....................।

राम- .... ''ठहरो-ठहरो'! मैं इससे ज्यादा सुनने में समर्थ नहीं हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों जानकी का वह वियोग फिर से लौट आया हो।'' [श्लोक 33]

• • •

लक्ष्मणः- अतः परमार्यस्य तत्रभवतां राक्षसानां चापरिसञ्ज्ञान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद्विज्ञापयामि 'विश्राम्यताम्' इति।

सीता- अज्ज्उत! एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहलाए मए विण्णावणिज्जं अत्थि। [आर्यपुत्र! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति।]

रामः- नन्वाज्ञापय।

सीता- जाणे पुणोवि पसण्णगम्भीरासु वणराईस विहरिअ पवित्तणिम्मलसिसिरसलिलं भअवदिं भाईरहिं ओगीहिस्सं ति। [जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्य इति।]

रामः- वत्स लक्ष्मण।

लक्ष्मणः- एसोऽस्मि।

रामः– वत्स! 'अचिरादेव संपादनीयो दोहद' इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम्, तदस्खलितसंपातं रथमुपस्थापय।

सीता– अज्जउत्त? तुह्मेहिं वि आअन्दव्वम्। [आर्यपुत्र! युष्माभिरप्यागन्तव्यम्।]

टिप्पणी

रामः– अयि! कठिनहृदये! एतदपि वक्तव्यम्?

सीता– तेण हि पिअम मे। [तेन हि प्रियं मे।]

लक्ष्मणः– यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तः।)

रामः– प्रिये! वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव।

सीता– एव्वं होदु। ओहरिदह्मि परिस्समणिद्दाए। [एवं भवतु। अपहृतास्मि परिश्रमनिद्रया।]

रामः– तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामत्र शयनाय।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रम-
स्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बित-
स्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः॥34॥

{**अन्वयः**– ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः, (अतएव) ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्र-मणिहारविभ्रमः, जीवयन्निव, बाहुः, अधिकण्ठमर्प्यताम्।}

अनुवाद

लक्ष्मण– इससे आगे आर्य के, वानरों के तथा राक्षसों के अनगिनत एवं उत्तरोत्तर आश्चर्यचकित कर देने वाले कर्म चित्रित हैं। अब यह आर्या भी थक चुकी हैं, इसलिए मैं निवेदन करता हूँ कि आप आराम करें।

सीता– आर्यपुत्र! इस चित्र को देखने से मुझे अभिलाषा होने के कारण कुछ निवेदन करना है।

राम– (ठीक है,) आज्ञा दो।

सीता– मैं सोच रही हूँ कि पुनः प्रसन्न और गहन वन की पंक्तियों में विहार करके शुद्ध, निर्मल और ठण्डे जल वाली भगवती गंगाजी में नहा लूँ।

राम– वत्स! लक्ष्मण!

लक्ष्मण– आर्य! मैं प्रस्तुत हूँ।

राम– वत्स! 'इनकी (पूर्ण गर्भ वाली) जानकी की इच्छा को बिना देर किए पूरा करना चाहिए' यह अभी गुरुजनों ने सन्देश भेजा है। अतः न डगमगाने वाला रथ तैयार करो।

सीता– आर्यपुत्र! आप को भी चलना चाहिए।

राम– अरी कठोर हृदय वाली! यह भी कोई कहने वाली बात है?

सीता– तब तो मेरे लिये प्रसन्न होने वाली बात है।

लक्ष्मण– जैसे आर्य 'आज्ञा' दें (इस प्रकार कहकर चला जाता है।)

राम– प्रिये! खिड़की के निकट बैठ जाओ।

सीता- ऐसा ही ठीक रहेगा। मैं थकान के कारण नींद के वशीभूत हो रही हूँ।

राम- तो यहाँ पर सोने के लिये पूरी तरह से मेरा सहारा ले लो।

टिप्पणी

डर तथा थकान के कारण पसीने के बिन्दुओं से युक्त चन्द्रमा की किरणों के छूने से टपकने वाली चन्द्रकान्त-मणि के हार के समान विलास से युक्त एवं मुझे जीवन देने वाली अपनी भुजाओं को मेरे गले में डाल दो। [श्लोक 34]

• • •

रामः- (तथाकारयन् सानन्दम्) प्रिये! किमेतत्?

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,
प्रमोहो? निद्रा वा? किमु विषविसर्पः? किमु मदः?
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च॥35॥

सीता- धीरप्पसादा तुह्मेत्ति, इदो दाणि किमवरं! [धीरप्रसादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम्?]

अन्वयः- (प्रिये!) तव, स्पर्शे-स्पर्शे परिमूढेन्द्रियगणः, विकारः मम, चैतन्यं, भ्रमयति, सम्मीलयति चः (अतः एवेदं) सुखम् इति वा, दुःखम् इति वा प्रमोहः निद्रा वा, विषविसर्पः किमु, मदः किमु (इति) विनिश्चेतुं न शक्यः।

रामः-

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि!
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥36॥

सीता- पिअंवद। एहि। संविसह्म। [प्रियंवद! एहि। संविशावः।]

(इति शयनाय समन्ततोऽपि निरूप्यति।)

{**अन्वयः**- (हे) सरोरुहाक्षि! एतानि ते सुवचनानि, म्लानस्य, जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि, सकलेन्द्रियमोहनानि, कर्णामृतानि, मनसः, च रसायनानि (सन्ति)।}

अनुवाद

राम - (उसी प्रकार कराते हुए आनन्दपूर्वक प्रिये! यह क्या है?)

तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श से मेरी सारी इन्द्रियाँ मोह युक्त हो रही है! यह कोई मेरे अन्दर का विकार मेरी चेतना को भ्रान्त बना रहा है और कभी संकोचयुक्त कर रहा है। मैं यह निर्णय नहीं ले पा रहा हूँ कि यह सुख है अथवा दुःख? मोह है अथवा निद्रा? विष का प्रभाव है अथवा कोई मद से उत्पन्न होने वाला नशा है? [श्लोक 35]

सीता- आप धैर्यशाली अत्यन्त कृपा वाले हैं। इसीलिए इस समय मुझको और अधिक क्या चाहिए?

राम - हे कमल के समान नयनों वाली! तुम्हारे ये मीठे वचन मुरझाए हुए जीवन कुसुम का विकास करने वाले और अच्छी प्रकार से सन्तुष्ट करने वाले, सम्पूर्ण इन्द्रियों को मोहयुक्त करने वाले, कानों को अमृतमय करने वाले और मन के लिये रसायन के समान शक्ति प्रदान करने वाले हैं। [श्लोक 36]

सीता– हे प्रिय वचन बोलने वाले! आइए, आराम कर लें।

(ऐसा कहकर सोने के लिये चारों तरफ देखती है।)

• • •

टिप्पणी

रामः– अयि! किमन्वेष्टव्यम्?

अविवाहसमयाद् गृहे वने, शैशवे तदनु यौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया, रामबाहुरुपधानमेष, ते॥37॥

{**अन्वयः**– अविवाहसमयात् शैशवे गृहे, तदनु पुनर्यौवने वने स्वापहेतुः अन्यथा, अनुपाश्रितः एष रामबाहुः, ते उपधानम् (अस्ति)।}

सीता– (निद्रां नाटयन्ती) अत्थि एदम्। अज्जउत्त! अत्थि एदम्।

[अस्त्येतत्। आर्यपुत्र! अस्त्येतत्] (इति स्वपिति।)

रामः– कथं प्रियवचनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता? (निर्वर्ण्य। सस्नेहम्)

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयो–
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो? यदि परमसह्यस्तु विरहः॥38॥

{**अन्वयः**– इयं गेहे लक्ष्मीः, इयं नयनयोः अमृतवर्तिः अस्याः असौ स्पर्शः वपुषि बहुलः, चन्दनरसः अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणः, मौक्तिकसरः, अस्या किं न प्रेयः,? तु विरहः, यदि, (भवेत् तदा सः) परम् असह्यः (स्यात्)।}

(प्रविश्य)

प्रतीहारी– देवि! उवट्ठिहो। [देव उपस्थितः।]

रामः– अयि, कः?

प्रतीहारी– आसण्णपरिआरओ देवस्य दुम्मुहो। [आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः!]

रामः– (स्वगतम्।) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः, स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः। (प्रकाशम्।) आगच्छतु।

(प्रतीहारी निष्क्रान्ता)

अनुवाद

राम– अरी प्रिये! क्या खोज रही हो?

विवाह के समय से लेकर, बाल्यकाल में घर में, उसके बाद, पुनः वन में और युवावस्था में सोने का मुख्य साधन और जिसका किसी अन्य स्त्री के द्वारा सहारा नहीं लिया गया है, वह यह राम की भुजा तुम्हारे लिये तकिए के रूप में विद्यमान है। [श्लोक 37]

सीता– (नींद का अभिनय करती हुई) ऐसा ही है आर्यपुत्र! ऐसा ही है। (इस प्रकार कहकर सो जाती है)

राम– क्या यह प्रिय बोलने वाली मेरी छाती पर ही सो गयी? (देखकर स्नेह सहित)

यह (सीता) मेरे घर में लक्ष्मी है, नेत्रों के लिये सुधामयी सलाई है, इसका यह स्पर्श शरीर

पर किए गए गाढ़े चन्दन रस के लेप के समान है और इसकी यह भुजा कण्ठ में पड़े शीतल और चिकने मोतियों के हार के समान है। इसकी कौन-सी चीज प्यारी नही है? परन्तु यदि कुछ असहनीय है तो वह इसका विरह है। यहाँ पर राम का सीता के प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित किया गया है। [श्लोक 38]

टिप्पणी

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी- देव! उपस्थित हूँ।

राम- अरे! कौन है?

प्रतीहारी- महाराज के समीप रहने वाला दुर्मुख सेवक।

राम- (अपने आप ही) 'दुर्मुख' अन्तःपुर में आने जाने वाला है। उसको मेरे द्वारा पुरवासियों एवं जनपद में रहने वाले लोगों के गुप्तचर के रूप में भेजा गया था। (प्रकट रूप में) आने दो।

• • •

दुर्मुखः- (स्वागतम्) हा कह दाणिं देवोमन्तरेण ईस्सिं अचिन्तणिज्ज जणाववादं देव्वस्य कहइस्सं? अहवा णिओओ क्खु मह मन्दभअहेअस्स एसो। [हा कथमिदानीं देवीमन्तरेणेदृशमचिन्तनीय-जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्यैष।]

सीता- (उत्स्वप्नायते।) अज्जउत्त! कहिंसि? [आर्यपुत्र! कुत्रासि?]

रामः- सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्योगं करोति। (सस्नेहमङ्गमस्याः परामृशन्)

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते॥39॥

{**अन्वयः**- यत्, सुखदुःखयो, अद्वैतं, सर्वासु, अवस्थासु, अनुगतं, यत्र, हृदयस्य विश्रामः, यस्मिन् रसः, जरसा, अहार्यः, यत्, कालेन, आवरणात्ययात्, परिणते, प्रेमसारे, स्थितं, तस्य सुमानुषस्य तत् एकं भद्र कथमपि ही प्रार्थ्यते।}

(प्रविश्य)

दुर्मुखः- (उपसृत्य।) जेदु देव्वो [जयतु देवः।]

रामः- ब्रूहि यदुपलब्धम्।

दुर्मुखः- उवट्टुवन्ति देवं पौरजाणपदा, जहा विसुमारिदा अह्म` महाराअदसरहस्य रामदेव्वेणेत्ति। [उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदाः, यथा विस्मारिता वयं महाराजदशरथस्य रामदेवेनेति।]

रामः- अर्थवाद एवैषः। दोषं तु मे कथंचित्कथय, येन प्रतिविधीयते।

दुर्मुखः- (सास्रम्)। सुणादु महाराओ। (कर्णे) एव्वं विअ। इति। [शृणोतु महाराजः। एवमिव।]

रामः- अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः। (इति मूर्छति।)

दुर्मुखः- आस्ससदु देव्वो। [आश्वसितु देवः।]

रामः- (आश्वस्य)

टिप्पणी

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं
विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्॥40॥

{**अन्वयः**- हा, हा, धिक्! वैदेह्याः, यत् परगृहवासदूषणम्, अद्भुतैः, उपायैः, प्रशमितम् दैवदुर्विपाकात्, तत्, एतत्, पुनरपि, आलर्कं, विषमिव, सर्वतः प्रसक्तम्।}

तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि?

• • •

अनुवाद

[प्रवेश करके]

दुर्मुख- (अपने आप ही) हा! अब मैं किस प्रकार देवी सीता के इस विचार न की जाने योग्य लोगों की चर्चा को महाराज से कहूँगा? अथवा, मुझ भाग्यहीन का यही कर्तव्य है।

सीता- (स्वप्न देखती हुई बुदबुदाती हैं) आर्यपुत्र! कहाँ है?

राम- यह वही चित्र को देखने से उत्पन्न, जिज्ञासा बढ़ाने वाली विरह-भावना, देवी को स्वप्न में भी विचलित कर रही है। (प्रेमपूर्वक सीता के अङ्गों को सहलाते हुए-)

सीता की अनन्य प्रेम भावना को देखकर राम कहते हैं कि जो सुख और दुःख में एक जैसा रहता है, जीवन की समस्त दशाओं में पीछा करने वाला होता है, हृदय को आराम प्राप्त कराता है, बुढ़ापे की अवस्था में भी जिसमें स्नेह कम नहीं होता, समय के अनुसार संकोच आदि आवरण के दूर हो जाने से गहरे प्रेम में स्थित रहता है-ऐसा कल्याणकारी दाम्पत्य प्रेम सौभाग्य से ही किसी एक को प्राप्त होता है। [श्लोक 39]

दुर्मुखः- (समीप में जाकर) महाराज की विजय हो!

राम- जो (समाचार) प्राप्त किया है बताओ।

दुर्मुखः- नगर एवं जनपद में रहने वाले लोग सब आपकी प्रशंसा करते हैं कि ''श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा महाराज दशरथ (अपने सद्गुणों के कारण) हमारे मन से भुला दिए गए हैं।

राम- यह तो मात्र प्रशंसा ही है। मेरे किसी दोष को तो कहो, जिससे कि उसको दूर किया जा सके।

दुर्मुखः- (आँखो में आँसू भरकर) महाराज! सुनिए! (कान में) ऐसा है।

राम- ओह! यह वचन रूपी वज्र बहुत तीखा है।

[इस प्रकार कहकर मूर्छित हो जाते हैं]

दुर्मुखः- महाराज! धैर्य रखिये।

टिप्पणी

राम- (धीरता युक्त होकर)-

दुर्मुख के मुख से प्रजा के द्वारा सीता के विषय में कही गई बातों को सुनकर राम कहते हैं कि 'हा! हा! धिक्कार है! सीता के दूसरे (रावण) के घर में रहने का जो दोष (अग्नि-परीक्षा आदि) बड़े आश्चर्यजनक साधनों से दूर किया गया था, आज दुर्भाग्य से वही (दोष) पागल कुत्ते के काटने से उत्पन्न विष के समान सब तरफ फैल गया है? [श्लोक 40]

तो अब मैं भाग्यहीन क्या करूँ?

• • •

[विमृश्य सकरुणम्।] अथवा किमेतत्?

सतां केनापि कार्येण, लोकस्याराधनं व्रतम्।
तत्प्रतीतं हि तातेन, मां च प्राणांश्च मुञ्चता॥41॥

{**अन्वयः**- केनापि, कार्येण, लोकस्य, आराधनं, सतां परम् (व्रतम्)। मां, च, प्राणांश्च, मुञ्चता, तातेन, तत्, प्रतीतम्।}

संप्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्।

अपि च -

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै-
र्लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम्।
मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती,
स्याच्चेदस्मिन्हन्त! धिङ्मामधन्यम्॥42॥

{**अन्वयः**- लोकश्रेष्ठैः, सावित्रैः, भूमिपालैः, यत्, चित्रं, चरित्रम्, साधु, दीपितम्, अस्मिन्, मत्सम्बन्धात्, कश्मला, किंवदन्ती स्यात्, चेत् हन्त! अधन्यं, मां धिक्।}

अनुवाद

(विचारकर करुणापूर्वक) अथवा, इस सोचने से क्या लाभ?

किसी भी तरह से लोगों को खुश करना श्रेष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य होता है। जिसको पिताजी ने मुझे और प्राणों को छोड़ते हुए भी पूरा किया है। (वन जाने की आज्ञा देने पर पूज्य पिताजी को अपने प्राणों को छोड़ना पड़ा। मैं भी उनकी तरह ही प्रजा का पालन करूँगा।) यहाँ राम कहते हैं कि प्रजाजन को प्रसन्न रखना ही परम कर्तव्य है अतः मैं भी अपने पिता की तरह अपने कर्तव्य का पालन करूँगा। [श्लोक 41]

(और) इसी समय भगवान् वसिष्ठ ने भी सन्देश दिया है।

और भी-

संसार में श्रेष्ठ सूर्यवंशी राजाओं ने जिस स्वच्छ और पवित्र चरित्र को उज्ज्वल किया है, यदि उसमें मेरे कारण कोई निन्दा से युक्त बात होती है तो पुण्यरहित मुझको धिक्कार है। [श्लोक 42]

• • •

हा देवि देवयजनसंभवे! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रितसुवन्धरे! हा मुनिजनकनन्दिनि! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि! हा राममयजीविते! हा महारण्यवासप्रियसखि! हा तातप्रिये! हा स्तोकवादिनि! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः?

टिप्पणी

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे॥43॥

{**अन्वयः**- त्वया, जगन्ति पुण्यानि (सन्ति), त्वयि अपुण्याः जनोक्तयः सन्ति, त्वया लोकाः नाथवन्तः (सन्ति परन्तु) त्वम्, अनाथा, विपत्स्यसे।}

(दुर्मुखं प्रति।) दुर्मुख! ब्रूहि लक्ष्मणम्। एषो नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति। (कर्णे) एवमेवम्। इति।

दुर्मुखः- हा, कह अग्गिपरिसुद्धाए, गब्भट्ठिदपवित्तसंताणाए, देवीए दुज्जनवअणादौ एवं ववसिदं देवेण? [हा, कथमग्निपरिशुद्धायाः, गर्भस्थितपवित्रसन्तानायाः, देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन?]

रामः- शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदाः?

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां, जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्॥44॥

{**अन्वयः**- इक्ष्वाकुवंशः प्रजानाम्, अभिमतः, दैवात्, वचनीयबीजं, च, जातम्, विशुद्धिकाले, यच्च, अद्भुतं, कर्म, तत्, यदि, दूरवृत्तं, कः, प्रत्येतु?}

तद्गच्छ।

दुर्मुखः- हा देवि! (इति निष्क्रान्तः।)

अनुवाद

हा, देवी, यज्ञभूमि की पुत्री। हा अपने जन्म की कृपा से भूमि को शुद्ध करने वाली, हा पिता जनक को आनन्द प्रदान करने वाली, हा, अग्नि, वसिष्ठ और अरुधन्ती के द्वारा प्रशंसित चरित्र वाली, हा रामयुक्त जीवन वाली! हा, भयंकर वनवास के समय सखी, हा, पिताजी की प्रिय, हा, अल्पभाषिणी यह क्या हो गया कि ऐसे गुणों वाली होते हुए भी तुम्हें ऐसा परिणाम प्राप्त हुआ है।

तुमसे जगत् शुद्ध है, किन्तु तुम्हारे बारे में लोगों के बुरे विचार अपवित्र हैं। तुमसे संसार आश्रययुक्त है, परन्तु तुम अनाथ के समान आपत्तियों से युक्त हो जाओगी। [श्लोक 43]

(दुर्मुख से) दुर्मुख! लक्ष्मण से कहो कि नए राजा राम आज्ञा देते हैं कि (कान में) ऐसा, ऐसा.............।

दुर्मुख- हाय, क्या अग्नि-परीक्षा के द्वारा पूर्ण शुद्ध तथा गर्भ में निर्मल सन्तान धारण करने वाली देवी (सीता) के लिये दुष्ट लोगों के कहने पर (ही) आपने ऐसा त्यागने का निर्णय कर लिया?

राम- पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, क्या नागरिक व जनपद के लोग दुर्जन हो सकते हैं? इक्ष्वाकुवंश प्रजाओं को अत्यन्त प्रिय है परन्तु आज दुर्भाग्य से उसमें निन्दा का एक कारण

बन गया है। अग्नि-परीक्षा के समय जो आश्चर्यजनक कार्य हुआ, उसके दूर होने के कारण, उस बात पर कौन विश्वास करे? (अतः नागरिकों को दोष देना उचित नहीं है।) तो इसलिए जाओ। यहाँ पर राम कहते हैं कि नागरिकों ने सीता के द्वारा दी गई अग्नि परीक्षा को नहीं देखा है, इसलिए ये कैसे विश्वास करें। [श्लोक 44]

टिप्पणी

• • •

दुर्मुख- हा देवि!

रामः- हा कष्टम्! अतिबीभत्सकर्मी नृशंसोऽस्मि संवृत्तः।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां, सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे, सौनिको गृहशकुन्तिकामिव॥45॥

{**अन्वयः**- शैशवात् प्रभृति, पोषितां, सौहृदादपृथगाश्रयाम् इमां, प्रियां, सौनिकः, गृहशकुन्तिकाम्, इव, छद्मना मृत्यवे, परिददामि।}

तत् किमिति अस्पर्शनीय पातकी देवीं दूषयामि? (इति सीतायाः शिरः सुसमुन्नमय्य बाहुमाकृष्य।)

अपूर्वकर्मचाण्डालमयि मुग्धे! विमुञ्च माम्।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या, दुर्विपाकं विषद्रुमम्॥46॥

{**अन्वय** : मुग्धे! अपूर्वकर्मचाण्डालमयि माम विमुञ्च, चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् श्रितासि।}

(उत्थाय) हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यपर्यवसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि? का गतिः।

अथवा-

दुःखसंवेदनायैव, रामे चैतन्यमर्पितम्।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं स्थिरैः॥47॥

हा अम्ब अरुन्धति! भगवतौ वसिष्ठविश्वामित्रौ! भगवन् पावक! हा देवि भूतधात्रि! हा तातजनक! हा मातः! हा प्रियसख महाराज सुग्रीव! सौम्य हनूमन् महोपकारिन् लंकाधिपते विभीषण! हा सखि त्रिजटे! परिमुषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन!

{**अन्वयः**- दुःखसंवेदनाय, एव, रामे, चैतन्यं, अर्पितम्, मर्मोपघातिभिः, प्राणैः स्थिरैः, वज्रकीलायितम्।}

अनुवाद

राम- हाय, दुःख की बात है! मैं अत्यन्त निन्दनीय कर्म करने वाला दयाहीन हो गया हूँ।

जिस प्रकार बचपन से पालन की गई, स्नेह के कारण कभी भी अलग न रहने वाली, घर में रहने वाली, चिड़िया को कोई छल से मारने वाले को दे देता है, उसी प्रकार मैं भी बचपन से पालन की हुई, विश्वास भाव से साथ में रहने वाली इन प्राणों से भी अधिक प्रिय सीता को (गंगा-स्नान के) छल से मृत्यु को दे रहा हूँ। [श्लोक 45]

इसलिए मैं पापी क्यों देवी को छूकर अपवित्र करूँ? (इस प्रकार कहकर धीरे से सीता का सिर उठाकर, हाथ खींचकर)-

हे अत्यन्त सरल हृदय वाली सीते! अपूर्व अर्थात् निन्दनीय कर्म करने के कारण तुम चाण्डाल बने हुए मेरा त्याग कर दो। तुम चन्दन वृक्ष के झूठे धोखे से पीड़ा देने वाले विष के पेड़ का ही सहारा ले रही हो। [श्लोक 46]

टिप्पणी

(उठकर) हाय! हाय! अब यह संसार विपरीत हो गया। आज राम के जीवन की सभी इच्छाएँ समाप्त हो गयी। अब संसार सुनसान-उजड़े हुए वन के समान है। संसार सार से रहित हो गया है। शरीर चेतना रहित हो गया है। मेरा कोई सहारा नहीं है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

दु:खों का भोग करने के लिए ही राम में चेतनता को रखा गया है। हृदय आदि मर्म-स्थानों पर चोट करने वाले प्राणों ने इस समय हृदय में वज्र की कील की भाँति व्यवहार किया है। (अर्थात्- ऐसी बुरी दशा में भी ये प्राण त्याग नहीं रहे है। वज्र की कील के समान महान् पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं)। [श्लोक 47]

हा माता अरुन्धती! हा सम्माननीय वसिष्ठ और विश्वामित्र! हा भगवान् अग्निदेव! हा देवी भूमि! हा पिता जनक! हा माता! हा परम मित्र सुग्रीव! हा प्रिय हनुमान्! हा महान् उपकार करने वाले लंका के राजा विभीषण! हा सखी त्रिजटे! आप सभी को पापी राम ने वञ्चित एवं तिरस्कृत किया है।

• • •

योऽहम्-

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं,
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि॥49॥

{**अन्वयः**- विस्रम्भात्, उरसि, निपत्य, जातनिद्रां, आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं गृहस्य, लक्ष्मीं प्रियगृहिणीं, दारुणः (सन्) उन्मुच्य, क्रव्याद्भ्यः, बलिम्, इव क्षिपामि।}

(सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसि पादपङ्कजस्पर्शः (इति रोदिति)

(नेपथ्ये) अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्!

रामः- ज्ञायतां भोः! किमेतत्?

(पुनर्नेपथ्ये।)

ऋषीणामुग्रतपसां, यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितः स्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः॥50॥

{**अन्वय** : यमुनातीरवासिनाम् उग्रतपसां ऋषीणाम् लवणत्रासितः स्तोमः त्रातारं त्वाम् उपस्थितः।}

रामः- कथमद्यापि राक्षसत्रासः? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि। (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य।) हा देवि! कथमेवंविधा गमिष्यसि? भगवति वसुन्धरे! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्-

जनकानां रघूणां च, यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्।
यां देवयजने पुण्ये, पुण्यशीलामजीजनः॥51॥

{**अन्वय** : यत् जनकानां रघूणां च कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्, पुण्यशीलां मां पुण्ये देवभजने (त्वम्) अजीजनः।}

[इति रुदन्निष्क्रान्तः।]

अनुवाद

टिप्पणी

जो मैं-

राम अत्यन्न दु:खी होकर स्वयं को दोष देते हुए कहते हैं कि विश्वास के साथ मेरे वक्षस्थल पर नींद को धारण करती हुई (चित्र को देखकर) भय से कांपते हुए पूर्ण गर्भ के भार से युक्त इस घर की लक्ष्मी, अत्यन्त प्रिय पत्नी को मैं निर्दय होकर हिंसक पशुओं को बलि की भाँति दे रहा हूँ। (सीता के पैरों में सिर रखकर) यह तुम्हारे चरण कमलों का राम के शिर के साथ अन्तिम स्पर्श है। [श्लोक 49]

(नेपथ्य में)

ब्राह्मणों के लिये महान भय है, ब्राह्मणों के लिये अन्याय है।

राम- अरे, पता करो, यह सब क्या है?

(फिर से नेपथ्य में।)

यमुना के तट पर निवास करने वाले, कठोर तपस्या करने वाले मुनियों का समूह 'लवण' नाम के राक्षस से भय युक्त होकर सहायता करने वाले आपके सामने उपस्थित हुआ है। [श्लोक 50]

राम- क्या अब भी राक्षसों से डर है? तो ठीक है मैं इस 'कुम्भीनसी' - के पुत्र दुष्ट आत्मा वाले मधुरापति (लवण) का नाश करने के लिये शत्रुघ्न को भेजता हूँ। (घूमकर तथा फिर से लौटकर) देवी! तुम इस तरह की दशा में कैसे जा पाओगी? हे देवी वसुन्धरा! इस प्रशंसनीय चरित्र वाली पुत्री सीता का तुम विशेष ध्यान रखना।

जो जनकवंश और रघुकुल इन दोनों वंशों के लिये कल्याण स्वरूप है। शुद्ध चरित्र वाली सीता को जिस शुभ यज्ञ की भूमि से उत्पन्न किया है तुम उसकी रक्षा करना। कहने का भाव है कि सीता परित्याग के समय राम चिन्ता करते हुए पृथ्वी से सीता की रक्षा करने के लिए कहते हैं। [श्लोक 51]

[रोते हुए चले जाते हैं।]

• • •

सीता- हा सोह्म अज्जउत्त! कहिंसि? (इति सहसोत्थाय।) हद्धी हद्धी। दुस्सिविणरणरणअविप्पलद्धा अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि।

(विलोक्य) हद्धी हद्धी । एआइणिं पसुत्तं म उज्झिअ कहिं गदो णाहो? होदु। से कुप्पिसं, जइ तं पेक्खन्ती अत्तणो पहविस्सं। को एत्थ परिअणो? [हा सौम्य आर्यपुत्र! कुत्रासि? हा धिक्? हा धिक्? दु:स्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि। .... हा धिक्! एकाकिनी प्रसूतां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथ:? भवतु । अस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मन: प्रभविष्यामि। कोऽत्र परिजन:?]

(प्रविश्य।)

दुर्मुख:- देवि? कुमारलक्खणो विण्णवेदि- 'सज्जो रहो। तं आरूहदु देवीत्ति। [देवि! कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति- ''सज्जो रथ:। तदारोहतु देवी' इति।]

सीता:- इअं आरूढह्मि। (उत्थाय परिक्रम्य।) फूरई मे गब्भभारो । सणिअं गच्छह्म। [इयमारूढास्मि। स्फुरति मे गर्भभार:। शनैर्गच्छाम:।]

दुर्मखः- इदो इदो दवी! [इत इतो देवी।]

सीता- णमो रहुउलदेवदाणं [नमो रघुकुलदेवताभ्यः।]

टिप्पणी

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते 'उत्तररामचरिते'
'चित्रदर्शनो' नाम प्रथमोऽङ्कः।

अनुवाद

सीता- हा! प्रिय आर्यपुत्र? आप कहाँ पर है? (अचानक उठकर) हाय धिक्कार है! हाय धिक्कार है! इस बुरे सपने में (वियोग युक्त) दुःखी सी होकर मैं स्वयं को 'आर्यपुत्र' से रहित हुई देख रही हूँ। (देखकर) हाय धिक्कार है! हाय धिक्कार है। अकेली सोती हुई मुझको छोड़कर स्वामी कहाँ चले गए हैं? ठीक है, यदि उनको देखती हुई मैं अपने को वश में रख सकी तो उन पर क्रोध (मान) करूँगी। यहाँ कौन सेवक है?

(प्रवेश करके)

दुर्मुख- देवी! कुमार लक्ष्मण यह कह रहे हैं कि- "रथ तैयार है अतः आप उस पर चढ़ जाइए।"

सीता- अभी चढ़ती हूँ। (उठकर और कुछ घूमकर) मेरा गर्भ का भार कंपित हो रहा है (अतः धीरे-धीरे चलते हैं।)

दुर्मुख- महारानी! इधर से चलें, इधर से।

सीता- रघुकुल के देवताओं को मेरा नमस्कार है (ऐसा कहकर सब चले जाते हैं)

[महाकवि श्रीभवभूति विरचित 'उत्तरामचरित' में 'चित्रदर्शन' नामक प्रथम अङ्क समाप्त।]

अपनी प्रगति जांचिए

5. 'उत्तररामचरितम्' के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में मंगलाचरण द्वारा किसकी स्तुति की गई है?

   (क) शिव की　　(ख) पार्वती की

   (ग) ब्रह्मा की　　(घ) सरस्वती की

6. राजा दशरथ की पुत्री का क्या नाम था?

   (क) शान्ता　　(ख) अनसूया

   (ग) शकुन्तला　　(घ) प्रियंवदा

7. राजा राम पुरवासियों एवं जनपद में रहने वाले लोगों के मध्य गुप्तचर के रूप में किसे भेजते हैं?

   (क) लक्ष्मण को　　(ख) भरत को

   (ग) दुर्मुख को　　(घ) शत्रुघ्न को

2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)
4. (क)
5. (घ)
6. (क)
7. (ग)

2.5 सारांश

इस इकाई में वर्णित प्रथम अंक में राम को दुर्मुख नामक दूत के द्वारा सीतापवाद के विषय में समाचार मिलता है और वे प्रजा को प्रसन्न करने के लिए उनका परित्याग कर देते हैं। इसकी भूमिका बहुत ही कुशलता के साथ तैयार की गई है। 'चित्रदर्शन' के समय सीताजी स्वयं गंगा जी का दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट करती है। गंगा के दर्शन के लिए जाना ही अनजाने में राम से विरह का कारण बन जाता है।

प्रथम अङ्क में घटनाओं के संयोजन में कवि ने उत्कृष्ट कला की अभिव्यक्ति की है। राम लोक कल्याण के लिए अपनी प्राणों से भी प्रिय सीता का परित्याग कर देते हैं, किन्तु अन्दर ही अन्दर वे असहनीय वेदना से दग्ध होते रहते हैं। सीता-परित्याग के रूप में राम के द्वारा किये गए कर्तव्य-निर्वाह के द्वारा कवि ने उनके चरित्र को कलङ्कमुक्त किया है। अतः यहाँ पर राम के करुण हृदय को प्रदर्शित किया गया है।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **अनुवर्तते** – अनुसरण करना
- **प्रयोक्ष्यते** – प्रस्तुत करना
- **पुरस्कृत्य** – आगे करके
- **व्यजीजनत्** – पैदा होना
- **व्यवहर्तव्यम्** – व्यवहार करना चाहिए
- **नीत्वा** – व्यतीत करके
- **अपकर्षति** – छीन लेना
- **क्लिष्टः** – दुःख
- **अवाप्ता** – प्राप्त किया
- **रक्षोभिः** – राक्षस समूह
- **विकलयतिः** – कष्ट देना

- **ग्रावा** – पत्थर
- **दलति** – पिघलना
- **दिष्टया** – सौभाग्य से

टिप्पणी

2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. भवभूति के व्यक्तित्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. भवभूति की रचनाओं के विषय में संक्षेप में विवरण दीजिए।
3. संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ बताइए।
4. प्रथम अंक की विषय-वस्तु को संक्षेप में बताइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. 'उत्तररामचरितम्' की नाटकीय विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. 'उत्तररामचरितम्' की कथावस्तु का विवेचन वाल्मीकि रचित 'रामायणम्' के आधार पर कीजिए व कवि के द्वारा प्रयुक्त कल्पनाओं का विश्लेषण कीजिए।
3. 'उत्तररामचरितम्' के प्रथम अङ्क की कथावस्तु का विस्तृत रूप से विवेचन कीजिए।

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. उत्तररामचरित, व्याख्या. वीरराघव, वाराणसी।
2. Uttararamacarita of Bhavabhuti, M.R. Kale.
3. उत्तररामचरित, सम्पा. तारिणीश झा।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए. बी. कीथ, अनु. मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, 1978।
6. संस्कृत नाटककार, कान्तिकिशोर भरतिया, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1959।
7. संस्कृत नाटक समीक्षा, प्रो. इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र', साहित्य निकेतन, कानपुर, 1960।

इकाई 3 नवस्पन्दः – आधुनिक काव्यकार – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ एवं उनकी रचनाएं

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 नवस्पन्दः– (आधुनिक काव्यकार एवं उनकी काव्य रचनाएं) –कवि परिचय – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ
3.3 रचनाएं– पंजरबद्धः शुकः, वल्लभविलापः, अंत्यजोद्धारः, मीराचरितं, भारतीवसंतगीतिः, भारतं, नवा कविता, पुरुषार्थ संहिता (व्याख्या एवं प्रश्न)
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

आधुनिक युग में साहित्य रचना का विकास क्रम

साहित्य–वाचस्पत्यम् शब्दकोश में भाव अर्थ में 'ष्य्' प्रत्यय करके 'सहितस्य भावःसाहित्यं' निर्वचन किया गया है। यहाँ साहित्य शब्द के छह अर्थ बताए गए हैं।

1. मेलने
2. परस्परसापेक्षाणांतुल्यरूपाणामेकक्रियान्वयित्वे।
3. तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वे।
4. एकक्रियान्वयित्वमात्रे।
5. बुद्धिविशेषविषयत्वे।
6. पद्यात्मके काव्ये च।

प्रस्तुत प्रसंग में 'साहित्य' पद्यात्मक एवं अन्य काव्य विधाओं का वाचक है। शब्दकल्पद्रुम में भी ये अर्थ प्रतिपादित हैं। उसके अनुसार साहित्य शब्द 'सहित' से 'ष्य्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।'

सहितयोः शब्दार्थयोः भावः साहित्यम् – अर्थात् शब्द और अर्थ के सहभाव को साहित्य कहते हैं।

साहित्य शब्द यहाँ निम्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है–

1. परस्परसापेक्षाणां तुल्यरूपाणां युगपदेकक्रियान्वयित्वं साहित्यम्।
2. तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वम्।

3. बुद्धिविशेषविशेषत्वं वा।
4. साहित्यम् एकक्रियान्वयित्वम्।

शब्दकोश के अनुसार, साहित्य के व्युत्पत्तिगत अर्थ से स्पष्ट होता है कि शब्द अर्थ के प्रतिस्पर्धी भाव को साहित्य कहते हैं। वक्रोक्तिजीवितम् के अनुसार, शब्द और अर्थ की न्यूनता एवं अधिकता से रहित मनोहारिणी अवस्थिति ही साहित्य है–

'साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसो

अन्यूनानतिरिक्तत्वं मनोहारिण्यवस्थितिः।

अतः शब्द और अर्थ के स्पर्धा रहित परस्पर सहभाव को साहित्य कहते हैं। भर्तृहरि ने साहित्य से विहीन व्यक्ति को पशु तुल्य माना है–

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशुनाम्।

अनेक विद्वानों ने अपनी प्रतिभा को, आन्तरिक भावों को संस्कृत में साहित्य प्रणयन के माध्यम से व्यक्त करना प्रारम्भ किया। 'ऋषयोः मन्त्र दृष्टारः' के आधार पर तपोभूत ऋषियों के द्वारा दृष्टिगोचरमन्त्रों की उत्पत्ति के कारण वैदिक काल से ही साहित्य रचना का आविर्भाव हुआ। लौकिक संस्कृत साहित्य में इसका विकास वाल्मीकि के द्वारा प्रादुर्भूत श्लोक के रूप में माना जाता है। जिसे व्यास महर्षि ने महाभारत के रूप में अग्रसरित किया। समयानुकूल इस परम्परा का निर्वाह कालिदास ने 'रघुवंशम्', बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' एवं 'हर्षचरित' की रचना के माध्यम से किया। लौकिक साहित्य में गद्य, पद्य, चम्पू, स्तोत्र, कथा इत्यादि विधाओं में संस्कृत मनीषियों ने साहित्य प्रणयन करना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार वैदिक व लौकिक साहित्य के रूप में साहित्य रचना का विकास हुआ। प्राचीन साहित्यकारों से प्रेरित एवं प्रभावित होकर आधुनिक विद्वानों ने भी संस्कृत की ओर अपनी लेखनी का प्रवर्तन किया, जिसके तहत लौकिक साहित्य की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं – प्राचीन एवं आधुनिक।

आधुनिक साहित्य का कालक्रम

आधुनिक (अर्वाचीन) साहित्य के कालक्रम के निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वानों का मत भिन्न–भिन्न रहा है। डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' ग्रन्थ में अर्वाचीनकाल का आरम्भ 17वीं शताब्दी से माना है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अर्वाचीन काल का आरम्भ 1750 ई. से माना है। डॉ.हीरालाल शुक्ल ने 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' में 1784 को संस्कृत का नवजागरणकाल माना है। डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने 'संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना' नामक ग्रन्थ में अर्वाचीन साहित्य के रूप में शिवराज विजय (1880–1893) ई. को प्रथम माना है। इस आधार पर आधुनिक संस्कृत साहित्य के कालक्रम को इस रूप में विभक्त किया जा सकता है।

1. 1800 से 1900 तक 19वीं शताब्दी – स्वतंत्रतापूर्व काल।
2. 1900 से 1950 तक 20वीं शताब्दी – स्वतन्त्रता संघर्षकाल।
3. 1950 से 1990 तक 20वीं शताब्दी – स्वातन्त्र्योत्तर काल।

विद्वज्जन 18वीं शताब्दी से पूर्व के साहित्य को प्राचीन साहित्य के रूप में मानते हैं तथा 18वीं शती के उत्तरवर्ती साहित्य की अर्वाचीन साहित्य के रूप में गणना करते

हैं। 18वीं शती में ही संस्कृत साहित्य में अभिनव प्रवृत्तियों का श्री गणेश हुआ। संस्कृत काव्य में शैलीगत परिवर्तन तथा नई विधाओं का उदय हुआ। वस्तुतः 'संस्कृतसाहित्येतिहासः' में आधुनिक काल का आरम्भ 18वीं शती के प्रारम्भ से स्वीकार किया गया।

संस्कृत वाङ्मय कोश (प्रथम खण्ड) के अनुसार 17वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के बाद का कालखण्ड आधुनिक माना जाता है। अतः 20वीं शताब्दी से आधुनिक संस्कृत साहित्य में रचना कार्य के विकास को नितान्त आश्रय मिला। अधिकांश रचनाकार यश प्राप्ति एवं अर्थ प्राप्ति के उद्देश्य से रचनाकार्य में संलग्न रहे। 20वीं शताब्दी के साहित्य प्रणयन प्रवृत्तियों को जानने के लिए कृष्णम्माचारियर का 'हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर', श्रीधर भास्कर वर्णेकर का 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' (1963), डॉ. हीरालाल शुक्ल का 'आधुनिक संस्कृत साहित्य (1971), डॉ. उषा सत्यव्रत का 'ट्वेटिएथसेन्चुरी संस्कृत प्लेज' (1972) इन ग्रन्थों के कारण तथा इससे पूर्व लिखित डॉ. वेंकटराम राघवन का 'आधुनिक संस्कृत वाङ्मय' (1956–57) उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इन्हीं रचनाओं के कारण अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ तथा आधुनिक रचना की शुरुआत हुई। इस अवधि में अप्पयदीक्षित, नीलकण्ठ दीक्षित, राधामंगल नारायण शास्त्री, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, अलिखानन्द शर्मा, पं. हृषीकेश भट्टाचार्य, अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, विधुशेखर भट्टाचार्य पण्डिता क्षमाराव, डॉ.वी. राघवन, डॉ.रामजी उपाध्याय, सत्यव्रतशास्त्री, अभिराज राजेन्द्रमिश्र, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कलानाथशास्त्री, जानकी वल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ, रमाशंकर त्रिपाठी, नलिनी शुक्ला तथा राधावल्लभ त्रिपाठी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।। अप्पाशास्त्री राशिवडेकर ने 'अरेबियन नाइट्स' का अनुवाद 'कथाकल्पद्रुम' नाम से किया है। इसके बाद 1901 ई. में अनन्ताचार्य कोडम्बकम् के दो कथा संग्रह 'कथामंजरी' एवं 'नाटक कथा संग्रह' प्रकाशित हुए।

19वीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं 20वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था। इस युग में राष्ट्रभक्तों की मातृभूमि के प्रति बलिदान की शौर्यगाथा को शब्दबद्ध किया गया। संस्कृत साहित्यकारों ने भी देश के नागरिकों में राष्ट्रभक्ति को जागृत करने, राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने वाला तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले वीर वीरांगनाओं के बलिदान से अवगत कराने के लिए राष्ट्र भक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना परक रचनाओं का प्रणयन किया, जैसे– टी. गणपति शास्त्री ने भारतवर्णनम्, सारदाचरण मिश्र ने भारतगौरवम्, कृष्णमाचार्य ने भारतगीतम्, अप्पाशास्त्री राशिवडेकर ने तिलकस्यकारागृहनिवासः, विधुशेखर भट्टाचार्य ने भारतभूमिः, गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने जातीय प्रार्थना, इत्यादि। राष्ट्रीय गीत वन्देमातरम् से प्रेरित होकर भी अनेक संस्कृत मनीषियों ने राष्ट्रीय भावना प्रधान रचनाएँ लिखीं।

प्रस्तुत इकाई में संस्कृत साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों के परिचय एवं उनकी रचनाओं का उल्लेख किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आधुनिक कवि और उनकी रचनाओं से अवगत हो पाएंगे,
- संस्कृत भाषा के अद्यतन महत्त्व को समझ पाएंगे;

• संस्कृत भाषा वैज्ञानिक और परिमार्जित भाषा है, यह जान पाएंगे;
• राष्ट्रीय भावना प्रधान रचनाओं का अवलोकन कर पाएंगे।

3.2 नवस्पन्दः– (आधुनिक काव्यकार एवं उनकी काव्य रचनाएं) –कवि परिचय – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, पण्डिता क्षमाराव, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ

1. अप्पाशास्त्री राशिवडेकर

संस्कृत काव्य–परम्परा में नवयुग के प्रवर्तक, बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न महान राष्ट्रभक्त श्री अप्पाशास्त्री राशिवडेकर का जन्म महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले के राशिवडेकर ग्राम में 2 नवम्बर 1873 ईसवीं में हुआ था। उनके पिता श्री सदाशिव शास्त्री अपने समय के विख्यात वैदिक पण्डित, ज्योतिषी एवं कर्मकाण्ड के ज्ञाता थे। संस्कृतमय परिवेश में जन्मे, नैसर्गिक कवि अप्पाशास्त्री ने आठ वर्ष की बाल्यावस्था से ही देववाणी में काव्यरचना प्रारम्भ कर दी थी। ज्योतिष का ज्ञान अर्जित कर उन्होंने तेरह वर्ष की अल्पायु में ही पंचांग का निर्माण किया था। संस्कृत के अतिरिक्त मराठी, बंगला, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयालम, हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओं एवं अंग्रेजी में भी उन्होंने नैपुण्य प्राप्त किया था। अप्पाशास्त्री राशिवेडकर का जन्म एक ऐसे युग में हुआ, जब यह भारत राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्य का गुलाम था। 1857 की क्रान्ति ने असफल होते हुए भी देशवासियों के मन में स्वतन्त्रता की ललक जगाई थी। राष्ट्रभक्त अपनी मातृभूमि को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए तन–मन–धन अर्पित करने के लिए तत्पर थे। देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत, जुझारू प्रकृति के स्वाभिमानी अप्पाशास्त्री ने सरकारी नौकरी को ठुकराकर पूना के एक स्कूल में अध्यापक के रूप में अपने कर्ममय जीवन का प्रारम्भ किया। अप्पाशास्त्री बहुभाषाविद् और अच्छे कवि होने के साथ ही एक अच्छे वक्ता भी थे। देश के विभिन्न भागों में उन्हें व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाता था। संस्कृत भाषा में दिये जाने वाले व्याख्यानों में भी बहुत बड़ी संख्या में श्रोता उपस्थित रहते थे। संस्कृत वाङ्मय की अभिवृद्धि में अप्पाशास्त्री का योगदान नाना रूपों में परिलक्षित होता है। उन्होंने रामायण के बालकाण्ड, अश्वघोष के 'बुद्धचरित', कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' तथा भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' पर संस्कृत टीकाग्रंथों की रचना कर पारम्परिक टीका पद्धति को नया रूप दिया। बङ्गला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र के उपन्यास सहित कई अन्य बङ्गला उपन्यासों का संस्कृत में अनुवाद किया। उन्होंने संस्कृत–गद्य के क्षेत्र में, शास्त्रीय एवं सामयिक विषयों पर सरल संस्कृत में निबन्ध–लेखन की नवीन पद्धति का पल्लवन किया। संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अप्पाशास्त्री का अमूल्य अवदान रहा है। उन्होंने सन् 1893 से सन् 1909 तक 'संस्कृतचन्द्रिका' नामक मासिक पत्रिका तथा लगभग साढ़े तीन वर्षों तक 'सूनृतवादिनी' नामक साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन एवं प्रकाशन किया। सम्पादक के रूप में अप्पाशास्त्री ने संस्कृत के उत्कृष्ट रचनाकारों को प्रोत्साहन दिया तथा पाठकों में युगचेतना और राष्ट्रीय भावना जगाई। 'सूनृतवादिनी' लोकमान्य तिलक की 'केसरी' के समान ही लोकप्रिय हुई। अपने प्रखर राष्ट्रवादी विचारों के कारण 'संस्कृतचन्द्रिका' ब्रिटिश शासन की कोपभाजन बनी एवं अन्ततः इसे बन्द करना पड़ा। आजीवन अभावों और कष्टों से संघर्ष करते हुए अप्पाशास्त्री ने 40 वर्ष की अल्प आयु में ही 25 अक्टूबर 1913 को रुग्णावस्था में इस नश्वर देह का त्याग किया।

काव्यानुगुंजन

अप्पाशास्त्री की काव्यरचनाओं में युगबोध, राजनैतिक चेतना, राष्ट्रप्रेम, सामाजिक यथार्थ और विसंगतियों पर व्यंग्य स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है। 'पञ्जरबद्धःशुकः' कवि की एक उत्तम रचना है, जिसमें पराधीन भारत के जन–मन की पीड़ा को मूर्त रूप दिया गया है। इस कविता में शुक उस गुलाम भारत के जन–गण का प्रतीक है, जिसे उन्मुक्त आकाश में स्वतंत्रभाव से विहार करने के जन्मसिद्ध अधिकार से वञ्चित कर, बलपूर्वक पिंजरे में बन्दी बनाकर रखा गया है। इस रचना के माध्यम से उन भारतियों पर भी तीखा व्यंग्य है, जिन्होंने सुख–सुविधाओं, अधिकारों और धन के लोभ में ब्रिटिश सरकार की नौकरियों को स्वीकार करते हुए अपनी मातृभूमि के साथ द्रोह किया है। स्वातन्त्र्यचेतनाहीन, पराधीन मनोवृत्ति वाले ऐसे देशवासियों को उद्बोधित करते हुए कवि कहते है–

''स्वधर्म का पालन और स्वतंत्रता की प्राप्ति ही कवि के जीवन का लक्ष्य है।''

कवि की समाजवादी विचारधारा भी इस रचना में प्रतिबिम्बित है। वैभव या समृद्धि वह है, जिसका उपभोग सबके साथ किया जाता है, एकाकी या एक वर्ग के द्वारा नहीं। अप्पाशास्त्री की रचनाओं में पुरातन और नूतन का प्रशंसनीय समन्वय है। 'ऋतुवर्णन' विश्वसाहित्य का एक पारम्परिक विषय है, क्योंकि चिरन्तन काल से ही काव्य सृष्टि के दो प्रमुख केन्द्र रहे है – बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति। बाह्य प्रकृति में विधाता ने जिस रूप–रंग और रस से परिपूर्ण संसार की सृष्टि की है, वह सर्वदा ही कवि–मन को आकर्षित करता रहा है। रामायण से प्रारम्भ कर मध्य युग तक रचे गये महाकाव्यों में ऋतुवर्णन के लिए जिन रूढ़ तत्वों को ग्रहण किया गया है, वे कभी पुरातन और कभी अधुनातन सन्दर्भों और भावों से गुँथकर अप्पाशास्त्री के 'ऋतुवर्णन' में प्रस्तुत हुए हैं, अतः वर्षाऋतु की धरित्री स्नान से निर्मल, कुसुमों से अलंकृत, निर्झर रूपी मुक्ताहारों से शोभित, सजधज कर प्रिय की प्रतीक्षा करती हुई 'वासकसज्जिका' नायिका के समान प्रतीत होती है – मानव में नैतिक मूल्यों का पतन, कर्त्तव्य के प्रति विमुखता एवं धर्मभ्रष्टता वर्तमान युग की प्रमुख समस्या है। अप्पाशास्त्री राशिवडेकर ने संस्कृत में 141 पत्र लिखे, जो संस्कृतचन्द्रिका, सुनृतवादिनी, संस्कृतरत्नाकर, मंजूषा, आदि में प्रकाशित हुए है। शासकों में लोकमङ्गल और प्रजारञ्जन के आदर्श लुप्त हो चुके है। कहा जाता है कि काव्य का जन्म करुणा से हुआ। क्रौञ्ची के करुण क्रन्दन से आप्लावित वाल्मीकि का शोक ही रामायण काव्य का मूलस्रोत है। अप्पाशास्त्री का 'वल्लभविलापः' सहचारिणी के वियोग में दुःखी कविहृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है। भावपक्ष के ही समान कलापक्ष या काव्यशिल्प की दृष्टि से भी अप्पाशास्त्री की रचनाएँ उत्कृष्ट है। शब्दार्थ का सौन्दर्य जहाँ अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलङ्कारों से समृद्ध हुआ है, वहीं काव्य की आत्मा रस का सौन्दर्य, माधुर्य, ओज आदि गुणों से। इस प्रकार अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से सारस्वत कोश की वृद्धि करने वाले अप्पाशास्त्री राशिवडेकर का अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय का अवदान चिरस्मरणीय है।

2. पण्डिता क्षमा राव

पण्डिता क्षमा राव समकालीन संस्कृत साहित्य की अग्रदूत है उनका जन्म 4 जुलाई 1890 को हुआ था। उन्होंने संस्कृत साहित्य में नूतन विधाओं तथा विषयवस्तु का अवतरण किया। गांधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित होकर उन्होंने सत्याग्रहगीता नामक महाकाव्य की रचना की जो 1932 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। अपने पिता की जीवनी

लेखन से पण्डिता क्षमा ने संस्कृत साहित्य में नई विधा का सूत्रपात किया। उसके प्रस्ताव में श्रीनृसिंह केलकर ने मार्मिक टिप्पणी करते हुए कहा –

कथं हि न करिष्यन्ति कन्याभ्यः पितरः स्पृहाम्।
ऋणम् तत् पैतृकम् पुण्यमपाकुर्युर्तदीह ताः।।

पिता पुत्रियों की इच्छा क्यों नहीं करेंगे, क्योंकि वे भी पुण्य पितृ ऋण को उतारने में पूर्ण रूप से समर्थ होती हैं। पण्डिता क्षमा गार्गी एवं मैत्रेयी की परंपरा को आगे बढाने वाली संस्कृत कवयित्री हैं। उन्होंने कथाओं को भी पद्य में लिखा। चरित काव्य के अंतर्गत क्षमा ने तुकारामचरित, रामदासचरित तथा ज्ञानेश्वर चरित का ग्रथन किया। दुर्भाग्य से तीन वर्ष की अल्प आयु में ही क्षमा को पितृ–वियोग सहना पड़ा। पिता की मृत्यु के पश्चात् क्षमा का बचपन अपनी निर्दयी चाची के घर घोर कष्टों और अभावों में बीता। प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए भी मेधाविनी क्षमा 10 वर्ष की आयु से ही संस्कृत और अंग्रेजी में कविताएँ लिखने लगी थीं। कुछ वर्ष पश्चात् वे बम्बई में अपने पितामह रामचन्द्र नायक के पास रहने लगी। वहाँ गन्दी बस्ती में रहते हुए उन्होंने गरीबों के दुख–दैन्य को तीव्रता से अनुभव किया, जो अपने यथार्थ रूप में उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। बम्बई में परिश्रम और लगन से अध्ययन करते हुए उन्होंने विल्सन कॉलेज में प्रवेश प्राप्त किया, जहाँ उन्हें महामहोपाध्याय पीवी. काणे से ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, किन्तु अध्ययन के मध्य में ही 20 वर्ष की आयु में उनका विवाह प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. राघवेन्द्र राव के साथ हो गया। 1911 में पति के साथ यूरोप–भ्रमण के दौरान उन्होंने अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं का अभ्यास किया, पाश्चात्य संगीत, पियानो–वादन और टेनिस में प्रवीणता प्राप्त की। यूरोप की संस्कृति को निकट से जानकर अंग्रेजी भाषा में उत्तम साहित्य की रचना की। वे यूरोप के अनेक विद्वानों और साहित्यकारों के सम्पर्क में आईं। महान् प्राच्यविद्या–विशारद सिल्वॉ लेव्ही का उन्हें आशीर्वाद मिला। संस्कृत में लिखने की प्रेरणा उन्हें अंग्रेजी के प्रसिद्ध साहित्यकार समरसेट मॉम ने दी।

संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर आचार्य प्रो राधावल्लभ त्रिपाठी ने इनके योगदान को रेखांकित करते हुए कहा – दलित विमर्श, स्त्रीविमर्श तथा स्वराज विमर्श– इन तीन स्तरों पर क्षमा राव का आधुनिक साहित्य को प्रदेय अभूतपूर्व है।

स्वतंत्रता संग्राम में पुरुषों और स्त्रियों ने कन्धे से कन्धे मिलाकर अपने समान साहस एवं उत्साह से विश्व को दाँतों तले अंगुली दबाने को बाध्य कर दिया। नारी त्याग एवं तपस्या की प्रतिमूर्ति मानी जाती है। आरम्भिक काल से ही उसने पुरुष की छत्रछाया में अपनी गुण गरिमा का विस्तार किया है तथा परिवार, समाज एवं देश की व्यवस्था को बनाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसलिए भारतीय साहित्य में नारी को विशिष्ट सम्मान दिया गया। मनु ने भी स्त्री की महत्ता को स्वीकार करते हुए मनुस्मृति में कहा है कि ''जहाँ नारियों की पूजा होती है। वहाँ सभी देवता लोग आनन्दित होकर निवास करते हैं।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। (मनुस्मृति – 3/56)

नारी जीवन का मूलमंत्र है – त्याग। अपनी इस त्यागमय प्रवृत्ति के कारण ही हमारे भारत देश की अनेक नारियों ने स्वहितार्थ की समुचित सीमाओं को तोड़कर परार्थ के लिए प्राणत्याग करने में भी संकोच नहीं किया।

संस्कृत भाषा में यद्यपि पुरुष प्रधान ऐतिहासिक रचनाओं की ही परम्परा रही थी। किन्तु साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए आधुनिक रचनाकारों ने स्त्री चरित्र प्रधान रचनाओं के प्रणयन से संस्कृतवाङ्मय के भण्डार की श्रीवृद्धि की। लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, इन्दिरागांधी आदि नारियों के प्रभावपूर्ण एवं ओजस्वी जीवन चरित्र को आधार बनाकर प्रणीत रचनाएँ इस सम्बन्ध में प्रमाण हैं।

गांधीजी के स्वाधीनता संग्राम से प्रभावित होकर उन्होंने इस धर्मयुद्ध पर एक नई गीता 'सत्याग्रह गीता' लिखी जो भारत में प्रतिबंधित होने के कारण 1931 में पेरिस से प्रकाशित हुई। 1932 में उन्होंने संस्कृत में ग्राम्य जनों के जीवन संघर्ष पर आधारित कुछ पद्यबद्ध कहानियाँ लिखी, जिनका संग्रह 'कथापञ्चकम्'' 1933 में प्रकाशित हुआ। 1939 में क्षमाराव ने अपने पिता के जीवनचरित्र 'शकंरजीवनाख्यानम्' तथा 1944 में उन्होंने गांधीजी के जीवन पर आधारित श्रेष्ठ काव्यकृति 'उत्तरसत्याग्रह गीता' की रचना की, जो 1947 में स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् ही प्रकाशित हो पाई। गांधीजी को ही केन्द्र बनाकर रची गई स्वाधीनता संग्राम के काव्यात्मक इतिहास की अंतिम कड़ी 'स्वराजविजयमहाकाव्यम्' 1944 में पूर्ण हुई। उन्होंने महाराष्ट्र के संतों को विषय बनाकर 'तुकारामचरितम्', 'रामदासचरितम्' तथा 'ज्ञानेश्वरचरितम्' नामक महाकाव्यों की रचना की। उन्होंने संस्कृत कथा के क्षेत्र में नवयुग का प्रारम्भ करते हुए कहानियाँ लिखीं, जिनके संग्रह 'ग्रामज्योतिः' 1926 में तथा 'कथामुक्तावलिः' 1951 में प्रकाशित हुए। क्षमाराव ने अपने जीवन के हर क्षण को साहित्यसर्जन के प्रति समर्पित करते हुए एक विशाल श्रेष्ठ साहित्य की रचना की। पण्डितसमाज ने उन्हें 'पण्डिता' एवं 'साहित्यचन्द्रिका' की उपाधियों से विभूषित किया। उन्होंने संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य कवि राजशेखर की इस उक्ति को सार्थक किया कि 'प्रतिभा स्त्री–पुरुष का भेद नहीं करती।' 1953 में अपने पति की मृत्यु के पश्चात् 22 अप्रैल 1954 को काव्याकाश की यह 'साहित्यचन्द्रिका' भी अस्त हो गई।

संस्कृत साहित्य में पण्डिता क्षमाराव द्वारा कतिपय प्रमुख नारी चरित्र प्रधान ऐतिहासिक रचनाएँ निम्नलिखित हैं –

मीरालहरी

इसका प्रकाशन 27, न्यू मरीन लैन मुम्बई से 1944 में हुआ है। पण्डिता क्षमाराव द्वारा रचित यह गीतिकाव्य दो खण्डों में विभक्त है। जिसमें मीरा की जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा निबद्ध है।बाल्यकाल से ही मीरा कृष्ण की आराधना करती है और उसकी भक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है।भोजराज से विवाह होने के पश्चात् ससुराल जाने पर उसकी कृष्णभक्ति पर कटाक्ष किया जाता है।उसको कृष्ण की स्तुति के स्थान पर दुर्गा की स्तुति करने के लिए कहा जाता है लेकिन फिर भी मीरा कृष्ण की ही भक्ति करती है –

'बध्वाः शून्यमनस्कतामवयती राज्ञी विरम्य क्षणं,भूय प्राह मनस्तव क्व नु गतं श्रीशेऽनिशं वर्तते।

पूज्या नः कुलदेवता तवसदा का नाम सा ब्रूहि मे,श्री दुर्गा विजय प्रदा रणभुवि क्षत्रस्य शक्तिः परा।।30

पति भोजराज की मृत्यु हो जाने के बाद उसके सास, ननद तथा देवर द्वारा उस पर अनेक अत्याचार किए जाते हैं उसको प्रताड़ित किया जाता है किन्तु इन सबको सहन करती हुई वह ससुराल में ही रहती है। कृष्णभक्ति प्रिय होने के कारण वह ससुराल को

छोड़कर वृन्दावन चली जाती है और वहाँ भगवान् कृष्ण के मन्दिर में रहकर भक्ति करती है। अन्ततः कृष्णभक्ति परायण मीरा कृष्ण में ही अन्तर्लीन हो जाती है।

वीरभा

पं. क्षमाराव रचित 'वीरभा' लघुकथा को लीलारावदयाल ने एकांकीरूपक में प्रकाशित कियाहै। इसका प्रकाशन 1954 में 8 भूपेन्द्र वसु, एवन्यू, कोलकाता से हुआ है। इसकी नायिका वीरभा है और इसी के नाम पर इस रूपक का नामकरण किया गया है। वीरभा नामक महिला युवावस्था में ही अपने सम्पूर्ण व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देकर तपस्विनी के जीवन को स्वीकार करती है। वह अपने राष्ट्र को विदेशी शासकों के क्रूर जाल से मुक्त कराने की अदम्य भावना से महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन में अग्रणी भूमिका निभाती है। इसका नेतृत्व करके सभी के मानस में राष्ट्रीय भावना का प्रबल संचार करती है।

मीराचरितम्

पण्डिता क्षमाराव की 'मीरालहरी' को उपजीव्य बनाकर लीलाराव दयाल ने ऐतिहासिक कथा प्रधान उक्तरूपक की रचना की है। मजूंषा पत्रिका अगस्त, 1960 वर्ष–10, अंक 6 में यह प्रकाशित हुई है। 13 दृश्यों में विभक्त इस रूपक में मीरा की बाल्यावस्था से लेकर जीवन भर की हरिभक्ति परक घटनाएँ चित्रित की गई हैं। ससुराल पक्ष के द्वारा अनेकों अत्याचार किए जाने पर भी मीरा अपनी भक्ति को नहीं छोड़ती है और चुपचाप अत्याचारों को सहन करती हुई वह एक दिन कृष्ण में ही अन्तर्लीन हो जाती है।

काव्यानुगुंजन

पण्डिता क्षमाराव ने अभाव और वैभव, भारतीय जीवन और पाश्चात्य जीवन, भारत देश की सामाजिक कुरीतियों, अशिक्षा और गरीबी को बहुत निकट से देखा था, किन्तु इन सबके मध्य उनका तेजस्वी व्यक्तित्व स्वर्णकमल के समान विकसित हुआ था। उनके संवेदनशील कविहृदय ने जहाँ एक ओर सामाजिक परिदृश्य का भावात्मक चित्रण किया है, वहीं शिक्षा और उदात्त आदर्शों ने समाज सुधार और स्वर्णिम भविष्य की राह भी दिखाई है। उनके द्वारा वर्णित नारी अनाथ और अबला नहीं है, उसमें है दृढ़ता, निर्णय लेने की शक्ति, प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करने की सामर्थ्य और दृढ़ संकल्प। देशोद्धार के लिए अन्त्यजोद्धार ही भारत का प्रमुख कर्त्तव्य है। छुआछूत और जाति–व्यवस्था मानव–निर्मित हैं, देवनिर्मित नहीं। यह भारत के लिए एक बहुत बड़ा कलङ्क है। अपनी संस्कृत रचनाओं के माध्यम से पण्डिता क्षमाराव सामाजिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में भी अग्रणी रही है। 'सत्याग्रहगीता' एवं 'स्वराजविजयमहाकाव्यम्' में सरल शब्दों में घटना–क्रमों के निरूपण ने अनायास ही एक सरल प्रवाह एवं इतिवृत्तात्मक क्रमबद्धता की सृष्टि की है। 'मीराचरितम्' में कल्पनाओं के चमत्कार और अलङ्कारों के वैभव के साथ अर्थगौरव भी है। क्षमाराव की ललित गद्यशैली वर्ण्य विषय और भाव को सशक्त अभिव्यक्ति देती हुई पाठकों में एक अनुगूंज की सृष्टि करती है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में पण्डिता क्षमाराव एक कालजयी हस्ताक्षर है।

3. आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का जन्म गया (बिहार) जिले के मैगरा नामक गाँव में (माघ शुक्ल द्वितीया) 1916 ई. में तथा निधन 7 अप्रैल, 2011 को मुजफ्फरपुर (बिहार) में हुआ।

संस्कृत में 'काकली' नामक काव्य–संग्रह के साथ साहित्य जगत् में प्रवेश करने वाले शास्त्री जी निराला की प्रेरणा से हिंदी में आए। संस्कृत साहित्य और भारतीय वांगमय के प्रखर और प्रकांड विद्वान् शास्त्री जी ने हिंदी कविता और गद्य में तीन दर्जन से ऊपर पुस्तकें लिखीं। 'रूप अरूप', 'तीर तरंग', 'अवंतिका', 'शिप्रा', 'मेघगीत', 'उत्पलदल', 'संगम', 'राधा' (महाकाव्य) आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य–पुस्तकें हैं। कविता के अतिरिक्त आलोचना, संस्मरण, उपन्यास, कहानी, गीतिनाट्य आदि विधाओं में भी शास्त्री जी की दर्जन–भर से ऊपर पुस्तकें हैं। 'कालिदास' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है, जो अपनी तरह का हिंदी का अकेला उपन्यास है। 'हंसबलाका' उनके लिखे संस्मरणों की ऐसी पुस्तक है, जिसकी दूसरी मिसाल हिंदी में शायद ही मिले। 'राजेन्द्र शिखर सम्मान' तथा 'भारत भारती' आदि सम्मानों से सम्मानित शास्त्री जी छायावादोत्तर युग के ऐसे विलक्षण कवि–लेखक थे, जिनका साहित्य उस युग में प्रचलित 'वादों' के लिए चुनौती है।

'भारत–भारती पुरस्कार' से सम्मानित जानकी वल्लभ ने शुरुआत संस्कृत में कविताएँ लिखने से की थी। उनकी संस्कृत कविताओं का संकलन 'काकली' के नाम से साल 1930 के आसपास प्रकाशित हुआ। संस्कृत साहित्य के इतिहास में नागार्जुन और जानकी वल्लभ को देश के नवजागरण काल का प्रमुख संस्कृत कवि माना जाता है।

उनका 'काकली' संकलन पढ़कर हिंदी–कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' काफ़ी प्रभावित हुए थे। ये निराला ही थे जिन्होंने उन्हें हिंदी में भी लिखने के लिए प्रेरित किया।

उन्होंने हमेशा निराला को अपना प्रेरणास्त्रोत माना। उनकी छंदबद्ध काव्य–कथाएं 'गाथा' नामक संग्रह में संकलित हैं। उनके इस संग्रह ने उन्हें हिंदी साहित्य के चोटी के कवियों की फ़ेहरिस्त में शामिल कर दिया। हालाँकि, उन्होंने साहित्य की कई विधाओं जैसे कि कविता, गीत, नाटक, कहानी, संस्मरण, समीक्षा और आलोचना आदि पर अपनी लेखनी चलाई।

उनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं– 'राधा,' 'एक किरण, सौ झाइयाँ,' 'दो तिनकों का घोंसला,' 'अश्वबुद्ध,' 'कालिदास,' 'कानन,' 'अपर्णा,' 'लीला कमल,' 'सत्यकाम,' 'बांसों का झुरमुट,' 'अजन्ता की ओर,' 'निराला के पत्र,' 'स्मृति के वातायन,' 'नाट्य सम्राट् पृथ्वीराज कपूर,' 'हंस–बलाका' आदि!

लेखन में छंदों पर उनकी पकड़ जबरदस्त थी और अर्थ इतने सहज ढंग से उनकी कविता में आते थे कि इस दृष्टि से पूरी सदी में केवल वे ही निराला की ऊँचाई को छू पाए। एक साक्षात्कार के दौरान जानकी वल्लभ ने बताया कि उन्होंने महज़ 18 साल की उम्र में आचार्य की डिग्री हासिल कर ली थी और जब यह खबर अख़बार में छपी, तो निराला जी बहुत प्रभावित हुए।

इतना ही नहीं, जब निराला जी ने उनका संस्कृत कविताओं का संग्रह 'काकली' पढ़ा, तो वे खुद उन्हें ढूंढते–ढूंढते काशी पहुँचे और जानकी वल्लभ से मुलाकात की। उस समय के महान् कवि निराला का ऐसा प्रेम देखकर जानकी वल्लभ इतने भाव–विभोर हुए कि उन्होंने मुज़फ्फ़रपुर में अपने घर का नाम 'निराला निकेतन' रखा।

उनके इस 'निराला निकेतन' में 'पृथ्वीराज' कमरा भी था। दरअसल, इस कमरे का नाम उस समय के प्रसिद्ध थिएटर कलाकार पृथ्वीराज कपूर के नाम पर रखा गया।

जब उनका गीत 'किसने बाँसुरी बजाई' मशहूर हुआ तो पृथ्वीराज खुद उनसे मिलने आये और इसी कमरे में बैठकर उन्होंने ढेर सारी बातें की। उन्हीं की याद में जानकी वल्लभ ने इस कमरे का नाम 'पृथ्वीराज' रख दिया।

जानकी वल्लभ को जितना प्यार अपनी लेखनी से था, उतना ही उनको पशु–पालन का शौक था। वे एक महान् पशुपालक भी रहे। उनके यहाँ हमेशा कुत्ते, बिल्ली, गाय, बछड़े आदि रहते थें वे जीवों के प्रति बहुत संवेदनशील थें

उन्हें उनके लेखन के लिए बहुत से सम्मानों से नवाज़ा गया, जिनमें दयावती पुरस्कार, राजेन्द्र शिखर सम्मान, भारत–भारती सम्मान, साधना–सम्मान, शिवपूजन सहाय सम्मान शामिल हैं। जब उन्हें साहित्य में उनके योगदान के लिए बिहार का सबसे सर्वश्रेष्ठ और प्रतिष्ठित 'राजेन्द्र शिखर सम्मान' दिया गया, तो उस अवसर पर उन्होंने बेबाकी से कहा,

"मैं आया नहीं हूँ, लाया गया हूँ, खिलौना देकर बहलाया गया हूँ।"

साल 2011 में 7 अप्रैल को मुज़फ्फ़रपुर में उनके निवास–स्थान 'निराला निकेतन' में उन्होंने अपनी आख़िरी सांस ली। जानकी वल्लभ के साथ ही छंदोबद्ध हिंदी कविता के युग का अंत हो गया और अब बस बाकी रह गई है तो उनकी विरासत, जिसका कोई सानी नहीं है।

जन्म

श्री जानकी वल्लभ शास्त्री का जन्म 5 फरवरी, 1916 में बिहार के मैगरा गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री रामानुग्रह शर्मा था। उनके पिता का देहांत जानकी वल्लभ के बचपन के समय में ही हो गया था। उन्हें पशुओं का पालन करना बहुत ही पसंद था। उनके यहाँ दर्जनों, गाय, सांड, बछड़े तथा बिल्ली और कुत्ते थें पशुओं से उन्हें इतना प्रेम था कि गाय क्या, बछड़ों को भी भेजते नहीं थे और उनके मरने पर उन्हें अपने आवास के परिसर में दफना देते थें उनका दाना पानी जुटाने में उनका परेशान रहना स्वाभाविक था क्योंकि उनके पास ज्यादा धन नहीं था। उनकी पत्नी का नाम छाया देवी है।

शिक्षा

जानकी वल्लभ शास्त्री ने11 वर्ष की आयु में ही 1927 में बिहार–उड़ीसा की सरकारी संस्कृत परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। 16 वर्ष की आयु में शास्त्री की उपाधि प्राप्त करने के बाद वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय चले गए। वे वहाँ 1932 से 1938 तक रहे। उनकी विधिवत् शिक्षा–दीक्षा तो संस्कृत में ही हुई थी, लेकिन अपनी मेहनत से उन्होंने अंग्रेज़ी और बांग्ला का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

करियर

छोटी उम्र में ही अपने पिता के देहांत के कारण वे आर्थिक समस्याओं से जूझ रहे थें आर्थिक समस्याओं के निवारण के लिए उन्होंने बीच–बीच में नौकरी भी की थी। 1936 में लाहौर में अध्यापन कार्य किया

1934–35 में इन्होंने साहित्याचार्य की उपाधि स्वर्णपदक के साथ अर्जित की और पूर्वबंग सारस्वत समाज ढाका के द्वारा साहित्यरत्न घोषित किए गए।

1937–38 में रायगढ़ (मध्य प्रदेश) में राजकवि भी रहे।

1940–41 में रायगढ़ छोड़कर मुजफ्फरपुर आने पर इन्होंने वेदांतशास्त्री और वेदांताचार्य की परीक्षाएँ बिहार भर में प्रथम स्थान प्राप्तकर पास की।

1944 से 1952 तक गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज में साहित्य–विभाग में प्राध्यापक तथा दोबारा अध्यक्ष रहे।

1953 से 1978 तक बिहार विश्वविद्यालय के रामदयालु सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर में हिन्दी के प्राध्यापक रहकर 1979–80 में अवकाश ग्रहण किया।

रचनाएँ

जानकी वल्लभ शास्त्री का पहला गीत 'किसने बांसुरी बजाई' काफी लोकप्रिय हुआ। प्रो. नलिन विमोचन शर्मा ने उन्हें जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी के बाद पाँचवां छायावादी कवि कहा है, लेकिन सच्चाई यह है कि वे भारतेंदु और श्रीधर पाठक द्वारा प्रवर्तित और विकसित उस स्वच्छंद धारा के आखिरी कवि थे, जो छायावादी अतिशय लाक्षणिकता और भावात्मक रहस्यात्मकता से मुक्त थी। शास्त्रीजी ने कहानियाँ, काव्य–नाटक, आत्मकथा, संस्मरण, उपन्यास और आलोचना भी लिखी है। उनका उपन्यास 'कालिदास' भी बहुत प्रसिद्ध हुआ था।

उन्होंने 16 साल की आयु में ही लिखना आरंभ किया था। उनकी पहली रचना 'गोविन्दगानम्' है जिसकी पदशय्या को कवि जयदेव से अबोध स्पर्द्धा की विपरिणति मानते हैं।। वे हिन्दी काव्यजगत् में छायावादी युग के कवि के रूप में प्रख्यात रहे हैं, किन्तु बचपन से ही उनकी प्रवृत्ति संस्कृत काव्यरचना में थी। 19 वर्ष की आयु में, 1935 में उनकी संस्कृत काव्य रचनाओं का प्रथम संकलन 'काकली' प्रकाशित हुआ था।

'रूप–अरूप' और 'तीन–तरंग' के गीतों के बाद 'कालन', 'अपर्णा', 'लीलाकमल' और 'बांसों का झुरमुट'– उनके चार कथा संग्रह प्रकाशित हुए। उनके द्वारा लिखित चार समीक्षात्मक ग्रंथ–'साहित्यदर्शन', 'चिंताधारा,' 'त्रयी', और 'प्राच्य साहित्य' हिन्दी में भावात्मक समीक्षा के सर्जनात्मक रूप के कारण समादृत हुए। 1945–50 तक इनके चार गीति काव्य प्रकाशित हुए–'शिप्रा', 'अवन्तिका',' मेघगीत' और 'संगम'। कथाकाव्य 'गाथा' का प्रकाशन सामाजिक दृष्टिकोण से क्रांतिकारी है। इन्होंने एक महाकाव्य 'राधा' की रचना की जो सन 1971 में प्रकाशित हुई।

'हंस बलाका' गद्य महाकाव्य की इनकी रचना हिन्दी जगत् की एक अमूल्य निधि है। छायावादोत्तर काल में प्रकाशित पत्र–साहित्य में व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलन के अंतर्गत शास्त्री द्वारा संपादित 'निराला के पत्र' (1971) उल्लेखनीय है। इनकी प्रमुख कृतियाँ संस्कृत में– 'काकली', 'बंदीमंदिरम्', 'लीलापद्मम्', हिन्दी में 'रूप–अरूप', 'कानन', 'अपर्णा', 'साहित्यदर्शन', 'गाथा', 'तीर–तरंग', 'शिप्रा', 'अवन्तिका', 'मेघगीत', 'चिंताधारा', 'प्राच्यसाहित्य', 'त्रयी', 'पाषाणी', 'तमसा', 'एक किरण सौ झाइयाँ', 'स्मृति के वातायन', 'मन की बात', 'हंस बलाका', 'राधा' आदि प्रमुख हैं। ये किशोरावस्था में ही, संस्कृत कवि के रूप में मान्यता एवं प्रसिद्धि पा चुके थे। 1931 से 1941 तक दस वर्षों के अपने रचनाकाल में, जानकीवल्लभ शास्त्री ने संस्कृत काव्यधारा के दिक्परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। काव्यवस्तु एवं काव्यशैली, भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही क्षेत्रों में, पारम्परिक संस्कृत काव्य में, युगान्तकारी परिवर्तन करते हुए शास्त्रीजी ने गीत एवं गजलों की रचना की। उन्होंने संस्कृत में कहानी, उपन्यास, नाटक एवं समीक्षात्मक निबन्धों की भी रचना की। उनके द्वारा लिखा गया 'श्रव्यकाव्यस्य क्रमिकोविकासः'

शीर्षकग्रंथ संस्कृत श्रव्यकाव्य की परम्परा पर प्रकाश डालने वाला एक उत्तम आलोचना ग्रन्थ है।

काव्यानुगुंजन

जानकीवल्लभ शास्त्री की रचनाएँ भाव और शिल्प के इन्द्रधनुषी रंगों को प्रस्तुत करती हैं। 'भारतीवसन्तगीतिः' में विधाता की उस अद्‌भुत सृष्टि प्रकृति का वर्णन है, जो चिरन्तनकाल से अपने सौन्दर्य, औदार्य और अगोचर रहस्यों से मानवमन को अनुप्राणित करती हुई साहित्यजगत् में अनन्त भावों की सृष्टि करती रही है। वसन्त ऋतु, इस निसर्ग का श्रृंगार करती हुई प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व को मधुमय बना देती है। कविवर जानकीवल्लभ को भी काव्यरचना की प्रेरणा देती है – यह मञ्जुल मधुर प्रकृति। मधुर रस के उपासक कवि जयदेव 'ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे' की पृष्ठ भूमि में जहाँ राधा–कृष्ण की ललित लीलाओं को चित्रित करते है, वहीं शास्त्रीजी की वाणी कवि–समुदाय को नवीन राग की सृष्टि का सन्देश देती है। एक ओर है – निसर्ग का मधुर सौन्दर्यलोक, तो दूसरी ओर है मानव–समाज का कठोर यथार्थ जगत्, जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थों, भौतिक समृद्धि और धनलिप्सा के कारण मानवीय संवेदनाएँ और जीवनमूल्य समाप्त हो रहे है। क्रौञ्च पक्षी के करुण क्रन्दन से द्रवित करुणविगलित कविहृदय का रसस्रोत शुष्क हो रहा है। रसस्रोत के साथ ही शुष्क हो रहा है आँखों का पानी – किन्तु स्वार्थ और यथार्थ के अंधकारमय धरातल पर भी कहीं है – आदर्श की सुनहरी किरण, सम्पूर्ण विश्व के लिए भारत का मैत्री संदेश, वैदिक संस्कृति का वह महान् संकल्प। 'हम समग्र विश्व को मित्र की आँखों से देखें – यही भाव अभिव्यक्त है, जानकीवल्लभ के गीत 'भारतम्' में – आकाश को छूने की, विकास के शिखर पर पहुँचने की अदम्य चाह, राष्ट्रप्रेम और जननी–जन्मभूमि के प्रति भक्तिभाव इस गीत का वैशिष्ट्य है – भारतीय दार्शनिक विचारधारा और आध्यात्मिक चिन्तन का प्रभाव जानकीवल्लभ शास्त्री की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'दीपकः' शीर्षक कविता में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। एक छोटा–सा दीपक प्रतीक है, उस अनन्त, परमज्योतिस्वरूप ब्रह्म का, जिसके हम सभी अंश हैं – दीपक के माध्यम से संसार की निःसारता एवं क्षणभंगुरता का प्रतिपादन करते हुए सुख–दुःख में अविचल रहने का उपदेश भी दिया गया हैं – अर्वाचीन संस्कृत के स्वनामधन्य कवि जानकीवल्लभ शास्त्री की कविता ललित, कमनीय पदावली का श्रेष्ठ निदर्शन है।

4. श्रीनिवास रथ

श्रीनिवास रथ (अपने दोस्तों, प्रशंसकों और छात्रों के लिए रथ साहिब के रूप में जाने जाते हैं) का जन्म 1933 में ओडिशा के पुरी में हुआ था। उन्होंने ग्वालियर, मध्य प्रदेश और वाराणसी के मुरैना शहर में पढ़ाई की। उनके पिता एक पारंपरिक संस्कृत पंडित थे और रथ साहिब ने उनके साथ व्याकरण और अन्य शास्त्र सीखें। पं. बलदेव उपाध्याय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में उनके पसंदीदा शिक्षक बने।

उन्होंने उज्जैन के माधव कॉलेज में संस्कृत के व्याख्याता के रूप में अपना करियर शुरू किया और उन्होंने कम उम्र में ही संस्कृत में कविता लिखना शुरू कर दिया था। उनका एकमात्र कविता संग्रह 'तदेव गगनं सैवधरा' (वही धरती, वही आकाश) 1995 में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। वह एक गीतकार थें उनकी कविता में भावनात्मक उत्साह और हमारे युग के विरोधाभासों एवं

द्वंद्वों पर गहरी पीड़ा और आधुनिक जीवन की दर्दनाक स्थितियों पर गहन विचारों की अभिव्यक्ति है।

अर्वाचीन संस्कृत के प्रगतिवादी कवियों में अग्रगण्य श्रीनिवास रथ का जन्म 1 नवम्बर 1933 को उड़ीसा के पावन तीर्थ जगन्नाथपुरी में संस्कृतमय परिवेश में हुआ था। उनके पिता संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने पारम्परिक पद्धति से संस्कृत का अध्ययन अपने पिता श्री से ही किया था। उन्हीं के प्रभाव से बाल्यावस्था से ही वे संस्कृत में श्लोक–रचना करने लगे थें श्रीनिवास रथ ने प्रारम्भिक शिक्षा मुरैना (म.प्र.) से तथा हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट स्तर की शिक्षा सहारनपुर (उ.प्र.) से प्राप्त की। उन्होंने विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर से बी.ए., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से एम.ए. (संस्कृत) तथा क्वीन्स कॉलेज बनारस से ''साहित्याचार्य' की परीक्षा उत्तीर्ण की। पारम्परिक शास्त्रीय ज्ञान एवं आधुनिक भावबोध, दोनों का मणि–काञ्चन योग उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। श्रीनिवास रथ का कर्ममय जीवन अध्यापकीय दायित्वों से प्रारम्भ हुआ। 1955 से 1957 तक सागर विश्वविद्यालय में, तत्पश्चात् माधव कॉलेज, उज्जैन एवं विक्रम विश्वविद्यालय में वे प्राध्यापक रहे। वे अनेक वर्षों तक कालिदास अकादमी, उज्जैन के निदेशक पद पर भी पदस्थ रहे। 1958 से उज्जैन में कालिदास समारोह 'अखिल भारतीय बहुआयामी सप्तदिवसीय समारोह' के रूप में आयोजित होना प्रारम्भ हुआ। श्रीनिवास रथ प्रथम आयोजन से ही कालिदास समारोह की केन्द्रीय धुरी के अंग बन गए। उन्होंने कालिदास समारोह के शोधपत्रों का सम्पादन किया, जो विक्रम विश्वविद्यालय की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'दी विक्रम' में प्रकाशित हुए। वे 1960 में 'कालिदास' नामक हिन्दी मासिक पत्रिका की परामर्शदात्री समिति के सदस्य बने। साठ के दशक में श्रीनिवास रथ रङ्गकर्म से जुड़े। कालिदास समारोह में प्रस्तुत सर्वप्रथम हिन्दी नामक हिन्दी मासिक पत्रिका की परामर्शदात्री समिति के सदस्य बने। कालिदास समारोह में प्रस्तुत सर्वप्रथम हिन्दी नाटक डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' के 'प्रकृतिपुरुष कालिदास' में संस्कृत श्लोकों का पाठ श्रीनिवास की आवाज में किया गया। शाकुन्तल के प्रसिद्ध श्लोक – 'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्' का पाठ जब करुणा मिश्रित आरोह–अवरोह के साथ हुआ, तब दर्शक रो पड़े थे। 'मृच्छकटिकम्' नाटक में उन्होंने चार पात्रों – चारुदत्त, शकार, आर्यक और सूत्रधार के लिए अपनी आवाज बदल–बदल कर वाचिक अभिनय किया था। प्रस्तुति इतनी प्रभावी थी कि उस नाटक को सर्वश्रेष्ठ अभिनय का 'स्वर्णकलश' प्राप्त हुआ था। अगले वर्ष प्रस्तुत 'मेघदूतम्' आवृत्ति–रूपक में उनकी आवाज का जादू सभी पर छाया रहा। श्रीनिवास रथ ने कुछ नाटकों का निर्देशन भी किया। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के बालसंस्करण में वे संगीतनिर्देशक रहे। भास के 'दूतवाक्यम्' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' का भी उन्होंने निर्देशन किया था। संस्कृत के आद्य नाटयकार भास पर उनका मौलिक चिन्तन है। संस्कृत की कई रचनाओं यथा भास के 'उरुभङ्ग' एवं 'कर्णभार', कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' 'विक्रमोर्वशीय', तथा 'मेघदूत' एवं विशाखादत्त के 'मुद्राराक्षस' का हिन्दी अनुवाद उन्होंने किया, जो स्वयं में मानक बन गये है। श्रीनिवास रथ की काव्य रचनाओं में 'पुरुषार्थसंहिता', 'नवा कविता', 'विपत्रिता', 'तदेव गगनं सैव धरा' आदि नवीन भावबोध को अभिव्यक्त करने वाली उत्तम रचनाएँ हैं। अपने 'बलदेवचरितमहाकाव्यम्' में उन्होंने एक व्यापक फलक को ग्रहण किया है। देववाणी के प्रति अपने अवदान के लिए श्रीनिवास रथ 'राष्ट्रपति सम्मान' से सम्मानित हुए हैं।

काव्यानुगुंजन

श्रीनिवास रथ अर्वाचीन संस्कृत के उन कवियों में प्रमुख है, जिनकी रचनाओं में उनका समय प्रतिध्वनित होता है। वे न केवल अपने समय के प्रति प्रतिबद्ध है, अपितु उसकी जड़ता और स्थितिवादी शक्तियों के विरूद्ध भी है। वे अपने समय की राजनैतिक विचार धाराओं से प्रभावित हुए, मजदूर आन्दोलनों से जुड़े तथा सर्वहारा वर्ग के संघर्ष और पीड़ा को उन्होंने अपनी रचनाओं में मुखर किया है, किन्तु वे दिशाहीन आन्दोलनों के विरूद्ध है। औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न सामाजिक विखण्डन, संवेदनहीनता, धनलोभ, मानव के एकाकीपन, संत्रास, नैतिक मूल्यों के पतन, दहेजहत्या आदि अपने समय की ज्वलन्त समस्याओं को कवि ने अपनी कविताओं में रेखांकित किया है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की चकाचौध में लोक मगंल के साधक ऋषिमुनियों द्वारा प्रदत्त पारम्परिक ज्ञान को खोने की पीड़ा भी उनकी रचनाओं में झलकती है। विश्व में बढ़ते हुए आतंकवाद और हिंसावृत्ति के प्रति गहन चिन्ता 'पुरुषार्थसंहिता' शीर्षक रचना में देखी जा सकती है – 'तदेवगगनं सैवधरा' शीर्षक रचना में जहाँ एक ओर परिवर्तन की आलोचना है, वहीं दूसरी ओर नवयुगोचित मनुजसंहिता का स्वागत भी है। श्रीनिवास रथ ने परम्परा से बिना कटे नई जीवन–स्थितियों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में समर्थ भाषा की रचना–की है। उन्होंने संस्कृत कविता को एक अछूता बिम्ब–विधान दिया है। उनकी 'नवा कविता' इसका सुन्दर उदाहरण है। संस्कृत गीत के क्षेत्र में उन्होंने एक नूतन शैली को जन्म दिया है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. आधुनिक काव्यकार अप्पाशास्त्री का जन्म कब हुआ था?
   (क) 2 नवम्बर 1873 में (ख) 23 अक्टूबर 1872 में
   (ग) 27 नवम्बर 1871 में (घ) 12 अक्टूबर 1870 में
2. पण्डितराज ने किस कवि को 'पण्डिता' की उपाधि से विभूषित किया?
   (क) क्षमाराव को (ख) अप्पाशास्त्री को
   (ग) जानकी वल्लभ शास्त्री को (घ) श्रीनिवास रथ को
3. जानकी वल्लभ शास्त्री को किस पुरस्कार से सम्मानित किया गया था?
   (क) राष्ट्रपति सम्मान (ख) भारत–भारती
   (ग) पद्म श्री (घ) साहित्यचन्द्रिका

3.3 रचनाएं– पंजरबद्धः शुकः, वल्लभविलापः, अंत्यजोद्धारः, मीराचरितं, भारतीवसंतगीतिः, भारतं, नवा कविता, पुरुषार्थ संहिता (व्याख्या एवं प्रश्न)

1. पंजरबद्धः शुकः (अप्पाशास्त्री राशिवडेकर)

प्रस्तुत कविता में कवि अप्पाशास्त्री राशिवडेकर ने पिंजड़े में बन्दी बनाए गए तोते के माध्यम से पराधीन भारत की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रव्यापी

संघर्ष के स्वर को मुखरित किया है। ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी नीतियों और औपनिवेशिक शासन के क्रूर दमनात्मक स्वरूप को भी इस कविता में व्यञ्जित किया गया है। 'पंजरबद्धः शुकः' परतंत्र भारत का प्रतीक है। कविता अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से कवि की गहन वेदना को व्यक्त करती है।

विहगराज चिराय निषेव्यतामनुपमो विभवोऽयमिह त्वया।

इति कुतूहलमात्रनियन्त्रितं कलयते किल मामकमन्तरम्।।1।।

अनुवाद– हे विहगराज! (पिंजड़े में बन्द रहकर) तुम लम्बे समय तक इस अनुपम वैभव का सुख कैसे ले सकते हो? इस कौतुहल से नियंत्रित अर्थात् बंधा हुआ मेरा मन व्याकुल होकर (तुम्हारी दयनीय दशा के विषय में) चिन्ता करता है।

सुनिपुणं तु मनस्यवतारिता स्थितिरियं तव तापयतेऽद्य नः।

परवशत्वमलप्रतिदूषिते प्रतिफलत्यपि सा तु न तेऽन्तरे।।2।।

अनुवाद– मन में भली–भाँति विचार करने पर तुम्हारी यह स्थिति आज हमें दुःख ही देती है किन्तु पराधीनता के मल से दूषित तुम्हारे अन्तःकरण पर इस दुःख का कोई प्रतिबिम्ब (प्रभाव) दिखाई नहीं देता।

निगडितो यमधिष्ठितवानसि प्रियपतङ्गम् काञ्चनपञ्जरम्।

किमधिरोक्ष्यति जातु स काननद्रुममनोरमकोटरतुल्यताम्।।3।।

अनुवाद– हे, प्रिय विहंग! जिस सोने के पिंजरे में जंजीरों से बँधे तुम विराजमान हो, वह क्या जंगल में वृक्ष के, मनोरम कोटर की समता कर सकता हैं?

पतंग कर्बुरयष्टिमधिष्ठतः किमपरान् विहगानवमन्यसे।

किमियमेष्यति जातु नवच्छदप्रविलसत्सुकुमारशिफातुलाम्।।4।।

अनुवाद– हे पतंग! कर्बुर यष्टि (बैठने की रंग–बिरंगी डंडी) पर बैठे हुए तुम दूसरे पक्षियों को छोटा क्यों मानते हो? (पिंजरे की यह डंडी) यह भला नये पत्तों से ढकी हुई सुशोभित और सुकुमार शिफा (डाल) की समानता कर सकती है?

त्वमपयास्यसि कीर नियन्त्रणां समनुभूय विषण्णमना इति।

तव निकृन्तति पक्षयुगं प्रभुर्मुहुरयं न तु मण्डयति वपुः।।5।।

अनुवाद– हे कीर (तोते)। कहीं नियंत्रण अर्थात् बन्धन के कष्ट का अनुभव कर दुःखी होकर तुम भाग न जाओ, इस (भय) से तुम्हारा स्वामी तुम्हारे दोनों पंख काटता रहता है, तुम्हारे शरीर की शोभा बढ़ाने के विचार से नहीं।

जठरतामुपयातवति त्वयि प्रियपतङ्गम् वक्तुमनीश्वरे।

विनिपतिष्यति या विपदङ्गं सा दहति चित्तमपीह नियन्त्रिता।।6।।

अनुवाद– हे प्रिय पतंग! जब तुम बूढ़े हो जाओगे और बोलने में भी समर्थ नहीं रहोगे, तब तुम्हारे ऊपर जो विपत्ति पड़ेगी, वह मेरे बन्युक्त चित्त को जला रही है।

सुमधुराणि शुकोत्तम् पाठयन्निह वचांसि भवन्तमयं प्रभुः।

परवशं निखिलं किल दुःखमित्यपि कदापि वचः समपाठयत्।।7।।

अनुवाद– हे शुकोत्तम! तुम्हारा स्वामी तुम्हे। सुमधुर वचन सिखाता है, पढ़ाता है, पर 'परतंत्रता सबसे बड़ा दुःख है' – क्या यह वचन कभी उसने तुम्हें पढ़ाया?

य इह बन्धुजनेन निषेव्यते सममसौ विभवो विभवो मतः।
यमिह सेवस एकल एव स प्रिय पतङ्गम् किं विभवो भवेत्।।8।।

अनुवाद– जिसका आनन्द अपने भाई–बन्धुओं के साथ लिया जाए, वही वैभव सचमुच का वैभव होता है। हे प्रिय पतंग! जिसका सेवन तुम अकेले करते रहते हो – यह वैभव भी क्या वैभव है?

किमथवा तव चिन्तनयाऽनया यदसि सर्वत एव नियन्त्रितः।
परवतां खगराज विचिन्तनां न सहते कुटिलो विधिरीदृशीम्।।9।।

अनुवाद– हे पक्षीराज! तुम यदि अपने सब ओर से नियन्त्रित होने को लेकर चिन्ता करो तब भी, तो क्या होगा? कुटिल भाग्य परतन्त्र लोगों की ऐसी चिन्ता को नही सहता।

भजसि यन्मनसः प्रतिकूलतां प्रतिपलं कलयत्यपि मानसम्।
तदिह चेत् सुखमित्यभिधीयते किमिह दुःखमिहास्तु बतापरम्।।10।।

अनुवाद– प्रतिक्षण मन में कलपते रहकर मन की अवस्था की उपेक्षा करना – यदि इसी को सुख कहते हो, तो फिर दुःख इसके अतिरिक्त और क्या होगा?

यदि रुषा यदि वाऽनवधानतः परिचरेन्न भवन्तमयं जनः।
त्वमनशनेन तदाङ्ग विनाकृतो गतिमुपेष्यसि कामिति चिन्तय।।11।।

अनुवाद– यदि रोष अथवा असावधानी के कारण तुम्हारा यह स्वामी तुम्हारी सेवा करना छोड़ दे, तो अनशन के कारण तुम्हारी क्या दशा होगी – यह भी तो चिंता करो।

उपगतेऽपि रिपौ परिरक्षणं खग न शक्ष्यसि कर्तुमिहात्मनः।
न च सभाजयितुं समुपस्थितं प्रणयशालिनमङ्गसुहृज्जनम्।।12।।

अनुवाद– यदि तुम्हारे समीप में शत्रु आ पहुँचे, तो तुम अपने को बचा नहीं सकते और प्रेम से भरा मित्र तुमसे मिलने आ जाए, तो उसका स्वागत नहीं कर सकते।

शुक सुवर्णमयस्तव पञ्जरो न खलु पञ्जर एष विभव्यताम्।
मुखमिदं ननु हेमशलाकिकारदनमालि मृतेरतिभीषण्म्।।13।।

अनुवाद– हे तोते! इस अपने सोने के पिंजरे को निश्चय ही पिंजरा मत समझो। यह तो सोने की सलाखों रूपी दाँतों वाला मृत्यु का अत्यंत भयानक मुख है।

हा धिक् कठोरजननी जरठा त्वदीया त्वां चिन्तयत्यनुदिनं परिहीयतेऽङ्गगैः।
अन्नं निषेव्य परदत्तमिदं पुनस्त्वं स्वप्नेऽपि न स्मरसि तां प्रमदैकमग्नः।।14।।

अनुवाद– हाय, धिक्कार है। तुम्हारी बहुत बूढ़ी माँ सदा तुम्हारे विषय में सोचती रहती है और दिन–प्रतिदिन अंगों से दुर्बल होती जा रही है और तुम दूसरे का दिया अन्न खाकर प्रमोद में डूबे स्वप्न में भी उसका स्मरण नहीं करते।

शावाः सुकोमलकलरवशालिनस्ते रोहन्ति न स्मृतिपथं खग जातु कच्चित्।
निर्वापणं नयनयोरवलोक्य येषां गात्रं नटत्यविरतं प्रमदेन चेतः।।15।।

अनुवाद– हे पक्षी! मधुर मीठा कूजन करने वाले अपने शिशुओं की याद तुम्हें नहीं आती? उनकी आँखों से झरते आँसू देखकर भी तुम्हारा चित्त सदा आनंद से ही थिरकता रहता है।

टिप्पणी

यस्यास्त्वमेष ननु जीवितमङ्ग सेयं कां कां दशामनुभवत्यधुना प्रिया ते।
एतत् कदाचिदिति चिन्तितवान् नु कच्चिद् भ्रातर्निमील्य नयने उदितस्मृतिस्त्वम्।।16।।

अनुवाद– जिसके तुम जीवनाधार हो, वह तुम्हारी प्रिया कैसी–कैसी दशा का अनुभव कर रही है? भाई, आँखें मूंदकर स्मृतियों को जगाकर क्या कभी तुमने भी यह सोचा है?

आकर्ण्य किं मम वचांस्यथ कीर चञ्चूं धुनोषि पञ्जरमिमं प्रतिभेत्तुकामः।
वैफल्यमेष्यति न केवलमेष यत्नो निर्मूलयेदपि तु चञ्चुमपि त्वदीयाम्।।17।।

अनुवाद– हे कीर (तोते)! मेरे वचन सुनकर चोंच क्यों हिला रहे हो? क्या इस पिंजरे को तोड़ देना चाहते हो? ऐसा तुम्हारा प्रयत्न न केवल विफल होगा, अपितु तुम्हारी चोंच भी टूट सकती है।

2. वल्लभविलापः (अप्पाशास्त्री राशिवडेकर)

भारतीय परम्परा में स्त्री एवं पुरुष एक–दसूरे के पूरक अर्द्धांग माने गये हैं। पति – पत्नी में से किसी एक की भी मृत्यु गृहस्थ–जीवन को अधूरा और गतिहीन बना देती है। 'वल्लभविलापः' पत्नी की मृत्यु पर कविहृदय की पीड़ा और शोक की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इस कविता पर रघुवंश के 'अजविलापः' की छाप परिलक्षित होती है। वस्तुतः आदिकाव्य 'रामायण' की सृष्टि भी करुणा या शोक से ही हुई है, जहाँ क्रौञ्च पक्षी के करुण विलाप से विगलित कवि का शोक ही श्लोक बन गया है। 'वल्लभविलापः' में करुण रस की मार्मिक व्यंजना हुई है।

प्रणयात् परिचिन्तितानिशं प्रणयं या स्म पुरानुपुष्यति।
गुणवत्यधुनाविरस्तु सा, हृदये नः प्रणयाधिदेवता।।1।।

अनुवाद– प्रेम के कारण जिसकी मैं सदा चिंता किया करता था, जो परिचय को सदा परिपुष्ट करती थी, वही प्रणय की अधिदेवी गुणवती (पत्नी) मेरे हृदय में अवतरित हों।

दयिते सखि जीवितेश्वरि, प्रियकान्ते गुणजालशालिनि!
सकृदप्युपगत्य विक्लवं ननु सम्भावय वल्लभं निजम्।।2।।

अनुवाद– हे प्रिय! जीवितेश्वरि! प्रिय कान्ते! अनेक गुणों से शोभित, एक बार आकर अपने इस व्याकुल प्रिय को संभालो।

अनुकूलतमा जहार यद् भवती मामकमन्तरं रहः।
स्मृतमप्यधुना तदङ्गगने समवस्कन्द्य निहन्ति मे मनः।।3।।

अनुवाद– एकान्त में सदैव मेरे अनुकूल रहकर तुमने मेरे मन को हर लिया, अब वह स्मृति भी मेरे मन को अभिभूत कर हृदय पर आघात करती है।

जन एष विनाकृतस्त्वया, न सखीन् रञ्जयते यथापुरम।
विकलः सखि माधवश्रिया, सहकारः किमु लोभयेन्मनः।।4।।

अनुवाद– तुम्हारे बिना यह व्यक्ति (मै) अपने मित्रों का मन पहले की भाँति नहीं बहला पाता। सखि! वसन्त की शोभा से बिछुड़ा आम का वृक्ष क्या मन को लुभा सकता है?

अथ चेद् वसुधातले न ते, वसती रोचत एवं भामिनि।
त्रिदिवेऽपि वसामुनानिशं, दयितेनैव समं दयावित।।5।।

अनुवाद– हे सुन्दर स्त्री! यदि इस पृथ्वी पर तुम्हें रहना अच्छा नहीं लगता, तो भले ही स्वर्ग में रहो, पर हे दयावति! अपने इस प्रिय को साथ लेकर ही रहों

सोऽयं जनोऽप्यनतिपातितकालमेव, सम्भावयेदवनताङिग दिवि स्वयं त्वाम्।
सञ्चिन्तितेषु विपुलेषु मनोरथेषु, पापो न चेद् वितनुयाद् विधिरन्तरायम्।।6।।

अनुवाद– हे अवनताङ्गि! यह व्यक्ति बिना समय नष्ट किए, स्वर्ग में आकर स्वयं तुमसे भेंट करता, यदि चिन्तन के साथ बढ़ते गये मनोरथों मे पापी विधाता बाधा उत्पन्न न करता।

3. अन्त्यजोद्धारः (पण्डिता क्षमाराव)

यह अंश पण्डिता क्षमारावतकृत 'सत्याग्रहगीता' के द्वितीय अध्याय से लिया गया है। पराधीन भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए चलाया गया महात्मा गांधी का स्वाधीनता आन्दोलन इस 'सत्याग्रह गीता' का मुख्य विषय है। महाभारत का अंश 'श्रीमद्भगवद्गीता'' इस भारत देश का पवित्रतम ग्रन्थ है, जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्षत्रिय धर्म के पालन और निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया है। यह अधर्म पर धर्म की विजय का सन्देश है। 'कर्मयोग' के महान आदर्श महात्मा गांधी का आन्दोलन भी स्वधर्म, स्वराष्ट्र और स्वतंत्रता के लिए है। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के पश्चात् गांधी जी अपने देश और देशवासियोंको निकट से जानने के लिए सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते है। इस यात्रा में वे दीन–दुखी–निर्धन अन्त्यजों की दयनीय अवस्था देखकर उनके प्रति समाज के भेद–भाव को समाप्त करने, उनके उद्धार एवं सामाजिक पुनर्जागरण का संकल्प लेते है। गांधीजी भारत राष्ट्र के लिए अस्पृश्यता को एक बहुत बड़ा अभिशाप मानते है। दक्षिण भारत की यात्रा के प्रसंग में घटित एक मार्मिक घटना का वर्णन, प्रस्तुत शीर्षक 'अन्त्यजोद्धारः' के अन्तर्गत किया गया है।

अटता दक्षिणे देशे यत्नेन परिपश्यता।
निर्जनो निर्जलो ग्रामः प्रतिपन्नो महात्मना।।1।।

अनुवाद– दक्षिण भारत में भ्रमण करते हुए यत्नपूर्वक (देशवासियों की स्थिति) देखते हुए महात्मा एक ऐसे गाँव में पहुँचें, जो उजाड़ था तथा जिसमें पानी भी नहीं था।

कस्मिंश्चिद्विजने देशे सोऽपश्यत्काञ्चिदन्त्यजाम्।
जीर्णाम्बरधरां दीनां कर्शिताङ्गीं मलीमसाम्।।2।।

अनुवाद– वहाँ एक निर्जन स्थान में उन्होंने पुराना फटा हुआ वस्त्र पहने, मैले और दुर्बल शरीर वाली एक अन्त्यज स्त्री को देखा।

अमङ्गलां च तां पश्यन्नुद्विग्नोऽभूद् दयाकुलः।
मालिन्यं ते कुतो भद्रे इति पप्रच्छ सादरम्।।3।।

टिप्पणी

अनुवाद– उसको अस्वच्छ देखकर दया से व्याकुल और उद्विग्न होकर गांधीजी ने आदर के साथ उससे पूछा – हे भद्रे! तुम ऐसी मलिन क्यों रहती हो?

अर्धनग्ना च साऽवादील्लज्जानतमुखी मुनिम्।

दीनानां दुःसहं कष्टं दुर्बोधं तात सुस्थितैः।।4।।

अनुवाद– लाज से मुख नीचा किये हुए अर्धनग्न उस स्त्री ने कहा – हे तात! दीन लोगों का दुःसह (न सहने योग्य) कष्ट अच्छी स्थिति वाले नहीं समझ सकते।

दशवर्षाण्यहोरात्रं धृतं वस्त्रमिदं मया।

जलाभावात्तु तन्नित्यं न शक्नोमि प्रमार्जितुम्।।5।।

अनुवाद– मै दस वर्षों से रात–दिन यही एक वस्त्र पहनती आ रही हूँ। पानी की कमी से मैं उसे नित्य धो भी नहीं सकती हूँ।

यदृच्छया जले प्राप्ते वस्त्रस्यार्धं प्रमार्जये।

शुष्केण वेष्टिता तेन शिष्टमर्धं च धावये।।6।।

अनुवाद– किसी तरह पानी मिलने पर इस वस्त्र का आधा हिस्सा धो लेती हूँ। आधे सूखे हिस्से से अपने को लपेटकर उस आधे हिस्से को धोती हूँ।

न शक्यं तज्जलाभावान्मार्जितुं च पुनः पुनः।

एकवस्त्रा कथं तात विमला स्यामहं बत।।7।।

अनुवाद– पानी की कमी होने से उसे मैं बार–बार भी नही धो सकती। हे तात! इस एक वस्त्र को धारण किए हुए में कैसे साफ रह सकती हूँ?

मद्वदर्धपरिच्छन्नं जनानां सन्ति कोटयः।

एकाहाराश्च कृच्छ्रेण धारयन्तो निजानसून्।।8।।

अनुवाद– मेरे जैसे निर्धन तो करोड़ो लोग हैं, जो एक समय भोजन करते है और बड़ी कठिनाई से प्राण धारण करते है।

अन्त्यजाया वचः श्रुत्वा करुणं करुणामयः।

अपनीय निजस्कन्धादुत्तरीयं ददौ मुनिः।।9।।

अनुवाद– उस अन्त्यजा के करुण वचन सुनकर करुणामय मुनि (गांधी जी) ने अपने कंधे से उत्तरीय वस्त्र उतार कर उसे दे दिया।

अथ तां विस्मितां नारीं कृपालुर्गान्धिरब्रवीत्।

कुरु भद्रे सदा सूत्रं हितं ते कर्तने ध्रुवम्।।10।।

अनुवाद– उस स्त्री को आश्चर्ययुक्त देखकर कृपालु गांधी ने कहा – हे बहन! तुम सूत काता करो। सूत कातने से निश्चय ही तुम्हारा हित होगा।

ध्यायं ध्यायं दशां दीनां बन्धूनां दुःखितोऽभवत्।

तदुद्धारमनुध्यायन् विनिद्रोऽगमयन्निशाम्।।11।।

अनुवाद– अपने बन्धुओं (देशवासियों) की दीन दशा को देख–देखकर वे अत्यंत दुःखी हो गये और उनके उद्धार के विषय में सोचते हुए बिना सोये उन्होनें रात बितायी।

यावन्न वेष्टिताः सर्वे बन्धवो मे यथोचितम्।
स्थास्यामि स्वल्पवेशोऽहमिति तेन धृतं व्रतम्।।12।।

अनुवाद– जब तक मेरे (देश के) सारे बन्धुओं के पास पहनने को पर्याप्त वस्त्र नहीं होंगें, तब तक मैं बहुत कम वस्त्र पहनकर रहूँगा – ऐसा उन्होंने (तब से) व्रत धारण कर लिया।

नग्नस्कन्धस्ततः पश्चादाजानुपटवेष्टितः।
जनहास्यमनाहत्य त्यक्तभोगी जितेन्द्रियः।।13।।
नगरान्नगरं गच्छन् शीतोष्णसमवासितः।
दुर्दैवं ग्राम्यलोकानां पौरेभ्यः स न्यवेदयत्।।14।।

अनुवाद– उसके बाद नग्न स्कन्ध वाले, घुटनों तक वस्त्र से लिपटे हुए, भोगों का त्याग कर चुके जितेन्द्रिय महात्मा, लोगों की हँसी की परवाह न करके शीत और ग्रीष्म में एक जैसे ही वस्त्र पहने हुए एक नगर से दूसरे नगर चलते–चलते नागरिकों को गाँव के लोगों के दुर्भाग्य के विषय में बताते थे।

लुप्तधर्मैः किलास्माभिरस्पृश्या इति दूषिताः।
निष्कासिताश्च संसर्गादन्त्यजा भयकम्पिताः।।15।।

अनुवाद– (वे कहते हैं कि) धर्म का लोप कर चुके हम लोगों ने (अपने ही भाइयों को) 'अछूत' कहकर दूषित बना रखा है, अपने संसर्ग से बहिष्कृत कर दिया है और वे अन्त्यज हमारे डर से काँपते रहते हैं।

अथ चित्रं किमत्र स्याद्यदि वोरादयः परे।
अस्मानप्यवमन्येरन्नन्त्यजैः सदृशानिव।।16।।

अनुवाद– तब दूसरी जाति के अंग्रेज लोग यदि हमें अन्त्यज समान समझ कर हमारा अपमान करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

अधर्मस्य फलं नूनं दत्तं दैवाज्ञया हि नः।
तस्मादेवं वयं च स्मो धिक्कृता राष्ट्रीयान्त्यजाः।।17।।

अनुवाद– विधाता की आज्ञा से हमें अपने अधर्म का फल निश्चय ही दे दिया गया। हम इसीलिए अपमानित है और अपने ही राष्ट्र में अन्त्यज बन गए हैं।

अहो दशा दुरन्तेयं नोपेक्ष्या मानुषात्मभिः।
बहिष्कारोऽन्त्यजानां हि भारतस्यैव लाञ्छनम्।।18।।

अनुवाद– अपने को मनुष्य समझने वालों को इस दशा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अन्त्यजों का बहिष्कार करना भारत का ही कलङ्क है।

शूद्रो वा ब्राह्मणो वापि क्षत्रियो वा कृषीबलः।
देवदृष्टया समा सर्वे विकृतिस्तु नरोद्भवा।।19।।

अनुवाद– चाहे शूद्र हो या ब्राह्मण, क्षत्रिय हो या किसान, ईश्वर की दृष्टि में सभी एक समान है। (ऊँच–नीच का) विकार तो मनुष्य का बनाया हुआ है।

भेदः कृतो मनुष्येण न धात्रा समदर्शिना।
शीलं चिह्नं सुजातस्य न जातिर्न च जीविका।।20।।

अनुवाद– (ऊँच–नीच का) भेद मनुष्य के द्वारा बनाया गया है, समदर्शी विधाता के द्वारा नहीं। सुजात मनुष्य का चिन्ह शील है, जाति या आजीविका नहीं।

अतोऽन्त्यजानवज्ञातुं नाधिकारोऽस्ति कस्यचित्।
अमी मलिनकर्मार्हा इत्युक्तिर्ननु किल्विषम्।।21।।

अनुवाद– इसलिए अन्त्यजों का निरादर करने का अधिकार किसी को नहीं है। ये लोग तो मलिन कर्म करने के ही योग्य है – ऐसा कहना भी पाप है।

अतस्तेषां समुद्धारो धर्मो गुरुतमो हि नः।
तदेव साधनं शक्यं देशस्योद्धारसिद्धये।।22।।

अनुवाद– इसलिए इन लोगों का भली–भाँति उद्धार करना (अब) हमारा सबसे बड़ा धर्म है। देश के उद्धार की सिद्धि के लिए यही उपयुक्त साधन है।

दुराग्रहमिमं तस्मादुत्सृज्य कृतनिश्चयाः।
हीनानां हितकाम्यार्थं प्रयस्यामो दिवानिशम्।।23।।

अनुवाद– इसलिए हम (अन्त्यजों को हीन समझने के इस) दुराग्रह का त्याग कर दृढ़ निश्चय के साथ इन अन्त्यज लोगों के हित की कामना से रात–दिन प्रयास करेंगे।

विद्यालये मन्दिरे च निषिद्धांस्तानतः परम्।
निश्शङ्कं स्वीकरिष्यामो निष्कारणबहिष्कृतान्।।24।।

अनुवाद– विद्यालय और मंदिर में जाने से रोके गये तथा बिना कारण बहिष्कार किए गए इन लोगों को हम अब से बिना किसी शंका के स्वीकार करेंगे।

4. भारतीवसन्तगीतिः (जानकीवल्लभ शास्त्री)

भारतदेश में, वसन्त ऋतु के मधुमय सौन्दर्य से उल्लसित कवि हृदय की नवीन गीति है – भरतीवसन्तगीतिः। भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जिसकी धरती को प्रकृति ने षड़ऋतुओं के बहुवर्णी सौन्दर्य से मण्डित किया है। ऋतुओं का प्रथम वर्णन विश्व के आद्यतम साहित्य ऋग्वेद के पुरुषसूक्त (10/90/6) में प्राप्त होता है, जहाँ सृष्टि–यज्ञ में वसन्त को 'घृत', ग्रीष्म को 'समिधा' और शरद् को 'हवि' कहा गया है। ऋतुओं में श्रेष्ठ है वसन्त ऋतु। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं को 'ऋतूनां कुसुमाकरः' (10/35) कहते हुए वसन्त की महिमा को प्रतिपादित किया है। प्रकृति और वनस्पति जगत् को नवपल्लव, पुष्प, रस और मधु से परिपूर्ण करती हुई यह ऋतु मानव–मन की वीणा को भी नवीन राग छेड़ने के लिए आकुल कर देती है।

निनादय नवीनामये वाणि! वीणाम्
मृदुं गायं गीतिं ललित–नीति–लीनाम्

अनुवाद– हे वाणी (सरस्वती)! अब नवीन वीणा को गुंजायमान करो। ललितनीति में लीन कोमल गीति का गान करो।

मधुरमञ्जरीपिञ्जरीभूतमालाः, वसन्ते लसन्तीह सरसा रसालाः

कलापाः ललितकोकिलाकाकलीनाम, निनादय नवीनामये वाणि! वीणाम्।

अनुवाद– मधुर मञ्जरियों से लालिमायुक्त पीली हो गई हैं पाँतें जिनकी, ऐसे सरस आम के वृक्ष वसन्त में उल्लसित हो रहे हैं, कोकिल की मधुर ध्वनि के कलाप भी अच्छे लग रहे हैं।

वहति मन्दमन्दं सनीरे समीरे, कलिन्दात्मजायास्सवानीरतीरे,

नतां पंक्तिमालोक्य मधुमाधवीनाम्, निनादय नवीनामये वाणि! वीणाम्।

अनुवाद– यमुना के वानीर (एक प्रकार का बेंत) से भरे तीर पर जल भरा समीर धीरे–धीरे बह रहा है। मधु माधवी की (फूलों से लद जाने से झुकी) पंक्ति देखकर, हे वाणी, नवीन वीणा को गुंजायमान करो।

ललितपल्लवे पादपे पुष्पपुञ्जे, मलयमारुतोञ्चुम्बिते मञ्जुकुञ्जे,

स्वनन्तीन्ततिम्प्रेक्ष्य मलिनामलीनाम्, निनादय नवीनामये वाणि! वीणाम्।

अनुवाद– ललित पुष्पों वाले पुष्प के पुञ्ज से युक्त वृक्ष पर मलयमारुत से चुम्बित सुन्दर कुञ्ज में काले भ्रमरों की गुञ्जार वाली कतार को देखकर हे वाणी, नवीन वाणी स्वरमुक्त करो।

लतानां नितान्तं सुमं शान्तिशीलम, चलेदुच्छलेत्कान्तसलिलं सलीलम्।

तवाकर्ण्य वीणामदीनां नदीनाम्, निनादय नवीनामये वाणि! वीणाम्।

अनुवाद– तुम्हारी अदीन वाणी सुनकर लताओं के नितान्त शान्त पुष्प हिल उठें, नदियों का लीला के साथ बहता हुआ जल उच्छलित हो उठे। हे वाणी! नवीन वीणा निनांदित करो।

5. भारतम् (जानकीवल्लभ शास्त्री)

प्राचीनकाल में 'विश्वगुरू' के पद पर प्रतिष्ठित भारत देश आज भी अपने आध्यात्मिक ज्ञान, निष्काम कर्मयोग, अहिंसा, परोपकारिता, विश्वमंगल की भावना आदि गुणों के कारण विश्व–समाज का पथ–प्रदर्शक बन सकता है। राष्ट्र–प्रेम और राष्ट्र–गौरव का भाव प्रस्तुत कविता का मुख्य विषय है।

निःस्वं निरात्म विश्वमिदं पाति भारतम्।

मैत्रीस्पृशा दृशास्ति जिताराति भारतम्।

अनुवाद– स्वत्वरहित, आत्महीन इस विश्व को भारत बचाता है। मित्रता का स्पर्श करने वाली दृष्टि से शत्रुओं को जीतने वाला भारत है।

आधाय धवलधारमुरसि तारहारवत, गंगातरंगमंगशिवं भाति भारतम्।

अनुवाद– उज्ज्वल स्थूल (तार) मुक्ताओं से रचित हार के समान गंगा की धवल शुभ्र धारा को अपने वक्षःस्थल पर धारण करता हुआ यह भारतदेश गंगा की तरंगों से शोभित शिव की भाँति प्रतीत होता है।

पुष्पं न यद् विकासमितं गन्धवद् भुवि, तस्मै स्पृहां प्रदर्श्य नभो भाति भारतम्।

अनुवाद– जिसका विकास सीमित नहीं है, ऐसे सुगन्धित पुष्प के लिए इच्छा दिखाकर भारत आकाश को छू रहा है।

दूर्वापि चन्दनायते काशोऽपि कुशसमः, उच्चावचं परीक्ष्य पुरो याति भारतम्।

अनुवाद– यहाँ दूर्वा (दूब) भी चन्दन बन जाती है, काश भी कुश के समान हो जाता है। भारत ऊँच–नीच की परीक्षा करके आगे बढ़ रहा है।

विज्ञानमानदृप्तमतृप्तं सृतं जगत, जीवातुमखिलतर्पणं प्रददाति भारतम्।

अनुवाद– यह जगत् विज्ञान के अभिमान से दृप्त (गर्वित) है, अतृप्त है तथा कही भी दौड़ रहा है। इसे जीने के लिए सम्पूर्ण तृप्ति भारत ही दे रहा है।

अग्रेसरं मनो निधाय न्यस्यते पदम्, जागर्ति जनः प्रेक्षते, प्रीणाति भारतम्।

अनुवाद– मन एकाग्र करके भारत आगे की ओर कदम बढ़ा रहा है। लोग जाग रहे हैं, देख रहे हैं। भारत प्रसन्न हो रहा है।

6. नवा कविता (श्रीनिवास रथ)

'नवा कविता' नामक गीत में अर्वाचीन युग के सुप्रसिद्ध कवि श्रीनिवास रथ ने नवीन कविता की नूतन प्रवृत्ति को अधुनातन पत्र को बिम्ब–विधानों के साथ प्रस्तुत किया है।'एब्सट्रैक्ट पेंटिंग' की भाँति नवीन कविता में अमूर्तता अधिक है, जिसका रसास्वाद एवं भाव–बोध बहुत–कुछ सहृदय की ग्रहणक्षमता पर निर्भर है। नाम–रूप और सम्बोधन से रहित 'नवा कविता' को जन्म देता है प्रिय का जननान्तर सौहृद अर्थात् जन्म–जन्मान्तर का चिरन्तन प्रणयभाव, जो शब्दों से वाचाल न होकर, मौन के द्वारा ही स्वयं को मुखर बनाता है। कविहृदय को विगलित करने वाले 'शोक' के समान ही 'रति' नामक स्थायी भाव भी कविसृष्टि की प्रेरणा है। प्रस्तुत कविता में सरल–ललित–माधुर्य गुणपूर्वक कोमलकान्त पदावली में श्रृंगार रस की पृष्ठभूमि में नवा कविता की रचना हुई है। व्यञ्जनावृत्ति एवं व्यंग्यार्थ या ध्वनि की प्रधानता होने के कारण यह कविता उत्तम काव्य का श्रेष्ठ निदर्शन है।

तव नयनाकलिता, नाम–रूप–सम्बोधन–रहिता, भवति नवा कविता।

अनुवाद– तुम्हारे नयनों से आकलित, नाम–रूप व संबोधन से रहित नवीन कविता जन्म लेती है।

राशीभूतविशदहिमधवले, क्षीरसागरे सुतरां विमले।
शेषशायितनुलेखाललिता, विलसति कनीनिका सन्तुलिता।।
पवनविधूतबलाहकतरले, नभसि कौमुदीशकलकोमले।
अधरसंयता नयनविगलिता, कीलितहासकलानुविम्बिता।।
तव नयनाकलिता, नाम–रूप–सम्बोधन–रहिता, भवति नवा कविता।

अनुवाद– राशि–राशि एकत्र हुई स्वच्छ बर्फ के समान धवल, अत्यंत निर्मल क्षीरसागर के बीच शेषशायी (शेषनाग शैया पर शयन करने वाले) विष्णु के ललित देह की लेखा के समान, तुम्हारे नेत्र के भीतर कनीनिका (काली पुतली) विकसित हो रही है। चाँदनी के टुकड़ों के जैसे कोमल तथा हवा से तितर–बितर किये जाते बादलों के कारण चचंल आकाश जैसे मुख पर अधर से रोकी गयी तथा नयन से फूटती रुद्ध हास की कला से अनुबिम्बित नवकविता जन्म लेती है।

तारालतितनभोमहिमानं, कुरुते रजनी प्रकाशमानम्।
अपरिचिते परिचयसीमानं, स्पृशति दूरतो यथानुमानम्।।

विद्युल्लता कुसुमसंकाशं, स्फुरति नयनयोर्महदाकाशम्।
भावमञ्जरीसुरभिसन्नता, नयनजलधिलहरीषु कम्पिता।।
तव नयनाकलिता, नाम–रूप–सम्बोधन–रहिता, भवति नवा कविता।

अनुवाद– तारों के द्वारा ललित नभ की महिमा को रात्रि प्रकाशमय बना रही है, जिस प्रकार अनुमान दूर से ही अपरिचित व्यक्ति के विषय में परिचय की सीमा को छूता है। विद्युत् लता में खिले पुष्प की तरह नयनों में विशाल आकाश खिल उठा है। सुरभि से झुक आयी भावमंजरी, जो नयनों के सागर की लहरों में काँप उठी, तुम्हारे नयनों से आकलित, नाम–रूप–सम्बोधन से रहित नव कविता बन जाती है।

पदार्थरहिता मौनमुखरता, मनसि नभसि भूमौ समाहिता।
रोमकूपकुहरेष्वाकुलता, पिपीलिकासञ्चरणोपमिता।।
कल्पोदय–कल्पान्त–वलयिता, सोपानाली समुन्मीलिता।
जन्मजान्तरपरिचयोदारता, मुकुलितनयनलेखयाधिगता।।
तव नयनाकलिता, नाम–रूप–सम्बोधन–रहिता, भवति नवा कविता।

अनुवाद– पदार्थ (पद या वाक्य में प्रयुक्त शब्द के अर्थ) से रहित मौन की मुखरता मन में, नभ में और भूमि में समाहित हो गयी है। रोमकूपों के छिद्रों में आकुलता चीटियों के रेंगने की तरह उठती है। सृष्टि के आरम्भ और सृष्टि के अंत दोनों को समेट कर सोपान–पंक्ति उन्मीलित हुई, अर्धमुद्रित नयनों की लेखा से अन्य जन्मों के परिचय की, जो उदारता जान ली गयी है, वह नव कविता बन रही है।

7. पुरुषार्थ संहिता (श्रीनिवास रथ)

आधुनिक गीतिकवि श्रीनिवास रथ के **'तदेव गगनं सैव धरा'** कविता संग्रह में पुरुषार्थ संहिता उल्लेखनीय है। आकाश और पृथ्वी पूर्ववत् अपरिवर्तित है, परंतु प्रतिदिन जीवन की गति परिवर्तित होती रहती है। इसी बात को कवि ने अपनी मात्रागीतिबद्धछंदों में सजाया है, जो इस प्रकार है –

जीवनम गतिमनुदिनमपरा, तदेव गगनं सैव धरा
पाप – पुण्य विधुरा धरणियम् कर्मफलं भवतादरणीयम्।।

आकाश और पृथ्वी पूर्ववत् अपरिवर्तित है, परन्तु प्रतिदिन जीवन की गति परिवर्तित होती रहती है। पाप और पुण्य की श्रेष्ठता को विद्वान् लोग जानकर उसी प्रकार आचरण करते हैं, क्योंकि वे ज्ञानी लोग कर्मफल के शास्वत सत्य को पहचानते हैं।

नैतद् चचोधूना रमणियम् तथापि सद्सद विवेचनीयं।
मतिरतिविकला, सीदति विफला,
सकला परम्परा, तदैव गगनं सैव धरा।।

कवि का कथन है कि इस नश्वर संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो सदैव रमणीय बना रहेगा अपितु सत्य अचल है। बुद्धि, कामनाएँ ये सब विकल करने वाली है अर्थात् विचलित करने वाली है, यह परम्परा से नित–नव परिवर्तित होने वाली है। किन्तु आकाश और पृथ्वी पूर्ववत् अपरिवर्तित है।

आधुनिक समाज में कलुषित जीवन की दुर्गति को लक्ष्य करके कवि ने दुखी होकर कहा है कि जीवन–लता और काँटों भरी हो गयी है, फिर फूल की बात तो दूर ही है। कवि श्रीरथ की अभिव्यक्ति में

विपत्रितेयं जीवनलतिका,

केवल–कुटिल–कंटकाकलिता, दुरे कुसमा कथा।।

इस विपत्ति के समय यह जीवन रूपी लतिका (सुन्दर बैल) काँटों से भरी हो गयी है, और मुरझा गयी है। और जीवन रूपी इस बेल पर केवल दुःख रूपी कांटें की कांटें है, सुख रूपी पुष्प तो मात्र कल्पना रह गए है।

युगानुरूपोपाय चिंतने/भवति सर्वदा हृदय – मनमंथनम्।

युग के अनुरूप चिंतन होते रहते हैं और सदैव हृदय मन – मंथन करता रहता है–

न केवलं कैकयी वचनाज्जगाम रामो वृथा वा वनं।

समय रक्षणं शिलापी कुरुते, रामायणें यथा।।

जिस प्रकार राम के वनागमन का दोष केवल कैकयी मात्र पर नहीं दिया जा सकता, अपितु यह राम का प्रारब्ध ही था। कैकयी तो निमित्त थी। जेसा कि रामायण में भी कहा गया है कि ''समय ही सभी का रक्षक है और वही बलवान है''।

अपनी प्रगति जांचिए

4. पञ्जरबद्धः शुकः किस आधुनिक कवि की रचना है?
   (क) अप्पाशास्त्री राशिवडेकर (ख) श्री निवास रथ
   (ग) पण्डिता क्षमाराव (घ) जानकी वल्लभ शास्त्री
5. भारतीवसन्तगीतिः रचना में किस ऋतु के सौंदर्य का वर्णन किया गया है?
   (क) ग्रीष्म ऋतु (ख) शरद ऋतु
   (ग) वसंत ऋतु (घ) वर्षा ऋतु
6. 'नवा कविता' किस कवि की रचना है?
   (क) श्री निवास शास्त्री (ख) श्री निवास रथ
   (ग) अप्पाशास्त्री (घ) जानकी वल्लभ शास्त्री

3.4 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (क)
3. (ख)
4. (क)

5. (ग)
6. (ख)

टिप्पणी

3.5 सारांश

इन नवस्पन्दन कवियों की रचनाओं एवं जीवन परिचय से निर्विवादित रूप से यह स्पष्ट होता है कि नवयुग में भी संस्कृत भाषा एवं संस्कृत साहित्य का निर्बाधित विकास हो रहा है। इन नव कवियों की कविताओं को पढ़कर आपने पाया कि अप्पाशास्त्री एव क्षमाराव की काव्य रचनाएं राष्ट्र के नवजागरण और नव युग की अनुभूतियों से अनुप्राणित और स्फूर्त हैं। संगीतात्मकता और लय उनकी कविताओं में कूट कूट कर भरी है। श्रीनिवास रथ ने संस्कृत कविता को नया भाव बोध और अछूत बिम्बविधान दिया है। उनकी कविता कवि के गहरे आत्मसंघर्ष और युगबोध से उपजी है। उन्होंने अपने समय की विषमता, विडंबना और यंत्रणा को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है तथा संस्कृत गीत के क्षेत्र में अपनी निजी शैली प्रस्तुत की है।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **परवंश** : पराधीनता।
- **तापयते** : कष्ट देती है।
- **काञ्चन्** : सोना (स्वर्ण)।
- **पञ्जरम्** : पिंजरा।
- **यष्टि** : शाखा।
- **शिफा** : डाली।
- **कीर** : तोता।
- **अपाठयत्** : पढ़ाया।
- **पुष्यति** : परिपुष्ट।
- **उपगत्य** : समीप आकर।
- **अटता** : भ्रमण करते हुए।
- **यदृच्छया** : इच्छा अनुसार।
- **धृतम्** : धारण करना।
- **धिक्कृता** : अपमानित।
- **किल्विषम्** : पाप।
- **दुराग्रह** : अनुचित आचरण।

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अप्पाशास्त्री का परिचय संक्षिप्त रूप में दीजिए?
2. पण्डिता क्षमाराव के जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए?
3. जानकी वल्लभ शास्त्री की रचनाओं के विषय में संक्षेप में बताइए?
4. श्रीनिवास रथ की रचनाओं की विषय–वस्तु को संक्षेप में प्रतिपादित कीजिए?
5. पञ्जरबद्धः शुकः के विषय में संक्षिप्त रूप में बताइए?
6. पण्डिता क्षमाराव की रचनाओं में प्रतिपादित विषय पर संक्षेप में प्रकाश डालिए?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. श्री जानकी वल्लभ का जीवन परिचय लिखिए।
2. श्रीनिवास रथ की रचनाओं में प्रमुखता से किस वेदना की झलक परिलक्षित होती है।
3. श्रीनिवास रथ का व्यक्तित्व एवं कृतित्व लिखिए।
4. श्री अप्पादीक्षित राशिवाडेकर का जीवन वृत्तान्त लिखिए।
5. आधुनिक साहित्य का कालक्रम वर्णित कीजिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. नवस्पन्दः – संपादक डॉ राधा वल्लभ त्रिपाठी
2. अर्थगौरवम् – संपादक डॉ रहसबिहारी द्विवेदी
3. छन्दालोक सौरभम् – डॉ राजेन्द्र मिश्र

इकाई 4 संस्कृत काव्य–विधाओं का परिचयः (महाकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य)

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 महाकाव्य
4.3 गीतिकाव्य
4.4 गद्यकाव्य
4.5 कथासाहित्य
4.6 चम्पूकाव्य
4.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.8 सारांश
4.9 मुख्य शब्दावली
4.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

'काव्य' शब्द संस्कृत भाषा में बहुत ही प्राचीन है, जिसे 'कवि के कर्म' के रूप में जाना जाता है-'कवेः कर्म काव्यम्'। शब्दों के द्वारा किसी विषय का चित्रण करना काव्य कहलाता है। इस साहित्य-विधा का उद्भव वैदिक सूक्तों से ही प्राप्त होता है। वाल्मीकि से लेकर कालिदास की रचना तक आते-आते काव्य-विधा को कई शताब्दियाँ लगीं। संस्कृत भाषा में महाकाव्यों के नाम से अनेक रचनाएँ निर्मित हो चुकी थीं। कथानक की दृष्टि से महाकाव्य किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना पर आधारित होते हैं। रामायण और महाभारत जैसे काव्य-ग्रंथों को आधार बनाकर भी अनेक महाकाव्यों की रचना की गई।

कालिदास का 'रघुवंश' महाकाव्य रामायण पर आधारित है, 'किरातार्जुनीयम्' तथा 'शिशुपालवधम्' महाभारत की घटनाओं पर आश्रित हैं। संस्कृत साहित्य में अनेक प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, जैसे- रघुवंशम्, कुमारसंभवम्, अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरनन्द इत्यादि। संस्कृत काव्य ग्रन्थों की एक और विधा है- गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य। इसमें कवि अपने अन्तरङ्ग में विद्यमान कोमल भावों में से किसी एक भाव को केंद्र में रखकर कल्पना शक्ति के माध्यम से उसे गेय (गान) रूप में प्रकट करता है, उसको गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य कहा जाता है। इसमें जीवन के किसी एक ही मार्मिक पक्ष का निरूपण होता है। गीतिकाव्य के दो भेद होते हैं-(1) शृंङ्गारमूलक तथा (2) भक्तिमूलक। कालिदास द्वारा रचित 'ऋतुसंहार' तथा 'मेघदूत' प्रसिद्ध गीतिकाव्य हैं। 'गाथासप्तशती' प्राकृत गीतिकाव्य है, जयदेव का गीतगोविन्द, भर्तृहरि के तीनों शतक भी गीतिकाव्य की श्रेणी में आते हैं।

काव्य-ग्रन्थों की एक विधा गद्यकाव्य भी है। 'गद्य' से अभिप्राय है-मानव की अभिव्यक्ति की मौलिक प्रक्रिया। मानव की स्वाभाविक भाषा का स्वरूप गद्यात्मक होता है। साहित्यिक रूप में गद्य का विकास दण्डी, सुबन्धु तथा बाण की रचनाओं में प्राप्त होता है। संस्कृत गद्यकाव्य के मुख्य रूप से दो भेद माने गए हैं- कथा और आख्यायिका। कथा में कथावस्तु कविकल्पित होती है, जबकि आख्यायिका में ऐतिहासिक होती है।

दण्डी की रचना 'दशकुमारचरितम्' गद्यकाव्य है। सुबन्धु की रचना 'वासवदत्ता' तथा बाणभट्ट द्वारा रचित ग्रन्थ 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' भी अत्यन्त प्रसिद्ध गद्यकाव्य हैं। गद्यकाव्य के अन्य कुछ लेखकों का भी संस्कृत साहित्य में परिचय प्राप्त होता है, जैसे- धनपाल की तिलकमञ्जरी, वादीभसिंह की रचना गद्यचिन्तामणि और मेरुतुङ्गाचार्य की रचना प्रबन्धचिन्तामणि इत्यादि।

संस्कृत भाषा में कथा-साहित्य का विकास दो प्रकार से हुआ है- लोककथा और नीतिकथा। लोककथा से अभिप्राय है- जो कथाएं शुद्ध मनोरंजन के लिए होती हैं। जो कथाएं लोगों को नैतिक-धार्मिक उपदेश देने के लिए विकसित होती हैं, वे नीतिकथाएं कहलाती हैं। वैदिक साहित्य में भी कथा के बीज प्राप्त होते हैं, जैसे- पुरुरवा-उर्वशी संवाद और सरमा-पणि संवाद आदि। गुणाढ्य द्वारा रचित बृहत्कथा में लोककथाओं का प्राचीनतम संग्रह किया गया है। यह पैशाची प्राकृत में लिखी गई है। बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर, वेतालपञ्च-विंशति और शुकसप्तति आदि लोककथाएं हैं। पञ्चतन्त्र एवं हितोपदेश नीतिकथाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों में एक विधा चम्पूकाव्य भी है। गद्य-पद्य की मिश्रित रचना को 'चम्पूकाव्य' कहा जाता है। चम्पू में वर्णन के लिए गद्य का तथा भावयुक्त भाग के लिए पद्य का प्रयोग होता है।

चम्पूकाव्यों में त्रिविक्रमभट्ट का 'नलचम्पू', भोजकृत 'रामायणचम्पू', सोमदेवकृत 'यशस्तिलकचम्पू' तथा वेंकटाध्वरी के 'चम्पूकाव्य-विश्वगुणादर्शचम्पू' और 'वरदाभ्युदयचम्पू' इत्यादि ग्रन्थ आते हैं।

प्रस्तुत इकाई में संस्कृत काव्य-विधाओं का परिचय दिया गया है, जैसे- महाकाव्य, गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य। सभी विधाओं का सामान्य परिचय, इनसे संबंधित प्रसिद्ध रचनाकार और उनकी रचनाओं के विषय में प्रतिपादन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- महाकाव्यों के विषय में जान पाएंगे;
- गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य के विषय से अवगत हो पाएंगे;
- गद्यकाव्यों की विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- कथासाहित्य से भली–भांति परिचित हो पाएंगे;
- चम्पूकाव्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।

4.2 महाकाव्य

आदिकवि वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना कर लौकिक संस्कृत में महाकाव्य–परम्परा का प्रारम्भ किया। श्लोक में परिणत शोक– 'मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वम्'– ने संस्कृत काव्यधारा की दिशा निर्धारित की है। वैदर्भी रीति में विन्यस्त, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से सम्पन्न, उपमादि अलंकारों से विभूषित, रसानुगामिनी इस काव्यधारा का चरम विलास कवि कुलगुरु कालिदास के काव्यों में दृष्टिगोचर होता है।

कालिदास

संस्कृत महाकाव्य के विकास की चर्चा के क्रम में प्रथम नाम कालिदास का ही लिया जाता है। कालिदास का स्थितिकाल विक्रम संवत् के प्रथम शतक में माना गया है। इनके दो महाकाव्य हैं– कुमारसम्भव एवं रघुवंश।

कुमारसम्भव– यह कालिदास का प्रथम महाकाव्य है। 17 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य के प्रथम आठ सर्ग कालिदास द्वारा रचित हैं तथा शेष नौ सर्ग की कथा को पूरा करने के लिए किसी परवर्ती कवि के द्वारा लिखकर जोड़े गए हैं। इसमें शिव–पार्वती के विवाह एवं कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा वर्णित है। इसके प्रथम सर्ग में हिमालय वर्णन, तृतीय सर्ग में शिवजी की समाधि का वर्णन तथा पंचम सर्ग में ब्रह्मचारी वेषधारी शिव द्वारा पार्वती की प्रेम परीक्षा का प्रसंग अत्यन्त रोचक व हृदयग्राही है। इस महाकाव्य का मुख्य रस श्रृंगार है। इसकी गणना लघुत्रयी में की जाती है।

रघुवंश– संस्कृत महाकाव्य–परम्परा में 'रघुवंश' को सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना गया है। यह उन्नीस सर्गों में विभक्त है। इस महाकाव्य में इक्ष्वाकुवंशीय 29 राजाओं का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं– 1. दिलीप, 2. रघु, 3. अज, 4. दशरथ, 5. राम, 6. कुश, 7. अतिथि, 8. निषध, 9. नल, 10. नभ, 11. पुण्डरीक, 12. क्षेमधन्वा, 13. देवानीक, 14. अहीनगु, 15. पारियात्र, 16. शील, 17. उन्नाभ, 18. वज्रनाभ, 19. शंखण, 20. व्युषिताश्व, 21. विश्वसह, 22. हिरण्याभ, 23. कौसल्य, 24. ब्रह्मिष्ट, 25. पुत्र, 26. पुष्य, 27. ध्रुवसन्धि, 28. सुदर्शन एवं 29. अग्निवर्ण। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम तथा कुश का विस्तृत वर्णन है। द्वितीय एवं तृतीय सर्ग में दिलीप के द्वारा नन्दिगी गाय की सेवा से रघु का जन्म, चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय यात्रा, पंचम सर्ग में रघु की दानशीलता, इसके पश्चात् तीन सर्गों में इन्दुमती–स्वयंवर, अज–इन्दुमती विवाह, कोमल पुष्पमाल के आघात से इन्दुमती का मरण तथा अज का करुण विलाप, त्रयोदश सर्ग में लंका से अयोध्या लौटते हुए श्रीराम द्वारा भारतवर्ष के विभिन्न स्थलों का वर्णन, चतुर्दश सर्ग में सीता–चरित का उत्कर्ष आदि रघुवंश के उत्तम स्थल माने गए हैं। रघुवंश का भी अंगी रस श्रृंगार ही है तथा लघुत्रयी में इसे भी परिगणित किया जाता है।

अश्वघोष– बौद्ध महाकवि अश्वघोष महान् धर्म प्रचारक दार्शनिक तथा उच्चकोटि के विद्वान् थे। ये कुषाणवंशीय राजा कनिष्क के समकालीन, अयोध्या के ब्राह्मण जो बाद में बौद्ध बन गए थे। महाकवि अश्वघोष ने दो महाकाव्यों की रचना की–बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द।

(क) बुद्धचरित– इस महाकाव्य के पूर्वार्ध में भगवान् बुद्ध के जन्म से लेकर उनके संघर्षमय जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके निर्वाण तक का वर्णन है। उत्तरार्ध

में उनके उपदेशों एवं उत्तरकालिक जीवन का वर्णन है। इस महाकाव्य में मूलतः 28 सर्ग थे जिनमें से प्रथम चौदह सर्ग ही आज प्राप्त होते हैं। इसका मुख्य रस शान्त है। काव्य के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रचार इस महाकाव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है।

(ख) सौन्दरनन्द– अश्वघोष के दूसरे महाकाव्य सौन्दरनन्द में 18 सर्ग हैं। इसमें बुद्ध के सौतेले भाई सुन्दरनन्द के गृहत्याग, मोहभंग तथा प्रव्रज्याग्रहण का वर्णन है। महाकाव्य के आरम्भिक भाग में, अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ भोग–विलास में मग्न नन्द का कवि ने शृंगारिक वर्णन किया है। ऐसे में तथागत उसे प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं। नन्द के बौद्ध विहार चले जाने के बाद सुन्दरी एवं नन्द की विरह–व्यथा एवं नन्द के मानसिक संघर्ष का कवि ने मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। बुद्धचरित की अपेक्षा सौन्दरनन्द में बौध धर्म के उपदेशों का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भारवि– ऐहोल अभिलेख (634 ई.) तथा गंगनरेश दुर्विनीत के समय (481 ई.) के शिलालेख में क्रमशः भारवि तथा उनके महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' का उल्लेख प्राप्त होता है। इस आधार पर भारवि का स्थितिकाल 450 ई. के आसपास माना जाता है।

किरातार्जुनीयम्– भारवि की कीर्तिलता का एकमात्र आधार यह महाकाव्य ही है। अठारह सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य का कथानक यद्यपि बहुत छोटा है किन्तु भारवि ने अपने वर्णन कौशल से इसे बड़ा बना दिया है। इन्द्रकील पर्वत पर दिव्यास्त्र के लिए तपस्या में लीन अर्जुन एवं अर्जुन के तप की परीक्षा के लिए किरात वेषधारी शिव के युद्ध का वर्णन किया गया है। अर्जुन के बल एवं युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने प्रकट होकर उन्हें पाशुपत अस्त्र प्रदान किया।

किरातार्जुनीयम् का आरम्भ 'श्री' शब्द से होता है– श्रियः कुरूणामधिपस्य पालिनीम्– तथा इसके प्रत्येक सर्ग के अंतिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसकी गणना बृहत्त्रयी में की जाती है। इसका प्रधान रस वीर है। भारवि का अर्थगौरव प्रसिद्ध है। इसके अनेक श्लोकांश सूक्तिवाक्यों के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसके सम्पूर्ण पंद्रहवें सर्ग में भारवि ने अपने चित्रकाव्य लेखन की कुशलता का प्रदर्शन किया है जिससे यह कहीं–कहीं दुरूह हो गया है। कुछ पद्यों में इन्होंने केवल दो व्यंजनों का प्रयोग किया है तथा एक पद्य में केवल एक ही व्यंजन 'न' का ही प्रयोग हुआ है–

न नोनन्नुनो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो न नुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्।।

भट्टि– भट्टि वलभीनरेश श्रीधरसेन के समकालीन थे। वलभी में 500 ई. से 650 ई. के बीच श्रीधरसेन नामक चार राजा हुए, अतः महाकवि भट्टि का समय भी यही माना जाता है।

भट्टिकाव्य (रावणवध)– भट्टि की एकमात्र रचना है रावणवध, जो भट्टिकाव्य भी कहलाता है। बाइस सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में 3624 पद्य हैं। इसमें श्रीरामचन्द्र का जीवन–चरित वर्णित है, किन्तु काव्य का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ–साथ व्याकरणशास्त्र तथा अलंकारशास्त्र की शिक्षा देना भी है। भट्टि का यह काव्य उन्हें शास्त्र कवियों में आदर्श और अग्रणी बनाता है।

कुमारदास– कुमारदास का स्थितिकाल छठी शताब्दी माना जाता है। ये सिंहल देश के निवासी थे। इनका एकमात्र महाकाव्य 'जानकीहरण' है।

जानकीहरण– बीस सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में राम की कथा का वर्णन किया गया है। राजा दशरथ एवं उनकी रानियों के वर्णन से आरम्भ इस काव्य का अन्त रावण पर रामचन्द्र की विजय से होता है। कुमारदास भारवि प्रवर्तित विचित्र मार्ग के सिद्धहस्त कवि हैं। एकाक्षर, द्वयक्षर, विलोम, सर्वतोभद्र, मुरजबंध, निरोष्ठ्य, प्रतिलोम तथा अनेक प्रकार के यमक का सफल प्रदर्शन महाकाव्य के अठारहवें सर्ग में हुआ है।

माघ– माघ गुजरात के भीनमाल नगर के एक प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। निश्चित प्रमाणों के आधार पर इनका समय 650 ई. से 700 ई. तक माना गया है। इनकी एकमात्र कृति शिशुपालवध महाकाव्य है।

शिशुपालवध– इस महाकाव्य की गणना बृहत्त्रयी के अन्तर्गत की जाती है। इसके 20 सर्गों में कुल 1650 पद्य हैं। कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा इसमें वर्णित है। श्रीमद्भागवत के आधार पर विन्यस्त इस छोटे–से कथानक को माघ ने अपनी कवि–प्रतिभा के बल से बीस सर्गों में विभाजित कर दिया है। महाकाव्य के छोटे–से–छोटे लक्षण को भी माघ ने अपने इस काव्य में समाविष्ट किया है। इसका अंगीरस वीर है। पाण्डित्य–प्रदर्शन में माघ ने सभी कवियों को पीछे छोड़ दिया है। कालिदास का काव्य सौन्दर्य, भारवि का अर्थ–गौरव, दंडी का पद–लालित्य तो इनके काव्य में है ही, भट्टि के समान व्याकरण की परख भी है। नये एवं जटिल शब्दों का प्रयोग भी माघ की विशिष्टता है– 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।' इनका एकाक्षर पद्य भी द्रष्टव्य है–

दाददो दुद्ददुद्दी दादादो दूददीददोः।
दुद्दादं ददे दुद्दे ददाऽददददोऽददः।।

श्रीहर्ष– श्रीहर्ष कान्यकुब्ज (कन्नौज)–नरेश जयचन्द्र की सभा में रहते थे। इनका स्थितिकाल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन्होंने पांडित्यपूर्ण शैली में खण्डनखण्डखाद्य, स्थैर्यविचारप्रकरण, विजयप्रशस्ति आदि कई ग्रन्थों की रचना की।

नैषधीयचरित– नैषधीयचरित श्रीहर्ष का प्रसिद्ध महाकाव्य है, जिसकी गणना बृहत्त्रयी में होती है। इसके लम्बे–लम्बे 22 सर्गों में 2830 पद्य हैं। इसमें निषधराज नल के पावन चरित्र, नल एवं दमयन्ती के परस्पर प्रेम तथा विवाह की कथा का विशद वर्णन है। इस महाकाव्य में इन्द्र, यम, अग्नि तथा वरुण आदि देव–पात्र, नल, दमयन्ती एवं अन्य मानव पात्र और दूतभूत हंस जैसे मानवेतर पात्रों के मध्य सुन्दर सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। महाकवि श्रीहर्ष ने इस महाकाव्य में आस्तिक दर्शनों, नास्तिक दर्शनों, सामुद्रिक शास्त्र, तंत्रशास्त्र, प्राणिविज्ञान, शिल्प विज्ञान, वेद–वेदांग तथा पुराणेतिहास विषयक अपने ज्ञान का प्रदर्शन किया है। इसका अंगी रस श्रृंगार है। अलंकारों में श्लेष का बाहुल्य है। नैषध का तो प्रायः प्रत्येक पद ही श्लिष्ट है। कवि के प्रौढ़ पांडित्य के अत्यधिक प्रदर्शन के कारण यह महाकाव्य दुरूह हो गया है। विद्वानों के गर्व–ज्वर के लिए यह औषधि माना गया है–**'नैषधं विद्वदौषधम्।'**

इन सुप्रसिद्ध महाकाव्यों के अतिरिक्त अन्य अनेक महाकाव्यों की रचना संस्कृत, प्राकृत, पालि एवं अपभ्रंश में हुई। कतिपय बौद्ध एवं जैन कवियों के महाकाव्य भी उपलब्ध होते हैं। नवम शतक के मध्य में गौडदेशीय अभिनन्द कवि ने 'रामचरित' नामक

महाकाव्य की रचना की। इसमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक का कथानक 36 सर्गों में विभक्त है तथा चार–चार सर्गों के दो परिशिष्ट भी हैं। इसी समय कश्मीरी कवि रत्नाकर ने 'हरविजय' नामक महाकाव्य लिखा जिसमें 50 सर्गों में अन्धकासुर पर भगवान् शिव की विजय का विस्तार से वर्णन किया गया है। रत्नाकर के समकालीन एक अन्य कश्मीरी कवि शिवस्वामी ने शैव होते हुए भी 'काफ्फिणाभ्युदय' नामक 20 सर्गों के एक बौद्ध महाकाव्य की रचना की। कश्मीर निवासी वैष्णव कवि क्षेमेंद्र ने एकादश शतक के पूर्वार्ध में रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी बृहत्कथामञ्जरी, दशावतारचरित तथा अवदानकल्पलता नामक पाँच महाकाव्यों की रचना की। कश्मीर के अन्य महाकवि मंखक ने द्वादश शती में 'श्रीकण्ठचरित' नामक महाकाव्य की रचना की। इसके 25 सर्गों में भगवान् शंकर तथा त्रिपुर के युद्ध का विशद वर्णन है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य परिगणनीय महाकाव्य हैं– वस्तुपाल का नरनारायणानन्द, वेदान्तदेशिक का यादवाभ्युदय, वीरनन्दी का चन्द्रप्रभचरित, वादिराज का पार्श्वनाथचरित, महासेन कवि का प्रद्युम्नचरित, हरिश्चन्द्र प्रणीत धर्मशर्माभ्युदय, बाणभट्ट का नेमिनिर्वाणकाव्य, अभयदेव सूरिकृत जयन्तविजय, अमरचन्द्र का पद्मानन्द महाकाव्य तथा विनयचन्द्र सूरि का मल्लिनाथचरित आदि।

ऐतिहासिक महाकाव्य

नवसाहसाङ्कचरित– यह संस्कृत के प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित है। 18 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में धारानरेश भोज के पिता सिन्धुराज का इतिहास वर्णित है। सिन्धुराज का विवाह नागराज शंखपाल की पुत्री राजकुमारी शशिप्रभा से हुआ था। महाकवि पद्मगुप्त ने इस विवाह का सांगोपांग वर्णन इस महाकाव्य में किया है।

विक्रमाङ्कदेवचरित– इस महाकाव्य के प्रणेता बिल्हण कश्मीर के निवासी थे। शिक्षा–दीक्षा के उपरांत देशाटन के लिए निकले बिल्हण चालुक्य नरेश विक्रमादित्य (षष्ठ) की राजसभा में पहुँचे। विक्रमादित्य ने उन्हें संरक्षण दिया और उनका बहुत सम्मान किया। अपने संरक्षक की प्रशंसा में 1088 ई. में उन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक महाकाव्य की रचना की। महाकाव्य के 18 सर्गों में से प्रथम सात सर्गों में राजा विक्रमादित्य के पूर्वजों का वर्णन है तथा 8वें से 17वें सर्ग में राजा और उसकी नायिका के प्रणय का वर्णन है। अंतिम सर्ग में कवि ने अपना जीवन–वृत्त लिखा है। काव्य कला की दृष्टि से विक्रमाङ्कदेवचरित एक सफल महाकाव्य है।

राजतरंगिणी– यह एक सच्चे इतिहासकार द्वारा काव्यात्मक शैली में लिखा गया गौरवपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसके प्रणेता कल्हण कश्मीर के राजा हर्ष के अनुयायी चम्पक के पुत्र थे। उन्होंने राजतरंगिणी की रचना 1148 ई. में आरम्भ कर 1150 ई. में पूरी की। इस ऐतिहासिक महाकाव्य में आठ तरंग हैं। राजतरंगिणी के आरम्भ में 13वीं सदी ई.पू. के गोनन्द नामक राजा का वर्णन है। ग्रन्थ में प्रथम निर्दिष्ट तिथि 813–14 ई. है तथा वहां से 1150 ई. तक घटित होनेवाली कश्मीर की समस्त घटनाओं का इतिहास प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक रीति से व्यवस्थित रूप में प्राप्त होता है। कवि ने निष्पक्ष रूप से कश्मीर के राजाओं एवं वहाँ के निवासियों के गुण–दोषों की आलोचना की है।

कश्मीर के अन्य ऐतिहासिक कवि जोनराज (1450 ई.), श्रीवर (1459–86 ई.) तथा शुक (1596 ई.) कल्हण की राजतरंगिणी की परम्परा को आगे बढ़ाते रहे और अपने–अपने समय के इतिहास को प्रस्तुत किया। बादशाह अकबर को राजतरंगिणी अत्यधिक प्रिय थी। इसे लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने इसका फारसी अनुवाद भी करवाया था।

इनके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य हैं– जल्हण का सोमपालविलास, हेमचन्द्र का कुमारपालचरित, सोमेश्वर का कीर्तिकौमुदी, नयनचन्द्र सूरि का हम्मीर–महाकाव्य, चन्द्रशेखर का सुरजनचरित, राजनाथ डिंडम का अच्युताराभ्युदय, गंगादेवी का मधुराविजय, संन्ध्याकरनन्दी का रामचरित, कश्मीरी कवि जयानक का पृथ्वीराजविजय, शंभु कवि का राजेन्द्रकर्णपूर तथा वाक्पतिराज का गउडवहो (गौडवधः) आदि।

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के रचयिता का क्या नाम है?

   (क) कालिदास (ख) भारवि

   (ग) भास (घ) भवभूति

2. बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द महाकाव्य किसकी रचनाएं हैं?

   (क) कालिदास (ख) श्रीहर्ष

   (ग) अश्वघोष (घ) माघ

4.3 गीतिकाव्य

महाकाव्य से इतर लघुकथानक पर आधारित काव्य को खण्ड काव्य कहते हैं। इसके अन्तर्गत गीतिकाव्य और दूतकाव्य या संदेशकाव्य भी परिगणित किए जाते हैं।

ऋतुसंहार– यह कालिदास की प्रथम कृति मानी जाती है। इसमें छह सर्ग हैं। वर्ण्य विषय वसन्त आदि छह ऋतुएँ हैं। श्रृंगार रस प्रधान है। ऋतु–परिवर्तन के साथ बाह्य प्रकृति में होनेवाले परिवर्तन का सुन्दर वर्णन तो कवि ने किया ही है, अन्तः प्रकृति में नूतनता का जो संचार होता है, उसका भी कवि ने मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है।

मेघदूत– लौकिक संस्कृत के प्रथम गीतिकाव्य के रूप में इसकी प्रतिष्ठा है। मेघदूत के दो भाग हैं– पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ। श्लोकों की कुल संख्या 120 है। इसमें कुबेर के शाप के कारण अपनी पत्नी से वियुक्त यक्ष की विरह–व्यथा का मर्मस्पर्शी वर्णन है। यक्ष अलकापुरी से एक वर्ष के लिए निर्वासित होकर रामगिरि के आश्रमों में रह रहा है। वर्षा ऋतु के आरम्भ में वह मेघ को अपना दूत बनाकर अपनी प्रिया के पास प्रणय संदेश भेजता है। पूर्वमेघ में रामगिरि से अलकापुरी तक के मेघ–मार्ग का मनोरम वर्णन है तथा उत्तरमेघ में अलकापुरी, यक्ष–भवन, यक्ष–पत्नी तथा यक्ष द्वारा यक्षिणी को प्रेषित संदेश का वर्णन है। सम्पूर्ण मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में उपनिबद्ध है।

मेघदूत ने संस्कृत साहित्य में एक नवीन काव्य–विधा 'दूतकाव्य' अथवा 'संदेशकाव्य' की उद्भावना की है और आगामी कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। जैन कवि मेघदूत की ओर अधिक आकृष्ट हुए। अनेक जैन कवियों ने मेघदूत के पद्यों के अंतिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में काव्यों की रचना की।

(1) पार्श्वाभ्युदय

इसके रचयिता जैन कवि जिनसेन हैं। जिनसेन का स्थितिकाल नवम शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। आचार्य जिनसेन ने मेघदूत के समस्त पद्यों के प्रत्येक चरण को समस्या–पूर्ति के रूप में लेकर इस संदेशकाव्य की रचना की है। इसमें चार सर्ग और 364 श्लोक हैं। मन्द्राक्रान्ता छन्द में उपन्यस्त इस काव्य की भाषा, शब्द–कौशल एवं अर्थ–संयोजन प्रौढ़ है। 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी की उग्र तपस्या के समय उनके पुराने शत्रु शंबर द्वारा उन्हें पहुँचाए जाने वाले क्लेश और श्रृंगारिक प्रलोभन इसका वर्ण्य विषय है। जिनसेन ने अपनी काव्य प्रतिभा से मेघदूत जैसे श्रृंगारी काव्य को शान्त रस से समन्वित काव्य में परिणत कर दिया है।

(2) नेमिदूत

'नेमिदूत' विक्रम कवि की रचना है। इसका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी माना जाता है। इसमें जैनधर्म के बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ तथा उनकी पत्नी राजीमती के चरित्र को वर्ण्य विषय बनाया गया है। मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण की समस्या–पूर्ति के रूप में इस काव्य की रचना हुई, इसलिए इसके अभिधान में 'दूत' पद का निर्देश है। वस्तुतः इसमें कोई दूत है ही नहीं, राजीमती ने अपनी विरह व्यथा का वर्णन स्वयं किया है जो मर्मस्पर्शी है।

(3) शीलदूत

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भिक काल का यह काव्य चरित्रसुन्दरगणि की रचना है। इस काव्य में 131 पद्य हैं। दीक्षित एवं संसार से विरक्त परिव्राजक स्थूल से उसकी पत्नी कोशा गृहस्थाश्रम में लौट आने का आग्रह करती है, किन्तु स्थूलभद्र अपने शील के बल से कोशा को भी जैन धर्म में दीक्षित कर लेता है। कोशा की विरहावस्था के मर्मस्पर्शी वर्णन में विप्रलम्भ की प्रधानता है, जिसकी परिणति शान्तरस में हो जाती है।

मेघदूत से प्रेरणा पाकर जैन कवियों ने मेघदूत की समस्या–पूर्ति के अतिरिक्त स्वतंत्र संदेश काव्यों की रचना भी प्रचुर मात्र में की। इनमें प्रमुख हैं–

1. **जैन मेघदूत** : मेरुतुंग रचित यह संदेशकाव्य चार सर्गों में विभक्त है। इस काव्य के 196 श्लोकों में पूर्ववर्णित 'नेमिदूत' का विषय ही वर्णित है। नेमिकुमार के परिव्राजक बनने के बाद राजीमती मेघ को दूत बनाकर अपना विरह संदेश उनके पास भेजती है। इसका रचनाकाल चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है।

2. **पवनदूत** : सोलहवीं शताब्दी में वादिचन्द्र ने इस संदेश काव्य की रचना की। यह काव्य भी मन्दाक्रान्ता छन्द में उपन्यस्त है। इस काव्य में उज्जयिनी के राजा विजयनरेश एवं उनकी रानी तारा की कथा का वर्णन है। रानी तारा का अशनिवेग नामक विद्याधर हरण कर लेता है। तब राजा विजयनरेश पवन को दूत बनाकर रानी तारा को अपना संदेश भेजते हैं।

जैन दूतकाव्यों में अन्य उल्लेखनीय नाम हैं– कवि विमलकीर्ति का 'चन्द्रदूत', उपाध्याय मेघविजय का 'मेघदूत–समस्या–लेख' तथा किसी अज्ञात जैन आचार्य का 'चेतोदूत'। जैनेतर कवियों ने भी 'मेघदूत' के पद्यों के चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में दूतकाव्यों की रचना की है, जिनमें प्रमुख हैं– अवधूतराम योगी का 'सिद्धदूत' तथा नित्यानन्द शास्त्री का 'हनुमद्दूत'।

मेघदूत की काव्य–माधुरी से रीझकर संस्कृत साहित्य के दूतकाव्य नामक जिस विधा का आरम्भ हुआ, उसमें मेघदूत के बाद प्रथम नाम 'चन्द्रदूत' का लिया जाता है। जम्बू कवि के इस दूतकाव्य की रचना दशम शताब्दी में हुई। तत्पश्चात् बारहवीं शती में बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के राजकवि धोयी ने 'पवनदूत' नामक दूतकाव्य की रचना की। राजा लक्ष्मणसेन दक्षिणी प्रान्तों को जीतकर जब अपनी राजधानी वापस आते हैं, तब विजित प्रान्त की कोई सुन्दरी पवन को दूत बनाकर राजा के पास अपना विरह संदेश भेजती है।

मेघदूत से आरम्भ हुई यह काव्य–परम्परा मूलतः श्रृंगार से ही मण्डित थी, जिसमें मध्ययुगीन जैन कवियों ने शान्तरस का तथा वैष्णव कवियों ने भक्तिरस का संचार किया। इस कोटि के उल्लेखनीय दूतकाव्य हैं– 'उद्धवसन्देश', 'हंससंदेश', 'हंसदूत', 'इन्दुदूत', 'चन्द्रदूत' आदि। दूतकाव्य परम्परा में चातक, कोकिल, पिक, हंस आदि पक्षियों को भी कवियों ने दूत बनाकर इनके माध्यम से संदेश भेजा है। इनमें अग्रगण्य काव्य हैं–

1. **हंससन्देश**– 'हंससन्देश' वेदान्तदेशिक की रचना है। यह दो आश्वासों में विभक्त है। प्रथम आश्वास में 60 पद्य तथा द्वितीय आश्वास में 50 पद्य हैं। हनुमान से यह जानने के बाद कि जानकी जी लंका में हैं, भगवान् श्रीराम ने हंस को दूत बनाकर उनके पास भेजा है। इसके प्रथम आश्वास में वेंकटाचल से लंका तक का मार्ग वर्णित है, जबकि द्वितीय आश्वास में सीताजी की करुण अवस्था एवं राम के संदेश का हंस द्वारा कथन है। यह एक आध्यात्मिक दूतकाव्य है, जिसमें भगवान् राम स्वयं सच्चिदानंद स्वरूप हैं, सीताजी मोक्ष की कामना से युक्त जीव का प्रतीक हैं और हंस उस सात्विक आचार्य के समान है, जो अपने उपदेशों से जीव को मोक्ष एवं ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताता है। मन्दाक्रान्ता छन्द में उपनिबद्ध इस काव्य में चमत्कारी उपमाओं की मनोरम छटा है।

2. **हंसदूत**– भक्तिरसापन्न दूतकाव्य 'हंसदूत' के रचयिता हैं वैष्णव कवि रूपगोस्वामी। इनका भक्तिरस से पूर्ण एक अन्य दूतकाव्य है 'उद्धवसंदेश'। सौ श्लोकों का यह काव्य शिखरिणी छन्द में निबद्ध है। 'हंसदूत' में श्रीकृष्ण को राधा की विरह दशा की सूचना देने के लिए ललिता हंस को दूत बनाकर मथुरा भेजती है। अक्रूर के द्वारा बताए गए मार्ग से हंस वृंदावन से मथुरा जाता है और श्रीकृष्ण के सम्मुख न केवल राधा की मनोव्यथा का, अपितु वृंदावन की दयनीय दशा का भी सुन्दर चित्रण करता है। इस काव्य में मथुरा के वैभव एवं भगवान् कृष्ण की मित्रमंडली का भी सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

दूतकाव्य परम्परा में कुछ अन्य उल्लेखनीय काव्य हैं– अवधूतराम योगी का 'सिद्धदूत', अब्दुलरहमान का 'संदेशरासक', माधवकवीन्द्र का 'उद्धवदूत', विष्णुदास का 'मनोदूत', रुद्रन्याय वाचस्पति का 'पिकदूत', वादिराज का 'पवनदूत', वैद्यनाथ द्विज का 'तुलसीदूत', हरिदास का 'कोकिलदूत', कृष्णनाथ का 'वातदूत', भोलानाथ का 'पांथदूत', रामदयाल का 'अनिलदूत' आदि।

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य की समृद्ध परम्परा रही है। साहित्य की अन्य अनेक विधाओं की भाँति गीतिकाव्य का भी मूल स्रोत ऋग्वेद ही है। इस संदर्भ में उषा–सूक्त, अक्ष–सूक्त तथा वशिष्ठ द्वारा वरुण की स्तुति आदि उल्लेखनीय हैं। साधारणतया, गीतिकाव्य में द्विविध श्रृंगार (संयोग एवं विप्रलम्भ अथवा भक्ति से संबद्ध प्रबन्धात्मक एवं मुक्तक काव्य परिगणित होते हैं। आज इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। आधुनिक कवि जीवन के सभी पक्षों एवं समसामयिक प्रसंगों को गीतिकाव्य का विषय बनाकर रचना कर रहे हैं। सम्प्रति, इतिहास प्रसिद्ध कतिपय गीतिकाव्यों का परिचय प्राप्त करें–

गाथासप्तशती– प्रबन्धात्मक गीतिकाव्यों में जो स्थान मेघदूत का है, मुक्तक गीतिकाव्यों में वही स्थान 'गाथासप्तशती' का है। राजा सातवाहन काल के इस काव्य में आर्या छन्द में निबद्ध सात सौ पद्य हैं। इस काव्य में गोदावरी के कछार, विंध्य पर्वतमाला, पशु–पक्षियों की चेष्टाओं, मयूर–नृत्य, तृणाग्रवर्ती वर्षा–जल–बिंदुओं का मयूरों द्वारा आचमन, कमल–वन की शोभा, कमलों पर बैठे हुए भ्रमरों की छटा, शरद् ऋतु के मेघ आदि का हृदयग्राही चित्रण प्राप्त होता है। इन गाथाओं में ग्रामवधुओं की प्रणय केलियों, प्रेमियों की सरस क्रीड़ाओं तथा प्रेम के घात–प्रतिघात के मनोहर दृश्य सजीव रूप में प्रकट हुए हैं। लौकिक रसप्रधान इस काव्य में कहीं–कहीं नायक–नायिका के सुख का अश्लील वर्णन भी मिलता है। गाथा सप्तशती में लोक–जीवन की गहरी छाया मिलती है, लोक–काव्य से भी यह अनुप्राणित है तथापि अपनी व्यङ्ग्य प्रधानता के कारण यह उत्तम काव्य का सुन्दर उदाहरण है।

श्रृंगारशतक– श्रृंगारिक गीतिकाव्य धारा में भर्तृहरि के श्रृंगारशतक का महत्वपूर्ण स्थान है। यह मुक्तक रमणियों के सौन्दर्य–चित्र की एक ऐसी चित्रशाला है, जिसमें कामिनियों के आकर्षक अंग–प्रत्यंगों का और उनके अनुभावों का सुन्दर वर्णन है। शतक में षड्ऋतुओं का वर्णन भी है, किन्तु उनमें प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही चित्रण है। श्रृंगारशतक में सांसारिक भोगों का कहीं लालसापूर्ण वर्णन है तो कहीं उनकी निन्दा, कहीं राजाओं को लक्ष्य कर आत्माभिमान की मुद्रा में अपने कवित्व की प्रशंसा और उनके ऐश्वर्य की हीनता का प्रतिपादन है और कहीं गरीबी का करुण चित्रण, कहीं स्त्रियों की प्रशंसा है तो कहीं निन्दा। इन समस्त प्रसंगों में, भर्तृहरि के जीवन की विषमताओं से उत्पन्न भावनाएँ अप्रत्यक्ष रूप से, किन्तु बड़ी ही मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। पूरे काव्य में सर्वत्र प्रसाद एवं माधुर्य गुण दृष्टिगत होता है। भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। काव्य में रसानुरूप ललित शब्द–योजना का सुन्दर विन्यास है। विषय में भिन्न होने पर भी भर्तृहरि की दो अन्य कृतियाँ 'नीतिशतक' एवं 'वैराग्यशतक' उल्लेखनीय गीतिकाव्य हैं।

अमरूकशतक– इतिहास प्रसिद्ध राजा अमरूक ने 'अमरूकशतक' नामक एक अत्यन्त सरस मुक्तक की रचना की। इसमें एक सौ पंद्रह श्लोक हैं। अमरूक प्रेम के उत्कृष्ट कवियों में से एक हैं और उनका काव्य मूलतः प्रेम के चित्रों का संग्रह है। प्रणय, कलह, मान, औत्सुक्य, प्रसादन आदि में कवि की अधिक रुचि परिलक्षित होती है। अमरूक जहाँ एक ओर प्रिय की प्रतीक्षा में रत वियोगिनी के विषाद भरे औत्सुक्य का मर्मस्पर्शी चित्रण करते हैं, वहीं दूसरी ओर नायिका के ध्यान में एकतान वियोगी नायक की वियोगानुभूति की गंभीरता को कलात्मक एवं प्रौढ़ अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। शैली की दृष्टि से अमरूक का काव्य प्रसादपूर्ण कला का श्रेष्ठ निदर्शन है। शार्दूलविक्रीडित जैसे बड़े छन्द का प्रयोग करते हुए भी कवि ने स्वाभाविकता, सरसता एवं सरलता का सर्वत्र ध्यान रखा है। आनन्दवर्धन का यह कथन **'अमरूककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते'** यथार्थ ही है। गागर में सागर भरने की लोकोक्ति को इन्होंने वस्तुतः सार्थक किया है।

चौरपञ्चाशिका– ऐतिहासिक महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरित' के रचयिता कश्मीरी महाकवि बिल्हण की इस लघु कलेवर कृति में मात्र पचास पद्य हैं। इसकी शैली अपने युग में प्रचलित शैली के विपरीत सरल, आडम्बरहीन तथा गीति–काव्योचित है। सम्पूर्ण पञ्चाशिका में नख–शिख वर्णन, सुरत व्यापार, रतिबंध, नख–चिह्न, दंतक्षत आदि की पुरानी गाथा ही सुन्दर और सरल शैली में वर्णित की गई है। शृंगार के एक विशिष्ट पक्ष मात्र से संबद्ध विशेष व्यापारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति ही इसकी विशेषता है। यह प्रवृत्ति आगामी समय में इतनी विकसित हुई कि नायिका के एक–एक अंग अथवा भाव को लेकर सौ–सौ पद्यों की स्वतंत्र रचना लिखने की परिपाटी चल पड़ी, जिससे 'रोमावलीशतक' जैसी रचनाएँ समक्ष आई।

आर्यासप्तशती– बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन की सभा के मान्य कवि गोवर्धनाचार्य ने 'गाथासप्तशती' से प्रेरित होकर 'आर्यासप्तशती' की रचना की। इसमें अकारादि वर्णों के क्रम से ही आर्या छन्द में सौ श्लोकों की रचना की गई है। शृंगारिक मुक्तकों में बड़े–बड़े छन्दों के स्थान पर आर्या जैसे छोटे छन्द के प्रयोग की परम्परा गोवर्धनाचार्य ने ही आरम्भ की। आर्यासप्तशती में नागरिकों की शृंगारिक चेष्टाओं का जितना सजीव वर्णन है, उतनी ही ग्रामवधुओं की उक्तियाँ भी सरस, स्वाभाविक और मनोहर है, किन्तु कवि की शृंगारिकता कहीं–कहीं अश्लीलता की कोटि तक पहुँच गई है। गोवर्धनाचार्य ने अपनी इस एकमात्र कृति में नीतिविषयक कथनों में प्रयुक्त होनेवाली अन्योक्तियों का शृंगारात्मक संदर्भों में भी कुशलता तथा बहुलता से प्रयोग किया है।

गीतगोविन्द– 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव भी बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के ही आश्रित थे। गीतगोविन्द में सरस मधुर गीतों से समन्वित छोटे–छोटे बारह सर्ग हैं। वैष्णव समाज में यह एक भक्तिपरक काव्य माना जाता है, किन्तु इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय राधा–कृष्ण की केलि–कथाएं ही हैं। इस काव्य में भक्ति और शृंगार गंगा–यमुना की भाँति मिल गए हैं, जिसमें जयदेव की संगीत–पोषित कोमलकांत पदावली की सरस्वती के योग से एक ऐसी अनूठी त्रिवेणी के दर्शन होते हैं, जो संस्कृत साहित्य में अभूतपूर्व और अनुपम है। साहित्यिक रंगमंच पर प्रेम की प्रतिमा के रूप में

राधा को प्रतिष्ठित करने वाले सर्वप्रथम कवि जयदेव ही हैं। अभिव्यक्ति की भावानुकूलता गीतगोविन्द की महनीय विशेषता है। इसकी काव्य शैली की सबसे बड़ी विशिष्टता है गौडी तथा वैदर्भी रीति का अभूतपूर्व समन्वय। शृंगारादि कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए अनुपयुक्त ओजपूर्ण पद रचना तो इसमें नहीं है किन्तु लम्बे–लम्बे सामासिक पदों का प्रयोग इसमें बहुलता से हुआ है। समास बाहुल्य तथा वाक्य–विन्यास होते हुए भी गीतगोविन्द मधुर कोमलकांत पदावली की अति रमणीय प्रासादिकता का चूड़ान्त निदर्शन प्रस्तुत करता है।

इन प्रमुख शृंगारिक गीतिकाव्यों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में इस परम्परा के कुछ और गीतिकाव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे– भल्लट कवि का 'भल्लटशतक', रत्नाकर की 'वक्रोक्तिपञ्चाशिका', नरहरि का 'शृंगारशतक', पंडितराज जगन्नाथ का 'भामिनीविलास', विश्वेश्वर पंडित का 'कवीन्द्रकंठाभरणम्' तथा 'रोमावलीशतकम्', जनार्दन भट्ट का 'शृंगारशतक' आदि।

संस्कृत साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर आज तक निरन्तर काव्य रचना होती रही है। अनेकानेक उत्कृष्ट काव्यों का निर्माण भी हुआ है, किन्तु सम्यक् व्याख्या एवं समुचित समादर व प्रचार के अभाव में वे अपरिचय के अंधकार में ही हैं। बीसवीं शताब्दी के कवियों ने पारम्परिक भावबोध एवं शैली के साथ–साथ नवीन भावबोध एवं शैली की कविताओं का प्रणयन प्रचुर मात्रा में किया। छन्दोविधान में भी नए प्रयोग किए गए। दोहा, सोरठा, कक्ति, सवैया, धनाक्षरी आदि के साथ गजलों में प्रयुक्त होनेवाले छन्दों में भी सफलतापूर्वक काव्य रचनाएं की गईं। संस्कृत के गीतिकाव्य के विकास के क्रम में उन्नीसवीं शताब्दी के जिन कवियों ने महनीय योगदान दिया है, उनमें प्रमुख कवि और उनके प्रमुख गीतिकाव्य हैं– श्री कृष्णराम भट्ट का 'सारशतकम्', 'जयपुरविलास' तथा 'मुक्तकमुक्तावली', हरिवल्लभ भट्ट का 'जयपुरपङ्चरङ्म्', 'कान्तावक्षोजशतकम्', 'ललनालोचनोल्लास' तथा अन्य, कमलेश मिश्र का 'कमलेशविलास', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'मदिरास्तव', 'अंग्रेजस्तव', 'वेश्यास्तवराज', रामशास्त्र तैलंग का 'वसंतविलास', 'ग्रीष्मविलास', 'वर्षाविलास', परमेश्वर झा का 'मिथिला तत्त्वविमर्श', 'ऋतुदर्शन', व 'यक्षसमागम', यादवेश्वर तर्करत्न का 'अश्रुबिन्द', 'प्रशान्तकुसुम', 'भारतगाथा' के साथ अन्य दशाधिक गीति कृतियाँ, लक्ष्मी राज्ञी का 'सन्तानगोपाल', 'भागवतसंक्षेप' आदि। इस शती के कुछ अन्य प्रमुख कवि हैं– श्रीनिवास दीक्षित, ए.आर. राजवर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरोजमोहिनी देवी, रामावतार शर्मा, अप्पाशास्त्री राशिवडेकर आदि। बीसवीं शती के प्रमुख गीति कवि हैं– भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, क्षमाराव, मेधाव्रत, नागार्जुन, जानकीवल्लभ शास्त्री, बटुक नाथ शास्त्री खिस्ते, रतिनाथ झा, श्री वी. वेलणकर, बच्चूलाल अवस्थी, हरिदत्त पालीवाल निर्भय, रामकरण शर्मा, श्रीनिवास रथ, शंकरदेव अवतरे, जगन्नाथ पाठक, उमाकान्त शुक्ल, भास्कराचार्य त्रिपाठी, राजेन्द्र मिश्र 'अभिराज', पुष्पा दीक्षित, राधावल्लभ त्रिपाठी, केशवचन्द्र दास, रेवाप्रसाद द्विवेदी, श्रीरामनाथ शास्त्री, परमानंद शास्त्री, ओमप्रकाश ठाकुर, रुद्रदेव त्रिपाठी, श्रीमती नलिनी शुक्ला, रमाकान्त शुक्ल, रामकिशोर मिश्र, इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव', देवदत्त भट्टि, रामविनय सिंह, जनार्दन प्रसाद पांडेय 'मणि'।

संस्कृत साहित्य के विपुल स्तोत्र साहित्य को भक्तिपरक गीतिकाव्य के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है। विभिन्न देवताओं, तीर्थस्थानों एवं आचार्यों की स्तुति में लिखी गई इन गीतियों का सस्वर गान सहृदय भक्तों के मन को आह्लाद से भर देता है। वैदिककाल से अद्यावधि भक्त कवियों ने प्रचुर मात्रा में भक्तिगीतों की रचना की है।

खण्ड काव्य अथवा गीतिकाव्य दोनों वस्तुतः एक ही हैं क्योंकि संस्कृत के लक्षणग्रन्थों में गीतिकाव्य से कोई भेद या अभेद दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसका कोई नाम, संकेत भी संस्कृत जगत् में नहीं है। रागात्मक वृत्ति को अल्पशब्दों में प्रकाशित करते हुए भावुक कवि की माधुर्यमयी अभिव्यक्ति गीति है और गीति आध्यात्मिक भावों का साङ्गीतिक अभिव्यञ्जन है। ताल, लय और गेय गुणों से युक्त गीति माधुर्य एवं सङ्गीत का त्रिस्त्रोत सङ्गम है। उत्तेजना के भावनामय क्षणों में मानवमन किसी आभा से स्वयं ही शब्दों में चमक उठता है और मार्मिक भावाभिव्यञ्जन करता है तो उसे गीतिकाव्य कहते हैं। यद्यपि गीतिकाव्य का बीज वेदों में मिलता है तथापि इसका प्रशस्त रूप कालिदास विरचित ऋतुसंहार और मेघदूत से प्राप्त होता है। गीतिकाव्य प्रेम, परिचय, सौहार्द, व्यवहार व्यङ्ग्य, विदेहमुक्ति और जीवन का आनन्द भी है।

संस्कृत में खण्डकाव्य 'गीतिकाव्य' का उद्भव खण्डकाव्य 'गीति–काव्य' का स्वरूप, संगीतात्मक खण्ड काव्य ही गीतिकाव्य कहलाता है। इसका मुख्य प्राण गेयता ही होता है। संस्कृत साहित्य में इस दृष्टि से प्राप्त होने वाले गीतिकाव्य अनेक हैं तथा अपने मूल रूप में संगीत एवं साहित्य के प्राणभूत तत्त्व हैं। इनमें भावतत्व का प्राधन्य होता है। यद्यपि संस्कृत भाषा में साहित्य के जो मुख्य भेद दिये गए हैं, उनमें 'गीतिकाव्य' नाम से कोई विशिष्ट भेद नहीं है, तथापि 'संस्कृत गीति–काव्य' जब कहा जाता है तो उसका आशय गेय या गाने योग्य कविता से होता है। वस्तुतः 'गीति–काव्य' शब्द अंग्रेजी के 'लिरिक–पोएट्री' शब्द का समानार्थक है।

शास्त्रीय दृष्टि से गीति–काव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है, क्योंकि इसमें महाकाव्य के पूरे गुण नहीं होते

''खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च।''

1 गीतिकाव्यों में प्रायः मुक्तक पद्य होते हैं। ऐसे पद्यों में पूर्वापर प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने आप में पूर्णतया स्वतंत्र होते हैं और पूरा भाव एक ही पद्य में पूर्ण हो जाता है–''पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तम्।

2 गीतिकाव्य भावप्रधान होते हैं। इनमें अन्तरात्मा की ध्वनि होती है। जीवन का कोई एक पक्ष वर्णित होता है। महाकाव्य में यदि जीवन की समग्रता है तो गीतिकाव्य में एकदेशीयता। महाकाव्य में विस्तार है तो गीतिकाव्य में घनत्व। महाकाव्य में शिथिलता है तो गीति–काव्य में एकाग्रता और तन्मयता। लायर (Lyre) यूरोप का एक वाद्य–यन्त्र है। अतः जो गीत लायर–वाद्य की सहायता से गाया जाए, उसे अंग्रेजी में 'लिरिक–पोएट्री' कहते हैं। 'लिरिक–पोएट्री' के अन्तर्गत, प्रेमगीत, शोकगीत और भक्तिगीत आते हैं। इसमें हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होती है इसलिए लिरिक–पोएट्री (गीति–काव्य) अधिक भावनात्मक मानी जाती है।

इस प्रकार की कविता का सभी युगों और समस्त भाषाओं में होना स्वाभाविक ही है। जब वाल्मीकि ने कहा था –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

सम्भवतः तभी संस्कृतगीतिकाव्य का प्रादुर्भाव हो गया था।

संस्कृत भाषा में खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, साहित्य विपुलता की दृष्टि से संस्कृत भाषा के कवियों ने बहुत अधिक गीति–काव्यों की रचना नहीं की है। गीतिकाव्य प्रबन्धकाव्य अथवा महाकाव्य की भाँति विस्तृत नहीं है। उसमें चार–चार पंक्तियों में श्रृंगार रस से परिपूर्ण छोटे–छोटे शब्द चित्र हैं। उनमें सूक्ष्म–निरीक्षण और भावों की गहनता का प्राचुर्य है। उनमें से कुछ तो रूप और कथा की दृष्टि से अनुपम रचनाएँ हैं। गीतिकाव्य में प्रकृति का अपना महत्त्व है। पशु–पक्षी जगत् उनमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निश्चित काल–क्रम के अभाव में संस्कृत गीति–काव्यों का निर्विवाद इतिहास भी नहीं प्रस्तुत किया जा सकता तथापि उल्लेखनीय संस्कृत गीति–काव्य 400 ईस्वी से लेकर 1100 ईस्वी के मध्य लिखे गए हैं। उन्हें श्रृंगारिक व धार्मिक भेदों में विभक्त किया जा सकता है। काव्य एवं नाटकगत वैशिष्ट्य के साथ महाकवि कालिदास ने गीतिकाव्य के क्षेत्र में भी अपने को अनुपम किया है। उनके ऋतुसंहार एवं मेघदूत, गीतिकाव्य के विशिष्ट उदाहरण हैं। गीतिकाव्य का उद्गम ऋग्वेद से ही होता है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, सविता, अदिति और मरुत् आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है और उनके गुणों का भाव–विह्वलता के साथ वर्णन किया गया है। वाल्मीकि–रामायण और महाभारत में अनेक स्थानों पर राम और श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। गीता के 11वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की गई है। भागवत–पुराण, विष्णु पुराण, नारद–पुराण तथा अन्य पुराणों में उपास्य देव की स्तुति मिलती है। अध्यात्म–रामायण में राम की ब्रह्म के रूप में स्तुति वर्णित है। लौकिक साहित्य में कालिदास के मेघदूत से गीतिकाव्य का प्रारम्भ होता है।

विषय की दृष्टि से गीतिकाव्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है। श्रृंगारिक, धार्मिक एवं नैतिक गीतिकाव्य। श्रृंगारिक गीतिकाव्य में मानवीय प्रेम का उदात्त रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रेमी–प्रेमिका एक दूसरे के बाह्य सौन्दर्य पर ही नहीं, आन्तरिक सौन्दर्य पर भी आसक्त होते हैं और अपने प्रेम की कोमल–भावना को प्रकट करते हैं। धार्मिक गीतिकाव्य किसी एक उपास्य देव को लेकर भाव प्रधान अनुभूति मूलक गीतिकाव्य है। नैतिक गीतिकाव्यों में नैतिक शिक्षाओं को मुक्तकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कालिदास संस्कृत–गीतिकाव्य के प्रवर्तक हैं। उन्होंने दो गीतिकाव्यों की रचना की– ऋतुसंहार और मेघदूत। एक में बाह्य प्रकृति प्रमुख है तो दूसरे में अन्तः प्रकृति, एक में यौवन का उन्माद है तो दूसरे में यौवन का विषाद।

''खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च'' – के अनुसार खण्डकाव्य महाकाव्य से छोटा धार्मिक, नैतिक या श्रृंगारिक विषयों में से किसी एक का वर्णन करने वाला होता है। कथावस्तु प्रायः कविकल्पित होती है। स्वरूप की दृष्टि से गीतिकाव्य तीन प्रकार के होते हैं– प्रबन्धात्मक, निबन्धात्मक और मुक्तक।

संस्कृत साहित्य में इसकी जो एकमात्र परिभाषा साहित्य दर्पण में उपलब्ध है वह इस प्रकार है–

भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधि–साग्रयवर्जितम्।
खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च।

इस परिभाषा के अनुसार किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरूपक ऐसा पद्यात्मक ग्रन्थ जिसमें सभी सन्धियाँ न हों वह खण्डकाव्य है। वह महाकाव्य के केवल एक अंश का ही अनुसरण करता है। तदनुसार हिन्दी के कतिपय आचार्य खण्डकाव्य ऐसे काव्य को मानते हैं, जिसकी रचना तो महाकाव्य के ढंग पर की गई हो पर उसमें समग्र जीवन न ग्रहण कर केवल उसका खण्ड विशेष ही ग्रहण किया गया हो अर्थात् खण्डकाव्य में एक खण्ड इस प्रकार व्यक्त किया जाता है, जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः प्रतीत हो।

वस्तुतः खण्डकाव्य एक ऐसा पद्यबद्ध काव्य है जिसके कथानक में एकात्मक अन्विति हो; कथा में एकांगिता (साहित्य दर्पण के शब्दों में एकदेशीयता) हो तथा कथाविन्यास क्रम में आरम्भ, विकास, चरम सीमा और निश्चित उद्देश्य में परिणति हो और वह आकार में लघु हो। लघुता के मापदंड के रूप में आठ से कम सर्गों के प्रबन्धकाव्य को खण्डकाव्य माना जाता है।

संस्कृत में गीतिकाव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में प्राप्त होता है। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत है। अधिकांश प्रबन्ध गीतिकाव्य इसी के अनुकरण पर लिखे गए हैं। मुक्तक वह है जिसमें प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतंत्र होता है। इसके सुन्दर उदाहरण अमरूकशतक और भर्तृहरिशतकत्रय हैं। संगीतमय छन्द मधुर पदावली गीतिकाव्यों की विशेषता है। शृंङ्गार, नीति, वैराग्य और प्रकृति इसके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं। नारी के सौन्दर्य और स्वभाव का स्वाभाविक चित्रण इन काव्यों में मिलता है। उपदेश, नीति और लोकव्यवहार के सूत्र इनमें बड़े ही रमणीय ढंग से प्राप्त हो जाते हैं। यही कारण है कि मुक्तकाव्यों में सूक्तियों और सुभाषितों की प्राप्ति प्रचुरता से होती है।

मुक्तककाव्य की परम्परा स्फुट सन्देश रचनाओं के रूप में वैदिक युग से ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में सरमा नामक कुत्ते को सन्देशवाहक के रूप में भेजने का प्रसंग है। वैदिक मुक्तककाव्य के उदाहरणों में वसिष्ठ और वामदेव के सूक्त, उल्लेखनीय हैं। रामायण, महाभारत और उनके परवर्ती ग्रन्थों में भी इस प्रकार के स्फुट प्रसंग विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कदाचित् महाकवि वाल्मीकि के शोकोद्‌गारों में यह भावना गुप्त रूप में रही है। पतिवियुक्ता प्रवासिनी सीता के प्रति प्रेषित श्री राम के संदेशवाहक हनुमान, दुर्योधन के प्रति धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा प्रेषित श्रीकृष्ण और सुन्दरी दयमन्ती के निकट राजा नल द्वारा प्रेषित सन्देशवाहक हंस इसी परम्परा के अन्तर्गत गिने जाने वाले प्रसंग हैं। इस सन्दर्भ में भागवत पुराण का वेणुगीत विशेष रूप से उद्धरणीय है जिसकी रसविभोर करने वाली भावना संस्कृत मुक्तककाव्यों पर अंकित है।

काव्य प्रारम्भ में उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार का होता है। व्यङ्ग्य सहित काव्य को उत्तम, व्यङ्ग्य रहित काव्य को अधम तथा किञ्चित् व्यङ्ग्य सहित काव्य को मध्यम कहा जाता है।

यह विभाजन काव्य गुण के आधार पर किया गया है किन्तु आकार के रूप में काव्य दो प्रकार का होता है –1. दृश्य काव्य , 2. श्रव्य काव्य।

श्रव्य काव्य के पुनः तीन भेद होते हैं – (अ) पद्य काव्य। (ब) गद्य काव्य। (स) चम्पू काव्य।

पुनश्च पद्य काव्य के दो भेद होते है – (अ) प्रबन्ध काव्य। (ब) मुक्तक काव्य।

खण्डकाव्य काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।

सामान्यतः संस्कृत के काव्य–साहित्य के दो भेद किये जाते हैं–दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेशभूषा, भावभंगिमा, आकृति, क्रिया और अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय में रसोन्मेष कराता है। दृश्यकाव्य को 'रूपक' भी कहते हैं क्योंकि उसका रसास्वादन नेत्रों से होता है। श्रव्य काव्य शब्दों द्वारा पाठकों और श्रोताओं के हृदय में रस का संचार करता है। श्रव्यकाव्य में पद्य, गद्य और चम्पू काव्यों का समावेश किया जाता है। गत्यर्थक में पद् धातु से निष्पन्न 'पद्य' शब्द गति की प्रधानता सूचित करता है। अतः पद्यकाव्य में ताल, लय और छन्द की व्यवस्था होती है। पुनः पद्यकाव्य के दो उपभेद किये जाते हैं – महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य को 'मुक्तककाव्य' भी कहते हैं।

'गीति' का अर्थ हृदय की रागात्मक भावना को छन्दोबद्ध रूप में प्रकट करना है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। अपनी रागात्मक अनुभूति और कल्पना से कवि वर्ण्यवस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त होकर वैयक्तिक अनुभव को सरलता से अभिव्यक्त किया जाता है। स्वरूपतः गीतिकाव्य का आकार–प्रकार महाकाव्य से छोटा होता है। इन सब तत्वों के सहयोग से संस्कृत मुक्तककाव्य को एक उत्कृष्ट काव्यरूप माना जाता है। मुक्तककाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. गीतिकाव्य का अन्य नाम क्या है?

(क) खण्डकाव्य	(ख) गद्यकाव्य
(ग) चम्पूकाव्य	(घ) महाकाव्य

4. कालिदास द्वारा रचित मेघदूत किस प्रकार का काव्य है?

(क) कथासाहित्य	(ख) चम्पूकाव्य
(ग) गद्यकाव्य	(घ) गीतिकाव्य

4.4 गद्यकाव्य

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य ही कवियों की कसौटी है। पद्य रचना अनेक प्रकार के नियमों के द्वारा नियंत्रित रहती है, किन्तु गद्य रचना में कवि अपने चमत्कारों के प्रदर्शन हेतु पूर्णरूपेण स्वतंत्र रहता है। संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्य का प्रथम उदाहरण कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होता है। यजुर्वेद की काठक

एवं मैत्रायणी संहिता में भी गद्य का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद के छठे भाग एवं सम्पूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना गद्य में ही हुई है। आरण्यकों में भी गद्य की बहुलता है और आरम्भिक उपनिषद् भी गद्यात्मक हैं। वैदिक गद्य की भाषा सीधी एवं सरल है। इसमें समास की न्यूनता एवं उदाहरणों की प्रचुरता है।

लौकिक संस्कृत में गद्य काव्यों की रचना अपेक्षाकृत कम हुई है। छठी–सातवीं शताब्दी में सुबन्धु, बाणभट्ट एवं दण्डी ने अपनी कृतियों से संस्कृत गद्य को प्रतिष्ठा प्रदान की है। दण्डी ने गद्य का लक्षण बताते हुए कहा है–**'ओजोसमासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्'** अर्थात् समास की बहुलता और ओजगुण गद्य का प्राण है। यद्यपि गद्य का यह लक्षण बहुत बाद में निर्धारित हुआ, किन्तु द्वितीय शती के रुद्रदामन के गिरिनार शिलालेख के गद्य एवं चतुर्थ शती में हरिषेण की समुद्रगुप्त प्रशस्ति अथवा प्रयाग प्रशस्ति के गद्य की समासबहुलता और प्रौढ़ भाषा इस कसौटी पर नितान्त खरी उतरती है।

संस्कृत में गद्य काव्य के दो भेद हैं– कथा और आख्यायिका। कथा कवि की कल्पना से निर्मित होती है, जबकि आख्यायिका की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। शैली की दृष्टि से दोनों में कोई भिन्नता नहीं होती।

संस्कृत गद्यकाव्य की श्रीवृद्धि करने वाले प्रमुख कवि हैं–

सुबन्धु– अलंकृत शैली में निबद्ध गद्यकाव्य के लेखकों में प्रथम नाम सुबन्धु का लिया जाता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित की प्रस्तावना में इनकी प्रशंसा की है, अतः ये बाण से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। सुबन्धु ने अपने ग्रन्थ में कालिदास एवं कामशास्त्र के रचयिता वात्स्यायन का उल्लेख किया है, अतः सुबन्धु इनसे परवर्ती हुए। बाणभट्ट का समय सप्तम शताब्दी का पूर्वार्ध लगभग निश्चित है। वात्स्यायन का समय पंचम शती है। वात्स्यायन के परवर्ती एवं बाणभट्ट के पूर्ववर्ती होने के कारण सुबन्धु का स्थितिकाल छठी शताब्दी मानना समीचीन प्रतीत होता है।

सुबन्धु की एकमात्र कृति है 'वासवदत्ता'। कवि की कल्पना की उपज इस ग्रन्थ के कथानक में मात्र नायिका का नाम ही इतिहास प्रसिद्ध है, अन्य कुछ भी नहीं। इसका कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है। राजा चिंतामणि का पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु एक सुन्दरी कन्या को स्वप्न में देखता है और अपने मित्र मकरंद के साथ उसकी खोज में निकल जाता है। विंध्य के वन में रात्रि–विश्राम के समय वह वृक्ष पर बैठी मैना से वासवदत्ता द्वारा स्वप्न में कन्दर्पकेतु के दर्शन का वृत्तांत सुनता है। वासवदत्ता की सारिका तमालिका की सहायता से पाटलिपुत्र में नायक–नायिका का मिलन होता है। वासवदत्ता के पिता शृंगार शेखर की अड़चनों से बचने के लिए दोनों जादू के घोड़े पर बैठकर विंध्याचल पहुँच जाते हैं। वहाँ कन्दर्पकेतु को नींद आ जाती है और वासवदत्ता सोते हुए राजकुमार को छोड़कर विंध्य के वनों में घूमने निकल जाती है। आँख खुलने पर वासवदत्ता को न देखने पर कन्दर्पकेतु वियोग में आत्महत्या करने को उद्यत हो जाता है, किन्तु आकाशवाणी उसे इस जघन्य कृत्य से रोक लेती है। वासवदत्ता को खोजने के क्रम में राजकुमार एक शैल प्रतिमा को देखता है, जो उसके स्पर्श करते ही वासवदत्ता बन जाती है। इतने में मकरंद भी आ जाता है। सब राजधानी लौट जाते हैं, जहाँ विवाह करने के पश्चात् वे सुखपूर्वक अपना जीवन जीते हैं।

इस संक्षिप्त कथानक को सुबन्धु ने अपनी कल्पनाशक्ति और वर्णन कौशल से बहुत विस्तृत कर दिया है। नायक एवं नायिका के रूप, गुण, विरह, मिलन, संयोग आदि के वर्णन में सुबन्धु ने अपने कवि–कौशल का यथेष्ट प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी इस कृति को **'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्ध्यनिधि'** बनाने की प्रतिज्ञा का पूर्णरूपेण निर्वाह किया है। इस गद्य काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं विरोध आदि अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु वहाँ भी सुबन्धु का श्लेष–प्रेम ही प्रभावी है, जिससे सहृदय पाठक शाब्दी–क्रीड़ा में उलझकर रसास्वादन से वंचित रह जाता है।

बाणभट्ट– संस्कृत के गद्यकारों के शिरोमणि बाणभट्ट का जीवन परिचय अन्य अनेक कवियों की भाँति प्रच्छन्न और संदिग्ध नहीं है। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'हर्षचरित' के आरम्भ में अपना और अपने वंश का सम्पूर्ण विवरण दिया है। इनका जन्म बिहार राज्य के पश्चिमी भाग में शोणनद के तट पर प्रीतिकूट ग्राम में धर्म एवं विद्या के लिए प्रसिद्ध एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। वात्स्यायन गोत्रीय बाणभट्ट के प्राचीन पूर्वज कुबेर थे। कुबेर के चार पुत्रों में कनिष्ठ पुत्र पशुपति के पुत्र हुए अर्थपति। अर्थपति के पुत्र चित्रभानु और चित्रभानु के पुत्र हुए बाणभट्ट। चित्रभानु सभी शास्त्रों के प्रकांड पंडित थे, किन्तु बाणभट्ट के अल्पवय में ही उनके माता–पिता का स्वर्गवास हो गया था, जिससे इनका आरम्भिक जीवन कुछ अव्यवस्थित हो गया था। विद्यानुरागी कुल में उत्पन्न होने के कारण इन्होंने भी विद्याभ्यास किया था। इनके पास प्रचुर पैतृक संपत्ति थी। अतः इन्होंने अपनी मित्रमंडली के साथ खूब देशाटन किया और जब वापस अपने ग्राम लौटे तो तत्कालीन सम्राट् हर्षवर्धन ने इन्हें बुलवा लिया। बहुत दिनों तक इन्होंने हर्षवर्धन की राजसभा की शोभा बढ़ायी। हर्षवर्धन के समकालीन होने के कारण इनका समय भी सातवीं शताब्दी में सुनिश्चित होता है। इन्होंने 'मुकुटताडितक' नामक नाटक एवं दो सुप्रसिद्ध गद्यकाव्यों 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' की रचना की।

हर्षचरित– यह एक प्रसिद्ध एवं आदर्श आख्यायिका है। आठ उच्छ्वासों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम उच्छ्वास में बाणभट्ट ने अपने वंश का तथा अपनी तरुणाई तक के असंयत जीवन का वर्णन किया है। द्वितीय उच्छ्वास में हर्षवर्धन के चचेरे भाई कृष्ण के संदेश की प्राप्ति, राजसन्निवेश के लिए बाणभट्ट की यात्रा तथा अजिरवती नदी के तट पर मणितारा ग्राम में पड़ी छावनी में हर्ष से बाण की भेंट का वर्णन है। तृतीय उच्छ्वास में अपने घर वापसी, लोगों द्वारा हर्षचरित सुनाने का आग्रह और बाण की स्वीकृति के अनन्तर श्रीकंठ जनपद, राजधानी स्थाणीश्वर, हर्ष के वंश के संस्थापक पुष्पभूति की प्रशस्ति तथा तांत्रिक कार्यों में उनके सहायक भैरवाचार्य का विस्तारपूर्वक वर्णन है। चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पभूति के वंश के संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् सम्राट् प्रभाकरवर्धन, साम्राज्ञी यशोमती का वर्णन और उनकी तीनों संतान राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री के जन्म का वर्णन और मौखरि ग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री के विवाह का वर्णन है। पंचम उच्छ्वास में राज्यवर्धन के हूणों पर आक्रमण, पिता के गंभीर रोग एवं माता के सती होने की खबर पाकर हर्ष के आखेट से लौटने का वर्णन है। षष्ठ उच्छ्वास में मालवनरेश द्वारा मौखरि ग्रहवर्मा की हत्या एवं राज्यश्री के बंदी बनाए जाने का समाचार सुनकर राज्यवर्धन द्वारा प्रतिकार की भावना से मालवनरेश पर आक्रमण तथा विजय के वर्णन के अनंतर गौड़ नरेश शशांक के द्वारा राज्यवर्धन की हत्या और हर्षवर्धन के शोक की गंभीरता का वर्णन है।

तत्पश्चात्, स्कंदगुप्त के परामर्श से हर्षवर्धन द्वारा दिग्विजय की तैयारी का वर्णन है। सप्तम उच्छ्वास में विपरीत परिस्थितियों के बीच हर्षवर्धन के दिग्विजय का रोचक वर्णन है। असम प्रान्त के राजा द्वारा अपने दूत के माध्यम से हर्ष को छत्र भेंट करने का वर्णन भी है। अष्टम् उच्छ्वास में बहन राज्यश्री के बंदीगृह से भागकर विंध्य के जंगलों में कहीं होने की सूचना पाकर हर्ष द्वारा उसके अन्वेषण एवं अग्नि में प्रवेश हेतु उद्यत राज्यश्री को समझा–बुझा कर दिवाकर मित्र के आश्रम में लाने का वर्णन है। यहाँ हर्षवर्धन अपनी बहन को वचन देता है कि दिग्विजय का लक्ष्य पूर्ण करने के बाद वह राज्यश्री के साथ ही कषाय वस्त्र धारण कर संन्यास ग्रहण कर लेगा। कथा यहाँ एकाएक ही समाप्त हो जाती है, जिससे कई विद्वान् इसे अपूर्ण मानते हैं और कई विद्वानों का कथन है कि राज्यश्री की प्राप्ति ही कथा का लक्ष्य था, इसलिए कथा पूर्ण है।

विस्तृत वर्णन, सजीव संवाद, सुन्दर उपमाएं, प्रसंगानुकूल पदावली एवं स्पष्ट रसाभिव्यक्ति जैसी विशिष्टताओं से सम्पन्न, विशुद्ध साहित्यिक शैली में निबद्ध 'हर्षचरित' न केवल आख्यायिकाओं का आदर्श है, अपितु राजा हर्ष के इतिहास प्रसिद्ध जीवन, तत्कालीन समाज के आचार–विचार, वेश–भूषा कला एवं शिल्प आदि का रोचक एवं प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने के कारण इसका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व भी बहुत अधिक है।

कादम्बरी– 'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट गद्य रचना है। इस कथा ग्रन्थ का उपजीव्य है गुणाढ्य की 'बृहत्कथा'। कवि–कल्पित कथानक होने के कारण यह गद्य रचना 'कथा' विधा के अन्तर्गत परिगणित होती है। यह दो खण्डों में विभक्त है– पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में पूरे ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है और यह बाणभट्ट की रचना है, जबकि उत्तरार्द्ध बाणभट्ट के पुत्र पुलिन्दभट्ट अथवा पुलिन भट्ट की रचना है।

'कादम्बरी' में चन्द्रापीड एवं उसके मित्र पुण्डरीक के तीन जन्मों की कथा वर्णित है। कथा के आरम्भ में विदिशा के राजा शूद्रक की राजसभा में चांडालक वैशम्पायन नामक तोते को लेकर आती है। शुक वैशम्पायन राजा को बताता है कि जाबालि ने उसे उसके पूर्वजन्म की कथा सुनाई थी और उस कथा के अनुसार राजा चन्द्रापीड अपने मित्र मंत्रिपुत्र वैशम्पायन के साथ दिग्विजय के लिए निकलता है। हिमालय के क्षेत्र में अच्छोद सरोवर के निकट वह महाश्वेता की वीणा के संगीत से आकृष्ट होकर शिवालय पहुँच जाता है, जहाँ महाश्वेता एवं उसकी सखी कादम्बरी से उसका परिचय होता है। महाश्वेता एक तपस्वी कुमार पुण्डरीक के साथ अपने अधूरे प्रणय की कथा सुनाती है। चन्द्रापीड और कादम्बरी के हृदय में एक–दूसरे के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है, किन्तु अपने पिता तारापीड के द्वारा वापस उज्जयिनी बुला लिए जाने के कारण चन्द्रापीड के प्रणय की पूर्ति नहीं हो पाती है। अपनी राजधानी पहुँचने के बाद चन्द्रापीड को दूती पत्रलेखा के माध्यम से कादम्बरी का प्रणय संदेश मिलता है। यहाँ बाण लिखित कादम्बरी का पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है।

पांचाली रीति में निबद्ध इस ग्रन्थ में रस, छन्द, अलंकार, गुण, रीति आदि समस्त काव्यशास्त्रीय उपादानों का सम्यक् प्रयोग हुआ है। अपनी कल्पनाशक्ति से बाणभट्ट ने कादम्बरी की कथा को अत्यन्त विस्तार प्रदान किया है। विषयानुरूप वर्णन–शैली, शब्द और अर्थ का समुचित गुम्फन, पात्रों का सजीव चित्रण, श्लेष की स्पष्टता, रस की स्फुटता एवं अक्षर की विकटबंधता का दुर्लभ सन्निवेश कादम्बरी को संस्कृत साहित्य में वह स्थान प्रदान करता है, जहाँ आलोचक अनायास कह उठते हैं– 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।'

दण्डी– संस्कृत गद्य साहित्य में दण्डी का विशिष्ट स्थान है। कांची के पल्लवनरेश नरसिंह वर्मा के सभाकवि होने के कारण इनका समय सप्तम शती का अन्त तथा अष्ट शती का आरम्भ निश्चित होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा के आधार पर दण्डी भारवि के प्रपौत्र थे। इनके पिता का नाम वीरदत्त तथा माता का नाम गौरी था। दण्डी की कृति के रूप में तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं– 'काव्यादर्श', 'अवन्तिसुन्दरी कथा' तथा 'दशकुमारचरित'। इनमें काव्यादर्श तो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है और शेष दोनों गद्यकाव्य हैं, जिनमें दशकुमारचरित अधिक प्रसिद्ध है।

दशकुमारचरित– दशकुमारचरित का आख्यान घटना प्रधान है। यह तीन भागों में विभक्त है– पूर्व पीठिका, मूलभाग तथा उत्तर पीठिका। पूर्वपीठिका के पाँच उच्छ्वासों में दो कुमारों के चरित तथा मूलभाग के आठ उच्छ्वासों में आठ कुमारों के चरित वर्णित हैं। उत्तरपीठिका में एक ही उच्छ्वास है, जो ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करता है। तीनों भागों की शैली में पर्याप्त भिन्नता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि तीनों भाग भिन्न–भिन्न ग्रन्थों के अंश हैं अथवा भिन्न–भिन्न कवियों की रचना हैं। संप्रति, अपने इसी स्वरूप में यह ग्रन्थ 'दशकुमारचरित' नाम से प्रसिद्ध है। ग्रन्थ का कथानक इस प्रकार है–

पुष्पपुरी (पाटलिपुत्र) का राजा राजहंस मालवा नरेश मानसार को युद्ध में पराजित कर देता है। युद्ध में पराजित होने के बाद मानसार अपनी कठिन तपस्या से शक्ति सम्पन्न होकर पुष्पपुरी पर आक्रमण कर राजा को हरा देता है। पराजित होकर राजा राजहंस जंगल चला जाता है, जहाँ उसे राजवाहन नामक पुत्र की प्राप्ति होती है। राजहंस के मंत्रियों के भी पुत्रों का जन्म होता है। ये सभी कुमार बड़े होकर यात्रा पर निकलते हैं और भिन्न–भिन्न देशों में पहुँच जाते हैं जहाँ उन्हें अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ता है। कुछ अवधि बीतने पर वे पुनः राजवाहन से मिलते हैं और सब अपनी आपबीती सुनाते हैं। दशकुमार चरित में इन्हीं कुमारों की साहसिकता का वर्णन है। इसी क्रम में दण्डी तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का सुन्दर चित्रण करते हैं।

दशकुमारचरित की साहित्यिक विशिष्टताएं इसे संस्कृत गद्य काव्य में अन्यतम स्थान प्रदान करती हैं। दण्डी की गद्य शैली न तो सुबन्धु की श्लेषमयी शैली का अनुकरण करती है और न ही बाणभट्ट की समासबहुलता और गाढ़बंधता का। इनकी भाषा सरल, सुबोध एवं प्रवाहपूर्ण है। दण्डी के गद्य में अर्थ की स्पष्टता, सुन्दर रसाभिव्यक्ति तथा पद के लालित्य के कारण ही विद्वानों के समाज में 'दण्डिनः पदलालित्यम्' की उक्ति प्रचलित है।

धनपाल– संस्कृत गद्य साहित्यकारों में धनपाल का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इनका जन्म उज्जैन के एक काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम सर्वदेव था। जैन मुनि वर्धमान सूरि के कहने से इनके पिता ने अपने एक पुत्र के जैनधर्म में दीक्षित होने की बात स्वीकार कर ली थी। धनपाल जब इस बात के लिए सहमत नहीं हुए तो इनके अनुज शोभन को जैनधर्म में दीक्षित होना पड़ा। तत्पश्चात् शोभन के उपदेश से ही इन्होंने भी जैनधर्म को स्वीकार कर लिया था।

धनपाल धारानरेश मुञ्ज के सभापंडित थे। राजा मुञ्ज ने इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि दी थी। मुञ्ज के पश्चात् इन्होंने उनके उत्तराधिकारी भोजराज की सभा की शोभा भी बढ़ाई। राजा मुञ्ज के समकालीन होने के कारण इनका समय दसवीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनकी कृतियां हैं– 'तिलकमञ्जरी', 'ऋषभपंचाशिका' और 'पाइउलच्छी नाममाला'। 'ऋषभपंचाशिका' और 'पाइउलच्छी' नाममाला' तो इनकी छोटी रचनाएं हैं, इनकी कीर्ति का आधार 'तिलकमञ्जरी' ही है।

तिलकमञ्जरी की कथा का ऐतिहासिक महत्व है। इस ग्रन्थ में धनपाल ने हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की प्रेमकथा का वर्णन किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में धनपाल ने परमार वंश की उत्पत्ति का वर्णन किया है। तिलकमञ्जरी के अनुसार परमार वंश का वंशवृक्ष इस प्रकार प्राप्त होता है– (1) वैरीसिंह, (2) श्री सियाक अथवा श्री हर्ष, (3) श्री सिंधुराजा तथा उनके बड़े भाई वाक्पति मुञ्ज और (4) श्री भोज। इस वंशवृक्ष में धनपाल ने परमार वंश के इतिहास प्रसिद्ध राजाओं का ही उल्लेख किया है। परमार वंश के इस वंशवृक्ष के अतिरिक्त कवि ने सूर्यवंश के वंशवृक्ष का भी वर्णन किया है, जिसमें इक्ष्वाकु से लेकर भगवान् रामचन्द्र तक राजाओं का उल्लेख है। इसी वंश से परमार वंश का उद्भव वर्णित है। तिलकमञ्जरी में धनपाल ने अग्निकुंड से उत्पन्न अग्निवंश और सूर्यवंशी इक्ष्वाकु कुल दोनों से परमार वंश की उत्पत्ति का संबंध बताया है।

धनपाल ने बाणभट्ट की शैली का अनुसरण अवश्य किया है, किन्तु इनकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक सुबोध एवं प्रवाहमयी है। अलंकारों के प्रयोग में ये बाणभट्ट से बहुत समानता रखते हैं, परन्तु दीर्घ समासों के प्रयोग में बाणभट्ट की तरह इनकी रुचि नहीं है। प्रसंगानुरूप भाषा तथा शैली के विन्यास में कुशल धनपाल की लेखनी की प्राञ्जलता सहृदयों के मन को अवश्यमेव मुग्ध करती है।

अम्बिकादत्त व्यास– आधुनिक समय के संस्कृत गद्य साहित्य के गौरवग्रन्थ 'शिवराजविजय' के रचयिता अम्बिकादत्त व्यास का जन्म सन् 1848 ई. में जयपुर में हुआ था। इनका कार्यक्षेत्र बिहार था। विलक्षण प्रतिभा के धनी अम्बिकादत्त व्यास भारतेंदु युग के सम्मानित कवि एवं लेखक थे। न्याय एवं वेदांतदर्शन के विद्वान् व्यास संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी एवं बांग्ला आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली हिंदी में भी अनेक रचनाएं की। अम्बिकादत्त व्यास सितार, हारमोनियम, जलतरंग और सतरंग बजाने के साथ–साथ ताश और शतरंज खेलने में भी कुशल थे। सन् 1900 ई. में बावन वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हो गयी। संस्कृत साहित्य जगत में इनकी कीर्ति का आधार है 'शिवराजविजय'।

शिवराजविजय– आधुनिक उपन्यास शैली में निबद्ध इस गद्य काव्य का वर्ण्य विषय है छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित। इसमें बारह निःश्वास हैं। इस ग्रन्थ में वीर शिवाजी के ऐतिहासिक चरित्र का सांगोपांग वर्णन किया गया है। साथ ही, औरंगजेब, यशवंत सिंह तथा अफजल खां जैसे ऐतिहासिक पात्रों का चित्रण भी इसमें प्राप्त होता है। इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं के वर्णन को प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए कवि ने यत्र–तत्र कल्पना का सहारा भी लिया है। राष्ट्रभक्ति की भावना से ओत–प्रोत इस ग्रन्थ की भाषा सरल एवं सुबोध है।

संस्कृत साहित्य के इन प्रसिद्ध गद्य ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेखनीय गद्य काव्य हैं– दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरी कथा', सोड्ढल की 'उदयसुन्दरी कथा', वादीभ सिंह कृत 'गद्यचिन्तामणि', वामनभट्टबाण रचित 'वेमभूपालचरित', विश्वेश्वर पाण्डेय की 'मन्दारमञ्जरी' तथा पंडित क्षमाराव की 'कथामुक्तावली' एवं 'विचित्रपरिषद्यात्रा' आदि।

अपनी प्रगति जांचिए

5. कथा और आख्यायिका किसके भेद बताए गए हैं?
   (क) गद्यकाव्य के (ख) पद्यकाव्य के
   (ग) चम्पूकाव्य के (घ) महाकाव्य के

4.5 कथा साहित्य

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आर्यावर्त अथवा भारतभूमि कथा की जन्मभूमि है। ऋग्वेद जो कि न केवल भारत का अपितु विश्व का पहला एवं प्राचीनतम साहित्य – ग्रन्थ है, जिसकी रचना ईसा से कुछ हजार वर्ष पूर्व हो गयी थी। इसी ऋग्वेद में इन्द्र सूक्त है , बल्कि यदि हम यह कहें कि इन्द्र उस काल का महानायक था, तो यह उचित ही होगा। इन्द्र को लेकर ही ऋग्वैदिक समाज में अनेक मिथक या किंवदन्तियाँ गढ़ी जा चुकी थीं। कहानी इन मिथकों और कथाओं में अन्तर्गर्भित थी। इन्द्र की चरितगाथा अपने आप में एक औपन्यासिक विस्तार को समेटे हुए कहानी का ढाँचा सामने रखती है।

ऋग्वेद के लगभग एक–चौथाई सूक्त इन्द्र से सम्बन्धित हैं। 250 सूक्तों के अतिरिक्त 50 से अधिक मन्त्रों में उसका स्तवन प्राप्त होता है।वह ऋग्वेद का सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण देवता है। उसे आर्यों का राष्ट्रीय देवता भी कह सकते हैं। मुख्य रूप से वह वर्षा का देवता है जो कि अनावृष्टि अथवा अन्धकार रूपी दैत्य से युद्ध करता है तथा अवरुद्ध जल को अथवा प्रकाश को विनिर्मुक्त बना देता है। वह गौण रूप से आर्यों का युद्ध–देवता भी है, जो आदिवासियों के साथ युद्ध में उन आर्यों की सहायता करता है। इन्द्र का मानवाकृतिरूपेण चित्रण दर्शनीय है। उसके विशाल शरीर, शीर्ष भुजाओं और बड़े उदर का बहुधा उल्लेख प्राप्त होता है। उसके अधरों और जबड़ों का भी वर्णन मिलता है। उसका वर्ण केश हरित व दाढ़ी भी हरित्वर्णा है। वह स्वेच्छा से विविध रूप धारण कर सकता है। ऋग्वेद इन्द्र के जन्म पर भी प्रकाश डालता है। पूरे दो सूक्त इन्द्र के जन्म से ही सम्बन्धित हैं। 'निष्टिग्री' अथवा 'शवसी' नामक गाय

को उसकी माँ बताया गया है। उसके पिता 'द्यौः' या 'त्वष्टा' हैं। एक स्थल पर उसे 'सोम' से उत्पन्न कहा गया है। उसके जन्म के समय द्यावापृथिवी काँप उठी थी। इन्द्र के जन्म को विद्युत् के मेघ–विच्युत होने का प्रतीक माना जा सकता है। अग्नि और पूषन् उसके भाई हैं। इसी प्रकार इन्द्राणी उसकी पत्नी है। संभवतः इन्द्राणी नाम परम्परित रूप से पुरुष (पति) के नाम का स्त्रीवाची बनाने से ही है, मूल नाम कुछ और (शची) हो सकता है। मरुद्गण उसके मित्र तथा सहायक हैं। उसे वरुण, वायु, सोम, बृहस्पति, पूषन् और विष्णु के साथ युग्मरूप में भी कल्पित किया गया है। तीन चार सूक्तों में वह सूर्य का प्रतिरूप है। सोमरस इन्द्र का परम प्रिय पेय है। वह विकट रूप से सोमरस का पान करता है। उससे उसे स्फूर्ति मिलती है। इन्द्र का प्रसिद्ध आयुध 'वज्र' है, जिसे कि विद्युत्प्रहार से अभिन्न माना जा सकता है। इन्द्र के वज्र का निर्माण 'त्वष्टा' नामक देवता–विशेष द्वारा किया गया था। इन्द्र को कभी–कभी धनुष–बाण और अंकुश से युक्त भी बतलाया गया है। उसका रथ स्वर्णाभ है। इन्द्र ने कम्पायमान भूतल और चलायमान पर्वतों को स्थिर बनाया है। चमड़े के समान उसने द्यावापृथिवी को फैला कर रख दिया है। जिस प्रकार एक धुरी से दोनों पहिये निकाल दिये जायँ, उसी प्रकार उसने द्युलोक और पृथ्वी को पृथक् कर दिया है। इन्द्र बड़े उग्र स्वभाव का है। स्वर्ग की शान्ति को भंग करने वाला वही एकमात्र देवता है। अनेक देवताओं से उसने युद्ध किया। उषस् के रथ को उसने भंग किया, सूर्य के रथ का एक चक्र उसने चुराया, अपने अनुयायी मरुतों को उसने मार डालने की धमकी दी। अपने पिता 'त्वष्टा' को उसने मार ही डाला। अनेक दैत्यों को भी उसने पराजित और विनष्ट किया, जिसमें से वृत्र, अहि, शम्बर, रौहिण के अतिरिक्त उरण विश्वरूप, अर्बुद, बल, व्यंश और नमुचि प्रमुख हैं। आर्यों के शत्रुभूत दासों अथवा दस्युओं को भी उसने युद्धों में पराभूत किया। कम से कम 50000 अनार्यों का विनाश उसके द्वारा किया गया।

निश्चय ही इन्द्र विषयक यह सूक्त भारतीय आख्यान–परम्परा की पीठिका प्रस्तुत करता है। आख्यान अथवा भारतीय कहानी का यह एक रूप है, जो पुराकथा के मिथकीय और प्रतीकात्मक पर्यावरण में भी जीवन के स्पन्दन से युक्त है। इन्द्र की चरित–गाथा में कल्पनाशीलता, कथा का रहस्य और रोमांच, किस्सागोई की भंगिमा और मानवीय सम्बन्धों की परिकल्पना मिलती है। उपज के तत्त्व द्वारा कहानी को आकर्षक और रोमांचक भी बनाया गया है।

इस प्रकार की पुराकथाओं में मिथक के साथ–साथ इतिहास भी मिला हुआ है। वे पौराणिक आख्यानों के साथ–साथ ऐतिहासिक कथाओं की भी परम्परा का सूत्रपात करती हैं। उस समय के पराक्रमी अथवा यशस्वी राजाओं को लेकर आख्यानों या कथाओं की रचना का जो उपक्रम वैदिक काल में हुआ, उसने भारतीय कहानी और प्रबन्ध–साहित्य की उर्वर भूमि तैयार की। पुरूरवा और उर्वशी की प्रणयकथा उस समय की ऐसी ही लोकप्रिय कहानियों में से रही होगी, जिसमें ऐतिहासिकता का पुट भी है, मिथकशास्त्र भी जुड़ा हुआ है और लोककथा का आधार भी है। ऋग्वेद में एक सूक्त में पुरूरवा और उर्वशी का संवाद निबद्ध है, पर यह संवाद जिस प्रसंग में हो रहा है, उसकी पूर्वकथा पर वहाँ प्रकाश नहीं डाला गया है। यह कथा शतपथ ब्राह्मण में बतायी गयी है। ऋग्वेद के उक्त संवादसूक्त और शतपथ ब्राह्मण में उसकी कथा–इन दोनों को मिलाकर वैदिक काल की इस लोकप्रिय कथा का पूरा स्वरूप सामने आ जाता है, जो भारतीय कथा साहित्य की प्राचीनतम धरोहर है। इसलिए इस

संकलन में ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण से अनूदित पुरूरवा और उर्वशी की कथा को सबसे पहले रखा गया है।

इस प्रकार ऋग्वेद काल से आख्यान या कथा की जो परम्परा हमारे देश में प्रारम्भ हुई, उसमें पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक पक्षों को बराबर स्थान मिला। इसलिए अथर्ववेद में इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी–इन चार लोकप्रिय विधाओं का उल्लेख किया गया है। इनमें से इतिहास का सम्बन्ध अतीत से, पुराण का मिथक अथवा अलौकिक वृत्त से तथा गाथा और नाराशंसी का सम्बन्ध समकालीन मनुष्य–जीवन से है।

वैदिक संहिताओं (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) के पश्चात् आख्यान और इतिहास–पुराण की परम्परा का विस्तार लगभग 1000 ई.पू. तक ब्राह्मण–ग्रन्थों के द्वारा होता रहा। शाबरभाष्य में ब्राह्मण–ग्रन्थों की दस विधियाँ बतायी गयी हैं, जिनमें उनके वर्ण्य–विषयों का समावेश हो जाता है – हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण–कल्पना तथा उपमान। इनमें से निन्दा और प्रशंसा दोनों के लिए अर्थवाद की प्रविधि का उपयोग किया जाता है और अर्थवाद का सम्बन्ध इतिहास, आख्यान और पुराणों से जुड़ता है। इस प्रकार ब्राह्मण–ग्रन्थों में यज्ञों की विधियाँ बताने के प्रसंग में अर्थवाद की दृष्टि से इतिहास, पुराण या आख्यानों की कहानियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, जिनसे कथा कहने की प्राचीन शैली का पहली बार परिचय मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में पुरूरवा और उर्वशी की कथा इसी प्रकार आयी है। इसी तरह मैत्रायणी संहिता में रात्रि और पर्वतों के पंखों को लेकर दो सुन्दर कहानियाँ मिलती हैं।

सृष्टि के बारे में भी अनेक कथाएँ ब्राह्मण–ग्रन्थों में मिलती हैं। इन कथाओं में मनुष्य जाति की जीवन और जगत् के विषय में प्राचीनतम परिकल्पनाएँ सामने आती हैं। दूसरे देशों में प्रचलित सृष्टि और प्रलय के विषय की पुरानी कथाओं से इनकी रोचक तुलना हो सकती है। निश्चय ही हमारे देश में कहानी की जो प्राचीन परम्परा आरम्भ हुई, उसने अन्य देशों की भी यात्रा की। सिन्दबाद और ईसप की कथाओं का मूल भारतवर्ष माना जाता है, और पंचतन्त्र की विश्वयात्रा तो विदित ही है।

वैदिक साहित्य के समानान्तर आख्यान या प्राचीन कथाओं का जो लोकप्रिय साहित्य विकसित हो रहा था, उसकी परिणति रामायण, महाभारत तथा पुराणों के रूप में ईसा से पहले की कुछ सदियों में होने लगी थी। पाणिनि (500 ई.पू.) ने आख्यान और आख्यायिका का इतिहास और पुराण के साथ उल्लेख किया है। पतञ्जलि (दूसरी सदी ई.पू.) ने वासवदत्ता, समनोत्तरा और भैमरथी–इन तीन आख्यायिकाओं का नाम–निर्देश किया है। उस युग में ये तीन आख्यायिकाएँ लिखी गयी थीं पर अब ये प्राप्त नहीं होतीं।

आख्यान, उपाख्यान, आख्यायिका आदि उस समय की लोकप्रिय कथाओं के रूप थे, जिन्हें सूत, मागध, चारण या कुशी–लव लोगों के सामने गा–गाकर अथवा कह कर प्रस्तुत करते थे। आगे चलकर जब इन कथारूपों का परिष्कृत साहित्य की विधाओं में उपयोग किया गया, तो संस्कृत साहित्य में कथा और आख्यायिका इन दो कथा विधाओं का विकास हुआ। बाद में आख्यान, उपाख्यान आदि का लक्षण भी कुछ

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने निर्धारित करने का प्रयास किया। भोज के अनुसार आख्यान, उपाख्यान का भी अभिनय, पाठ और गायन के साथ प्रस्तुत किया हुआ रूप है और इसकी प्रस्तुति किसी ग्रन्थ से इसे पढ़–पढ़कर की जाती है।

ऋग्वेद की मन्त्रसंहिता में अनेक रोचक कहानियों की सूचना मिलती है जिनका परिबृंहण शौनक ने 'बृहद्देवता' में, षड्गुरुशिष्य ने 'कात्यायनसर्वानुक्रमणी' की वेदार्थदीपिका में, यास्क ने निरुक्त में, सायण ने अपने वेदभाष्यों में तथा स्याद्विवेद ने नीति मञ्जरी (रचनाकाल 15वीं शती का अन्त) में किया है। यहीं से ये कथाएँ पुराणों के माध्यम से होकर जनता के मनोरंजन तथा शिक्षण के निमित्त लौकिक संस्कृत साहित्य में अवतीर्ण हुई।

भोज ने उपाख्यान का लक्षण बताते हुए कहा है कि किसी प्रबन्ध (सम्पूर्ण ग्रन्थ) के भीतर किसी को उपदेश देने के लिए दृष्टान्त के रूप में कही गयी कथा उपाख्यान है। नल–दमयन्ती की कथा, सावित्री–सत्यवान् की कथा–इस प्रकार की कथाएँ इसके उदाहरण हैं।

महाभारत भारतीय उपाख्यान परम्परा का एक महाकोश है। वाचिक परम्परा में प्रचलित सहस्रों कहानियाँ इसमें समाविष्ट कर ली गयी हैं। इनमें से नलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान आदि ऐसी कथाएँ हैं, जो अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे समाज में बहुत लोकप्रिय रही हैं। इन उपाख्यानों को अनेक पुराणों तथा संस्कृत के बहुत प्रबन्ध–काव्यों में बार–बार प्रस्तुत किया गया है, पर जिस आदिम रस–गन्ध और विशद रूप के साथ ये महाभारत में आये हैं, वह भारतीय कथासाहित्य की अमूल्य निधि है। अतएव भारतीय कथा की परम्परा के इस प्रतिनिधि चयन में महाभारत से ऐसे उपाख्यानों का संकलन उचित ही है।

प्राचीन काल से ही भारतीय–कथा परम्परा असंख्य धाराओं में प्रवाहित होती रही है और उसके सारे प्रवाह महाभारत के महासागर में भी नहीं समा सके। प्राचीन महापुरुषों या महानायकों को लेकर कहानियाँ कहने की जो परम्परा वैदिक काल में शुरू हुई थी, वह कथा चक्रों के रूप में बाद में और विपुल आयाम धारण करती रही। ईसा पूर्व की सदियों में उदयन, विक्रमादित्य, सातवाहन और शूद्रक (?) ऐसे राजा हुए जिन्हें लेकर कथाओं की कई श्रृंखलाएँ हमारे यहाँ प्रचलित हो गयीं। इनमें कुछ राजाओं की कथाएँ बाद में कुछ महाकवियों ने भी अपने महाकाव्यों या नाटकों के लिए लीं।

महाभारत के पश्चात् भारतीय–कथा परम्परा की महास्रोतस्विनी बृहत्कथा के रूप में प्रवाहित हुई। बृहत्कथा में कहानी ने अपना सहज रूप पाया, वह जन–जन के मन में रमी, समाज में कही–सुनी जाने वाली कथाओं से जुड़कर आगे बढ़ी। रामायण और महाभारत के पश्चात् बृहत्कथा कदाचित् भारतीय साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित और अनुप्राणित करने वाला ग्रन्थ है। इसके लेखक गुणाढ्य अपने आप में एक किंवदन्ती बन गए, और उनकी कृति को रामायण और महाभारत के बाद संस्कृत साहित्य में एक उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में सबसे अधिक आदर भी मिला। स्वयं गुणाढ्य को हमारी साहित्यिक परम्परा व्यास और वाल्मीकि के बराबर पूज्य मानती आयी है।

कथाओं के मूल स्रोत की खोज के लिए वैदिक संहिताओं का अनुशीलन आवश्यक है। इस साहित्य के प्रधान ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है –

पञ्चतन्त्र

संस्कृत की कहानियों का यही सर्वश्रेष्ठ तथा प्राचीन संग्रह है। ग्रन्थकार का उद्देश्य आरम्भ से ही रोचक कथाओं के द्वारा नीति तथा सदाचार का शिक्षण रहा है। दक्षिण में महिलारोप्य नामक नगर में अमरकीर्ति राजा के मूर्ख पुत्रों को नीति तथा व्यवहार की शिक्षा देने के लिए विष्णु शर्मा ने इस ग्रन्थरत्न का प्रणयन किया। इसके अनेक संस्करण भिन्न–भिन्न शताब्दियों में तथा भारत के भिन्न–भिन्न प्रांतों में होते रहे हैं जिनका सांगोपांग अध्ययन कर जर्मनी के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ डॉ. हर्टेल् ने इसके विकास की चार श्रेणियाँ बताई हैं। पञ्चतन्त्र का सबसे प्राचीन रूप 'तंत्राख्यायिका' में सुरक्षित है जिसका मूल स्थान कश्मीर है। पञ्चतन्त्र के विभिन्न चार संस्करण आज उपलब्ध हैं–1. पञ्चतन्त्र का पहलवी (पुरानी फारसी) अनुवाद, 2. गुणाढय की बृहत्कथा में अंतर्निविष्ट रूप, 3. दक्षिणी पञ्चतन्त्र, नेपाली पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश के द्वारा निर्दिष्ट संस्करण, 4. वर्तमान परिवर्धित जैन संस्करण। तंत्राख्यायिका या 'तंत्राख्यान' में कथाओं की रूपरेखा बहुत ही परिमित है। नीतिमय पद्यों का संकलन बहुत ही संक्षिप्त तथा औचित्यपूर्ण है। पहलवी अनुवाद का यही मूल रूप है जिसकी रचना चतुर्थ शती में की गई थी। आजकल उपलब्ध पञ्चतन्त्र पूर्णभद्र नामक जैन विद्वान् के परिबृंहण और परिवर्धन का परिणत फल है। इन्होंने 1255 विक्रमी (1199 ई.) में मूल ग्रन्थ का आमूल संशोधन किया तथा नीति के पद्यों का समावेश कर इसे पूर्ण बनाया। पञ्चतन्त्र से प्राचीनतर कहानियों का संग्रह 'बौद्ध जातकों' में उपलब्ध होता है जो संख्या में 550 हैं तथा जिनमें भगवान् बुद्ध के प्राचीन जन्मों की कथाएँ दी हैं और जो मूलतः पालि भाषा में हैं।

इन कहानियों का रूपगत वैशिष्टय यह है कि एक बड़ी कहानी के भीतर छोटी कहानियाँ एक के भीतर एक उसी रूप में गूँथी गई हैं जिस प्रकार चीन देश के बाक्स में बड़े बाक्स के भीतर छोटे बाक्स एक के भीतर एक बनाए जाते हैं। पञ्चतन्त्र के पाँचों प्रकरणों में पाँच ही मुख्य कहानियाँ हैं जिनके भीतर अवान्तर कहानियाँ प्रसंग के अनुसार निविष्ट की गई हैं।

हितोपदेश

यह संस्कृत के कथासाहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। रोचक होने के अतिरिक्त भाषा की दृष्टि से इतना सरल तथा सुबोध है कि भारत में तथा पश्चिमी देशों में संस्कृत भाषा सीखने के लिए यह पहली पुस्तक है। इसके रचयिता नारायण पंडित है जिनके आश्रयदाता बंगाल के राजा धवलचंद्र थे। रचना का काल 14वीं शती है।

बृहत्कथा

यह पैशाची भाषा में निबद्ध प्राचीन ग्रन्थ है जिसकी कहानियों की जानकारी हमें इसके संस्कृत अनुवादों से होती है (गुणाढय)।

कहानियों का यह विराट् संकलन गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृत में लगभग पहली शताब्दी ईसवी पूर्व में तैयार किया था, जो बाद में लुप्त हो गया। बृहत्कथा की लोकप्रियता का पता इस बात से चलता है कि संस्कृत में इसके अनेक रूपान्तर तैयार किये जाते रहे और प्राकृत की कदाचित् यही ऐसी कृति है, जिसका संस्कृत में कई रचनाकारों ने अलग–अलग अनुवाद या रूपान्तर प्राचीन काल में किया। बृहत्कथा के कम से कम चार पुराने रूपान्तरों का पता चलता है – क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी,

सोमदेव का कथासरित्सागर, बुधस्वामी का बृहत्कथाश्लोकसंग्रह तथा वामनभट्ट की बृहत्कथामञ्जरी (अपूर्ण प्राप्त)। इनके अतिरिक्त प्राकृत में ही संघदासगणि ने वसुदेवहिण्डी नाम से बृहत्कथा का एक नया रूपान्तर भी तैयार किया। इन रूपान्तरों में बुधस्वामी का बृहत्कथाश्लोकसंग्रह काफी पुराना (लगभग पाँचवीं सदी ई.) माना जाता है और संघदासगणि का रूपान्तर उसके कुछ समय बाद का। क्षेमेन्द्र और सोमदेव दोनों कश्मीर के हैं तथा लगभग समकालीन हैं। दोनों का समय ग्यारहवीं–बारहवीं सदी के आसपास है।

बुधस्वामी का रूपान्तर बृहत्कथा के नेपाली संस्करण पर आधारित कहा गया है तथा वामनभट्ट का उसके दक्षिणी संस्करण पर, जबकि क्षेमेन्द्र और सोमदेव के सामने बृहत्कथा का कश्मीर में प्रचलित स्वरूप रहा होगा। ऐसा लगता है कि ईसा के बाद की सदियों में रामायण और महाभारत या पुराणों के ही समान बृहत्कथा के भी देश के अलग–अलग भागों में अलग–अलग प्रारूप चल पड़े थे। सभी रूपान्तरों में बृहत्कथा की मूल कथा योजना एक समान है, परन्तु अवान्तर कथाओं तथा कथाओं के विन्यास की दृष्टि से कुछ भिन्नता है।

बृहत्कथा का हमारी साहित्यिक परम्परा में कितना महत्त्व था, यह गुणाढ्य तथा उनकी रचना के विषय में संस्कृत के अनेक गणमान्य कवियों द्वारा प्रकट किये गए उद्गारों से विदित होता है। उद्योतन सूरि ने 779 ई. में रचित अपनी कुवलयमाला कथा के आरम्भ में बृहत्कथा की प्रशंसा करते हुए कहा है – ''बृहत्कथा क्या है, साक्षात् सरस्वती है। गुणाढ्य स्वयं ब्रह्म हैं। यह कथा ग्रन्थ समस्त कलाओं की खान है। कविजन इसे पढ़कर रचनाकर्म में प्रशिक्षित होते हैं।'' सातवीं सदी के संस्कृत के महान् गद्यकार महाकवि बाण ने बृहत्कथा की तुलना शिवलीला से की है। ग्यारहवीं सदी के कवि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी में बृहत्कथा की उपमा उस समुद्र से दी है, जिसकी एक–एक बूँद से कितनी ही कथाएँ उपजती हैं। बृहत्कथा का अध्ययन करना तथा उसका रूपान्तर तैयार करना प्राचीन काल में गौरव की बात समझी जाती थी। कोल्लार क्षेत्र के गुम्मारेड्डीपुर से प्राप्त एक ताम्रपत्र में छठी सदी के पूर्वार्ध के एक शासक राजा दुर्विनीत के सम्बन्ध में बताया गया है कि उस राजा ने एक व्याकरण, किरातार्जुनीय–महाकाव्य के पन्द्रह सर्गों की टीका तथा बृहत्कथा का संस्कृत में एक रूपान्तर तैयार किया था। बृहत्कथा की ख्याति भारतवर्ष के बाहर अथवा बृहत्तर भारत में भी फैली हुई थी। काम्बोज के राजा यशोवर्मन् के शिलालेखों में तीन बार गुणाढ्य का उल्लेख किया गया है।

क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव ने अपने रूपान्तरों में बृहत्कथा के लेखक गुणाढ्य के विषय में अनुश्रुतियों से प्राप्त कुछ जानकारी दी है। इसके अनुसार गुणाढ्य का जन्म गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठान नगर में हुआ था। उस समय प्रतिष्ठान नगर सातवाहन सम्राट् हाल की राजधानी थी, जिनका समय पहली सदी ई. माना जाता है।

बृहत्कथा की उत्पत्ति को लेकर अपने आप में एक रोचक मिथकीय कथा प्राचीनकाल से ही चल पड़ी थी, जिसका विवरण इसके रूपान्तरकारों ने दिया है। कथासरित्सागर के लेखक सोमदेव के अनुसार यह कथा इस प्रकार है – ''एक बार भगवान् शिव पार्वती को कथाएँ सुनाने बैठे और उन्होंने विद्याधर–चक्रवर्तियों की सात आश्चर्यजनक कथाएँ पार्वती को सुनायीं। यद्यपि ये कथाएँ उन्होंने नितान्त एकान्त में ही पार्वती के आगे कही थीं, पर चोरी से उनके एक अनुचर पुष्पदन्त ने छिपकर उन्हें

सुन लिया। उसने अपनी जया को वे कहानियाँ सुनायीं। जया ने वे कहानियाँ अपनी सखियों के आगे कह दीं। तब होते–होते कहानियों की चर्चा पार्वती जी के आगे भी आ गयी और जब पता चला कि पुष्पदन्त ने छिपकर वे कहानियाँ सुनी हैं, तो पार्वती ने कुपित होकर पुष्पदन्त को मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप दे दिया। पुष्पदन्त के भाई माल्यवान् ने उसकी ओर से क्षमा माँगी पर पार्वती इतनी कुपित थीं कि उन्होंने पुष्पदन्त की ओर से क्षमायाचना करने वाले माल्यवान् को भी वही शाप दे डाला। पुष्पदन्त की पत्नी जया पार्वती की परिचारिका थी। उसका दुःख देखकर बाद में पार्वती को करुणा आयी। तब उन्होंने अपने शाप का परिहार करते हुए कहा कि जब पुष्पदन्त मर्त्ययोनि में विन्ध्याचल पर्वत पर काणभूति से मिलेगा और उसे वे ही कथाएँ सुना देगा, जो उसने चोरी से सुनी हैं, तो उसके शाप की मुक्ति हो जाएगी तथा मर्त्ययोनि में वह अपना वास्तविक परिचय नहीं भूलेगा। इसी प्रकार माल्यवान् भी काणभूति से इन कथाओं को सुनेगा और इनका लोक में प्रचार करेगा, तब फिर वह शिवलोक में लौट आएगा।'' पार्वती के शाप के अनुसार पुष्पदन्त ने कौशाम्बी नगरी में वररुचि (कात्यायन) के रूप में अवतार लिया और वह महान् वैयाकरण तथा नन्दवंश के अन्तिम राजा योगनन्द का मन्त्री बना। जीवन के उत्तरार्ध में वैरागी होकर वह विन्ध्याचल की विन्ध्यवासिनी देवी की यात्रा में पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट काणभूति से हुई। उसे अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी और उसने काणभूति को वे सातों बृहत्कथाएँ सुनायीं। वह शापमुक्त होकर शिवलोक आ गया। उसके भाई माल्यवान् ने प्रतिष्ठानपुरी में गुणाढ्य के रूप में जन्म लिया था। वह वहाँ के राजा सातवाहन का मन्त्री बना। उसके दो शिष्य हुए – गुणदेव और नन्दिदेव। इन दोनों को लेकर वह काणभूति के पास आया और काणभूति से सातों बृहत्कथाएँ प्राप्त कर उसने उनको एक–एक को एक–एक लाख श्लोकों में अपने रक्त से लिखा। तत्पश्चात् अपने शिष्यों के आग्रह पर उसने वे बृहत्कथाएँ राजा सातवाहन के पास भेजीं, जिससे उस महाग्रन्थ को समुचित आदर और सुरक्षा मिल सके। किन्तु राजा को वे कथाएँ पसन्द न आयीं, क्योंकि वे प्राकृत भाषा (पैशाची प्राकृत) में लिखी गयी थीं। इससे गुणाढ्य को बड़ा आघात लगा। जब राजा के द्वारा अनादृत पोथी उसके सामने आयी तो उसने उसका एक–एक पृष्ठ पढ़ते–पढ़ते आग में जलाना शुरू किया। जंगल के सारे पक्षी एकत्र होकर उसके द्वारा पढ़ी जाती उन कहानियों को मुग्ध होकर सुनते रहे। उसके कारण राजा सातवाहन को पक्षियों का अच्छा मांस मिलना बन्द हो गया और जब उसने इसका कारण पता लगवाया, तो उसे अपने द्वारा बृहत्कथाओं के किये गए अनादर पर पश्चात्ताप हुआ। किन्तु तब तक गुणाढ्य अपनी बृहत्कथा के छह खण्ड जला चुके थे। सातवाहन ने वहाँ पहुँचकर उन्हें शेष अंश जलाने से रोका। इस प्रकार बृहत्कथा का एक लाख श्लोकों का केवल सातवाँ खण्ड ही बच सका।

वास्तव में बृहत्कथा भारतीय कथा साहित्य की एक अमूल्य निधि रही है। अपने मूल में अप्राप्य होकर भी अनेक रूपान्तरों के माध्यम से परवर्ती काल में भी वह उतनी ही लोकप्रिय बनी रही। इन रूपान्तरों में सोमदेव का कथासरित्सागर कथानक की प्रस्तुति की दृष्टि से तथा वर्णन शैली, विदग्धता और कविप्रतिभा के योग के कारण सबसे अधिक सुपाठ्य और रोचक है। अतः इस संकलन में बृहत्कथा परम्परा की कथाओं के परिचय के लिए कथासरित्सागर से ही चार कथाएँ चुनी गयी हैं।

बृहत्कथा में भारतीय कहानी का एक विशेष स्वरूप परिलक्षित होता है, जिसमें एक कहानी के भीतर से दूसरी तथा दूसरी के भीतर से तीसरी निकलती जाती है और

इस प्रकार कहानियों की श्रृंखला बन जाती है। पंचतन्त्र तथा संस्कृत के अन्य कथा ग्रन्थों में भी कहानी की इस विशिष्ट शैली का प्रयोग हुआ है, जिसमें एक कहानी का कोई पात्र दूसरे पात्र को कोई और कहानी प्रसंगवश सुनाने लगता है अथवा कोई पात्र अपनी आपबीती बताते हुए एक अलग कथा संसार रच लेता है।

बृहत्कथा की परम्परा में परवर्ती युग में विपुल कथा साहित्य लिखा जाता रहा है। वेतालपंचविंशति, शुकसप्तति, सिंहासनद्वात्रिंशिका, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ऐसी कथा रचनाएँ हैं, जिनके संस्कृत में ही कई–कई संस्करण प्राचीन काल से ही प्रचलित रहे हैं और लोकथाओं तथा लोकसाहित्य की परम्परा से भी ये रचनाएँ गहराई से जुड़ी रही हैं। वेतालपंचविंशति वेतालपचीसी के रूप में, शुकसप्तति कथा तोता–मैना के रूप में तथा सिंहासनद्वात्रिंशिका सिंहासनबत्तीसी के रूप में लोक भाषाओं में रूपान्तरित होकर घर–घर में पढ़ी, कही, सुनी जाती रही हैं।

वेतालपञ्चविंशति (वेतालपचीसी)

इस कथाचक्र का सम्बन्ध राजा विक्रमादित्य के अलौकिक तथा शौर्यमंडित जीवन से है। कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरी में ये कहानियाँ प्रायः एक रूप में उपलब्ध होती हैं। इसके अनेक लोकप्रिय संस्करण गद्य–पद्य में मिलते हैं। शिवदासरचित 'पंचविंशति' में कथाएँ अधिकतर गद्य में वर्णित हैं, परन्तु बीच–बीच में उसे श्लोकों के उद्धरणों से परिपुष्ट किया गया है। जंभलदत्त का संस्करण बिल्कुल गद्यात्मक है। कहानियों में स्थल–स्थल पर अंतर होने पर भी यह संस्करण कश्मीरी संस्करण से विशेष मिलता है। ये कहानियाँ मनोरंजक, ज्ञानवर्धक और कौतूहलजनक हैं जिनमें राजा विक्रमादित्य की अलोकसामान्य चातुरी तथा वीरता का वर्णन बड़े सुंदर ढंग से किया गया है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका (सिंहासनबतीसी)

सिंहासनबतीसी भी राजा विक्रम के चरित से संबद्ध है और इसीलिए इसका नाम 'विक्रमचरितम्' भी है। जैन मुनि क्षेमकर का संस्करण उत्तरी वाचनिका का प्रतिनिधि माना जाता है जिसके ऊपर बंगाली संस्करण आश्रित है। दक्षिण भारत में ये ही कहानियाँ 'विक्रमचरित' नाम से प्रख्यात हैं। डॉ. हर्टेल की दृष्टि में जैन विवरण ही मूल ग्रन्थ के समीप आता है, परन्तु डॉ. एड्गर्टन के विचार से दक्षिणी वाचनिका ही मौलिक तथा प्राचीनतर है। दोनों संस्करण 13वीं शती से प्राचीन नहीं हो सकते क्योंकि दोनों में हेमाद्रि (13शतक) के 'दानखण्ड' का उल्लेख मिलता है।

शुकसप्तति

शुकसप्तति की कहानियाँ कम रोचक नहीं हैं जिनमें कोई सुग्गा अपने गृहस्वामी के परदेश चले जाने पर परपुरषों के आकर्षणजाल से अपनी स्वामिनी को बचाता है। इसकी विस्तृत वाचनिका के लेखक कोई चिंतामणि भट्ट हैं जिनका समय 12 शतक से पूर्ववर्ती होना चाहिए क्योंकि उन्होंने इस ग्रन्थ में पूर्णभद्र के द्वारा संस्कृत 'पञ्चतन्त्र' का स्थान–स्थान पर उपयोग किया है।

इन कथाओं के अतिरिक्त अनेक जैन तथा बौद्ध कहानियों के संग्रह उपलब्ध हैं। जैन लोग कहानियों की रचना में बड़े कुशल थे और इस साहित्यिक काव्यरूप को

उन्होंने अपने धर्मप्रचार का समर्थ साधन बनाया था। भरटक द्वात्रिंशिका तथा कथारत्नाकार की कहानियाँ इसी कोटि की हैं। 'जैन प्रबंधी' में भी लोकप्रिय कहानियाँ खोजी जा सकती हैं। बौद्ध साहित्य में कथासाहित्य का एक विशाल संग्रह है जो 'अवदानों' के नाम से प्रख्यात है। मध्ययुग में भी कहानियों की रचना होती रही है। ऐसी कहानियों का मध्ययुगीन संग्रह मैथिलकोकिल विद्यापति (14वीं शती) के मनोरम ग्रन्थ 'पुरुषपरीक्षा' में उपलब्ध होता है। इस प्रकार संस्कृत का कथा साहित्य नाना ग्रन्थों में अपना वैभव बिखेर रहा है तथा अपने प्रभाव से विश्व के शिष्ट साहित्य को अपना अनवरत ऋणी बना रहा है।

कहानी की एक लम्बी विरासत के रहते काव्यशास्त्र के आचार्यों के द्वारा कहानी से मिलती–जुलती विधाओं का परिगणन और उनके लक्षणों का व्यवस्थापन स्वाभाविक ही था। उपाख्यान, आख्यान, निदर्शना, प्रवह्लिका, मन्थुल्ली, मणिकुल्या, परिकथा, खण्ड–कथा, बृहत्कथा–इस तरह की अनेक विधाएँ आनन्दवर्धन आदि संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने परिगणित की और भोज जैसे आचार्यों ने उनके विस्तार से सोदाहरण लक्षण भी प्रस्तुत किये। यदि आधुनिक कहानी का एक व्यापक लक्षण किया जाय, तो इन विधाओं के अधिकांश लक्षण उसमें उपलक्षण बनकर समा सकते हैं।

पंचतन्त्र को इन आचार्यों ने निदर्शना नामक कथाविधा के अन्तर्गत रखा है, क्योंकि इसमें मनुष्यजगत् के किसी सत्य के निदर्शन के लिए पशुकथाओं या पशु–प्रतीकों का उपयोग किया गया है। निदर्शन की यह विशिष्ट पद्धति पंचतन्त्र को आधुनिक कहानी के निकट भी लाती है और उससे कुछ आगे भी ले जाती है। पंचतन्त्र ने अपने से पहले की पशुकथाओं की परम्परा का संचय तो किया है, उसने उनमें एक नयी बात भी पैदा की। पंचतन्त्र की कहानियों में मनुष्यजगत् जितनी विविधता के साथ चित्रित है, वह कहानियों को समकालीन बनाती है और आधुनिक भी।

मानवीय व्यापार का पशुजगत् पर आरोप यहाँ एक विशिष्ट योजना और अभिप्राय के तहत किया गया है। इस योजना में मनुष्य और पशु एक–दूसरे के आमने–सामने आ खड़े होते हैं। पंचतन्त्र की इस योजना से कहानी का प्रतिमान भी उभरकर सामने आता है–कहानी के माध्यम से पंचतन्त्र मनुष्य की दुर्बलता, अक्षमता और मूर्खता को भी, तथा उसकी सामर्थ्य और कर्तृत्व को भी बहुत पैने व्यङ्ग्य और उतनी ही गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त कर सका है। पशुप्रतीकों के कहानी में इस्तेमाल या पशुकथा की यह परम्परा जातक कथाओं, ईसप की नीतिकथाओं आदि से कुछ अलग है। यद्यपि ईसप और सिन्दबाद की कथाएँ भी अपने मूल रूप में हमारी कथापरम्परा में थी और यहीं से बाहर गयीं–ऐसा शोधकर्ताओं का कहना है।

पंचतन्त्र की कथाएँ कथा परम्परा को विस्तार देती हैं–यहाँ पशुओं के द्वारा अन्योक्तिपरक शैली में मानवीय भाव ही व्यंजित नहीं किये गए, विशिष्ट मनुष्य स्वभावों और मानवीय जगत् के कार्य–व्यापारों का उन पर आरोप करते हुए पशु और मनुष्य को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में एक–दूसरे के आमने–सामने लाकर खड़ा किया गया है। इसलिए पंचतन्त्र की इस विशिष्ट शैली में पशुओं के द्वारा मानवीय जगत् से साक्षात्कार ही नहीं, पशु की मनुष्यता और मनुष्य की पशुता को भी हम एक दूसरे के द्वन्द्व में देख पाते हैं। अधिकांश कथाओं में हम पशुपात्रों में व्यक्तित्व का दोहरापन देखते हैं।

पंचतन्त्र की सभी कहानियों में केन्द्रीय विचार सूत्र रूप में पहले से उपस्थापित कर दिया गया है। उस सूत्र का दृष्टान्त कहानी है। यह शैली बोधकथाओं अथवा नीतिकथाओं की है और इसी कारण हमारे आचार्यों ने पंचतन्त्र को निदर्शना की विधा में परिगणित किया है। किन्तु पंचतन्त्र कथा के इस सूत्र या केन्द्रीय विचार को दो पात्रों की बहस का हिस्सा बनाते हुए कहानी की जीवनदृष्टि और कहानी का शिल्प दोनों को समरस कर देता है। इस सामरस्य में कहानी का पर्यवसान होता है।

लोकप्रिय कथाओं की उपर्युक्त परम्परा को बौद्ध तथा जैन लेखकों ने उपदेशात्मक अथवा धार्मिक रूप देकर प्रस्तुत किया है। दोनों धर्मों से जुड़े रचनाकारों ने कथासाहित्य को अपार समृद्धि दी। धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित होते हुए भी ऐसे कथासाहित्य में अन्तरंग मानवीय अनुभूतियाँ तथा कहानी का कौतुक कम नहीं है। कुछ बौद्ध और जैन कथाओं में सामाजिक वास्तविकताओं के साक्षात्कार के साथ तीखा व्यंग्य भी मिलता है। इस दृष्टि से जैन लेखक हरिभद्र सूरि का धूर्ताख्यान एक उल्लेखनीय रचना है।

पुराकथा के अतिरिक्त सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ी ऐसी छोटी–छोटी कहानियों का भी बहुत पुराने समय से ही हमारे यहाँ चलन रहा होगा, जिनमें मिथकों के महिमामण्डित अलौकिक विश्व के स्थान पर रोजमर्रा का जीवन है, हमारे घर–द्वार की कथा है या हमारे बीच के किसी व्यक्ति की आप–बीती है।

अपनी प्रगति जांचिए

6. गुणाढय द्वारा रचित कथा का नाम बताइए?
   (क) लघुकथा (ख) बृहत्कथा
   (ग) कथासरित्सागर (घ) शुकसप्तति
7. पञ्चतन्त्र और हितोपदेश किस प्रकार की कथाएं हैं?
   (क) नीतिकथाएं (ख) लोककथाएं
   (ग) नवीनकथाएं (घ) वैदिककथाएं

4.6 चम्पू काव्य

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य एवं पद्य काव्य के अतिरिक्त चम्पू काव्य का साहित्य भी उपलब्ध है। गद्य काव्य तथा पद्य काव्य के समन्वित रूप से ही चम्पू काव्य का निर्माण हुआ। आचार्य दण्डी के अनुसार, 'गद्यपद्यमयी काचित् चम्पूरित्यपि विद्यते।' चम्पू काव्य मूलतः एक ऐसा काव्य है जिसमें कवि अलंकरण के समस्त उपकरणों का प्रयोग करता है। यह काव्य जहाँ एक ओर गद्य काव्य के समान अर्थ के माहात्म्य तथा वर्णन वैशिष्ट्य से सम्पन्न होता है, वहीं दूसरी ओर पद्य काव्य के समान गेयता एवं लय–संपदा से युक्त होता है। इसमें बाह्य सौन्दर्य की प्रधानता होती है किन्तु विषय–वस्तु का प्राधान्य नहीं रहता। यह विलक्षण आनन्दोत्पादक होता है। इसका उद्देश्य काव्यगत

आनन्दानुभूति कराना है, केवल मनोरंजन करना अथवा उपदेश देना नहीं। इसमें गद्य तथा पद्य के प्रयोग के लिए कोई निर्धारित नियम नहीं है।

चम्पू काव्य के उदय का काल गद्य काव्य के स्वर्णिम काल का पश्चाद्वर्ती है। दशम शती से प्राचीन कोई चम्पू काव्य अद्यतन उपलब्ध नहीं हुआ है। यद्यपि कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित तैत्तिरीय, मैत्रायणी तथा काठक संहिताओं, अथर्वसंहिता, वैदिक आख्यानों, आरण्यकों, पुराणों, बौद्ध साहित्य, अवदान साहित्य आदि में यत्र–तत्र गद्य–पद्य मिश्रित शैली के दर्शन होते हैं तथापि चम्पू काव्यानुरूप वैशिष्ट्य इन ग्रन्थों में परिलक्षित नहीं होता। सप्तम शती में आचार्य दण्डी से पूर्व चम्पू काव्य का उदय तो हो चुका था किन्तु वह लोकप्रिय काव्य के रूप में दशम शती के आरम्भ से समादृत हो पाया और तब से 18वीं शती तक यह साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठापित होता आया।

संस्कृत साहित्य में चम्पू काव्य–परम्परा का अभिवर्द्धन करने वाले प्रमुख कवि तथा चम्पू काव्य हैं–

त्रिविक्रमभट्ट– चम्पू साहित्य के आदि ग्रन्थ 'नलचम्पू' के रचयिता त्रिविक्रमभट्ट राष्ट्रकूटवंशी नरेश इन्द्रराज के संरक्षण में रहते थे। ये सुविख्यात नाटककार राजशेखर के समकालिक हैं। इनका काल दशम शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है। 'नलचम्पू' के एक पद्य की कमनीय भाव से युक्त मनोहारी सूक्ति से प्रसन्न होकर आलोचकों ने इन्हें 'यमुना–त्रिविक्रम' नाम दिया। चम्पू साहित्य में इनकी दो रचनाएं उपलब्ध होती हैं–

नलचम्पू– नलचम्पू में राजा नल तथा दमयन्ती की प्रणय कथा का वर्णन है। इस चम्पू का अन्य नाम 'दमयन्ती–चम्पू' भी है। इस चम्पू की कथा महाभारत के नलोपाख्यान में वर्णित है। सात उच्छ्वासों में निबद्ध इस चम्पू में दमयन्ती का वृत्तांत जानकर इन्द्रादिकों तक उसके संदेश पहुँचाने तक की कथा है। अतएव यह रचना अपूर्ण भी प्रतीत होती है। इसके प्रत्येक उच्छ्वास के अंतिम पद्य में 'हरिचरणसरोज' पद विद्यमान है। इसी आधार पर यह चम्पू 'हरिचरणसरोजांक' नाम से भी अभिहित है। श्लेष के आधिक्य से युक्त यह चम्पू सरस एवं प्रसादपूर्ण रचना है।

मदालसाचम्पू– यह त्रिविक्रमभट्ट की दूसरी रचना है, जिसमें राजा कुवलयाश्व तथा मदालसा की प्रेम कथा वर्णित है। कुवलयाश्व से मदालसा का विवाह होता है किन्तु शीघ्र ही वियोग भी हो जाता है। अन्त में उसे मदालसा की प्राप्ति हो जाती है। मार्कण्डेय पुराण में राजा कुवलयाश्व और उनकी रानी मदालसा के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। उसी कथा के आधार पर इस चम्पू काव्य का सृजन किया गया। यह चम्पू नलचम्पू के समान रमणीय एवं उत्कृष्ट रचना नहीं है परन्तु कथा के विकास तथा काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह भी लोकप्रिय रचना है।

सोमदेव सूरि– सोमदेव सूरि नवम शती में अपने बुद्धिमत्ता तथा शास्त्रीय ज्ञान के कारण विद्वत्समुदाय में सम्मानित होते रहे। ये उच्चकोटि के धर्माचार्य होने के साथ–साथ प्रबुद्ध तत्वचिंतक, सरस साहित्यकार भी थे। ये विलक्षण तर्क शक्ति से सम्पन्न होने के साथ राजनीति के ज्ञाता भी थे। इन्हें तार्किक–चक्रवर्ती, वादीभपंचानन, कविकुल–राजकुंजर आदि उपाधियों से सम्मानित किया गया जिससे इनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। सोमदेव राष्ट्रकूटवंशी राजा कृष्ण तृतीय के

समकालिक तथा उनके आश्रित कवि थे, किन्तु इनकी रचना 'यशस्तिलकचम्पू' का सृजन कृष्णराज के सामन्त अरिकेसरी के पुत्र वाग्राज की राजधानी गंगधारा में हुआ। इस आधार पर सोमदेव का समय दशम शती माना जाता है।

यशस्तिलकचम्पू– यह ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत है। आठ आश्वासों में उपनिबद्ध इस चम्पू में जैन–सिद्धांतों की प्रस्तुति काव्य रूप में की गई है। इस चम्पू के प्रथम पाँच आश्वास यशोधर के आठ जन्मों की कथा से चमत्कृत हैं तथा अंतिम तीन आश्वासों में जैन धर्म के तथ्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें अवन्तिराज यशोधर नायक है जिसकी मृत्यु पत्नी की धूर्तता के कारण हो जाती है। नाना योनियों में जन्म लेकर अंततः वह जैन धर्म में दीक्षा प्राप्त करता है। गुणभद्र के उत्तरपुराण पर आधारित इस कथा में अलंकारों का प्राचुर्य है। आकर्षक एवं प्रौढ़ शैली में रचित इस चम्पू का वर्णन वैशिष्ट्य कादम्बरी के समान है। विलक्षण प्रतिभा समपन्न सोमदेव की विद्वता इस चम्पू में पद–पद पर परिलक्षित होती है। इसके आरम्भिक श्लोकों में कवि ने अनेक पूर्ववर्ती कवियों का वर्णन भी किया है।

यशस्तिलकचम्पू की कथा के आधार पर अपभ्रंश–काव्य 'जसहरचिरउ' की रचना की गई जिसके रचयिता पुष्पदन्त हैं। ये सोमदेव के ही समकालिक कवि थे। इनके आश्रयदाता कृष्णराज तृतीय के मंत्री भरत थे। 'वादिराजसूरि' के द्वारा भी संस्कृत काव्य 'यशोधरचरित' लिखा गया। यह भी यशस्तिलकचम्पू की कथा पर आधारित है।

नीतिवाक्यामृत– यह सोमदेव सूरि की अन्य सूत्रात्मक रचना है, जिससे सोमदेव के कुशल राजनीतिज्ञ होने का परिचय मिलता है। जैन धर्म के सिद्धांतों का प्रतिपादन तथा प्रचार–प्रसार कवि का प्रमुख उद्देश्य है। कथानक को चटकीला एवं प्रभावशाली बनाने में कवि सिद्धहस्त हैं। उन्होंने पुरुषों का रूप वर्णन अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया है परन्तु स्त्री का रूप वर्णन अपेक्षाकृत कम किया है। इस चम्पू में पद्यों का बाहुल्य है। पद्यों का गुम्फन करने तथा प्रकृति–चित्रण करने में कवि का नैपुण्य दृष्टिगोचर होता है। सोमदेव प्रधानतया सात्विक जीवन के उपासक हैं। अतएव उनके काव्य में धर्म तथा नीति संबंधी सूक्तियों का प्राचुर्य परिलक्षित होता है। इस चम्पू में वार्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है।

हरिश्चन्द्र या हरिचन्द्र– हरिश्चन्द्र 'धर्मशर्माभ्युदयकाव्य' के रचयिता हरिश्चन्द्र से अभिन्न माने जाते हैं। इस ग्रन्थ के अन्त में लिखित प्रशस्ति के आधार पर सम्पन्न कायस्थ परिवार में इनका जन्म हुआ। पिता आर्द्रदेव तथा माता रथ्यादेवी के पुत्र हरिश्चन्द्र जैन धर्म के थे। अध्ययनशील कवि न केवल जैन शास्त्र के विद्वान् थे अपितु कालिदास तथा माघ के काव्यों का अध्ययन करके उन्होंने उनके गुणों को भी ग्रहण किया। उनके ग्रन्थ से उनके देशकाल का परिचय नहीं मिलता। संस्कृत साहित्य में हरिश्चन्द्र नाम से अन्य कवियों का वर्णन भी उपलब्ध होता है। अतएव इनके वैयक्तिक जीवन के बारे में प्रमाणित जानकारी नहीं मिलती। 'हर्षचरित' के आरम्भ में बाण ने भट्टार हरिश्चन्द्र से इनकी पृथकता को सिद्ध किया है क्योंकि भट्टार हरिश्चन्द्र गद्य बंध के प्रणेता थे तथा हरिश्चन्द्र पद्यबंध के सम्राट्। कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में वर्णित हरिश्चन्द्र से इनकी भिन्नता–अभिन्नता मानने का कोई प्रबल साधन नहीं है। इनके काव्य की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर इनका समय 1230 ई. ज्ञात होता है। संस्कृत साहित्य में इनका उपलब्ध चम्पू काव्य है–जीवन्धरचम्पू।

जीवन्धरचम्पू– यह चम्पू हरिश्चन्द्र द्वारा रचित प्रख्यात जैनचम्पू है। उत्तरपुराण में वर्णित जैन साहित्य में विख्यात जीवन्धर की कथा के आधार पर वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि तथा क्षत्रचूड़ामणि ग्रन्थों का प्रणयन करके कथा को साहित्यिक रूप प्रदान किया। इन्हीं से प्रभावित होकर कवि ने जीवन्धरचम्पू काव्य का निर्माण किया। अत्यन्त मनोहारी इस चम्पू में क्षत्रचूड़ामणि के अनेक पद्य अत्यल्प परिवर्तनों के साथ संग्रहीत है। कथानक के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धांतों का कवि ने अत्यन्त मनोरंजक ढंग से निरूपण किया है। इस काव्य की अनेक सूक्तियों का उत्पत्ति स्थान श्रीहर्ष का नैषधचरित है तथा हरिश्चन्द्र की भाषा–शैली पर श्रीहर्ष की शैली का प्रचुर प्रभाव दृष्टिगत होता है।

सोड्ढल– सोड्ढल गुजरात के कायस्थ थे। गुजरात के शासक चालुक्य नरेश वत्सराज से प्रेरणा प्राप्त कर सोड्ढल ने 'उदयसुन्दरीकथा' चम्पू काव्य का प्रणयन किया। ये कोंकण के तीन राजाओं– चित्तराज, नागार्जुन तथा मुन्मुनिराज द्वारा आश्रित तथा सम्मानित थे। क्रमशः गद्दी पर बैठने वाले ये तीनों राजा भाई थे। इनका समय 11वीं शती है। अतः सोड्ढल का समय भी 11वीं शती है।

उदयसुन्दरीकथा– आठ उच्छ्वासों में विभक्त इस चम्पू काव्य में सोड्ढल ने प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन तथा नागराजशिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी के विवाह का वर्णन किया है। कवि ने स्वकल्पित आख्यान को चम्पू का रूप प्रदान किया है। प्रथम उच्छ्वास में कवि ने अपने चरित्र का वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती सुकवियों की प्रशंसा भी की है। सोड्ढल ने 'हर्षचरित' को आदर्श मानते हुए बाणभट्ट की शैली का अनुकरण किया है। माधुर्य गुण से ओत–प्रोत भाषा अत्यन्त आकर्षक एवं भावों की नवीनता से सम्पन्न है।

भोजराज– धारानरेश भोजराज परमार वंश के नवें राजा थे। भोज अत्यन्त वीर, प्रतापी, पंडित और गुणग्राही थे। प्रजा के कल्याण तथा रचनात्मक कार्यों में उनकी बहुत रुचि थी। वे एक कुशल प्रशासक होने के साथ–साथ कला प्रेमी भी थे। वे अनेक कवियों, विद्वानों, कला–प्रेमियों व साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। वे बुद्धिजीवी वर्ग को बहुत मान–सम्मान व आर्थिक सहायता दिया करते थे। 45 वर्ष (1010 से 1055 ई.) के शासनकाल में उन्होंने राज्य की उन्नति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होने दी। उन्होंने नगरों तथा ग्रामों में अनेक मंदिर बनवाए। उन्होंने विश्व का सबसे बड़ा बांध बनवाया। उनकी राजसभा में 500 विद्वान् थे। इन विद्वानों में नौ रत्नों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भोजराज स्वयं बहुत अच्छे कवि, दार्शनिक तथा ज्योतिषी थे। मान्यता के अनुसार उन्हें 64 प्रकार की सिद्धियां प्राप्त थीं तथा विभिन्न विषयों पर उन्होंने 84 ग्रन्थ लिखे। सरस्वती कंठाभरण, शृंगारमंजरी, चंपूरामायण, चारुचर्या, तत्वप्रकाश, व्यवहारसमुच्चय इनकी मुख्य रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त औषधिशास्त्र, ज्योतिष, कृषि, धर्म, वास्तुकला, शृंगारकला, शब्दकोष, राजनीति, रणनीति, साहित्य, संगीत आदि विविध विषयों पर भी प्रामाणिक ग्रन्थ लिखकर उन्होंने संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। चम्पू साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाला इनका ग्रन्थ है–रामायणचम्पू।

रामायणचम्पू– रामायण की कथा पर आधारित अनेक चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं। इनमें से अधिकतर चम्पू रामायण की सम्पूर्ण कथा का वर्णन करते हैं। उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित चम्पू अत्यल्प हैं। पवनपुत्र हनुमान के चरित्र का वर्णन करने वाले

चार चम्पू उपलब्ध होते हैं। इन चम्पुओं में सुप्रसिद्ध रामायणचम्पू भोजराज की अनुपम रचना है। यह महर्षिवाल्मीकिरचित रामायण पर आधारित है। यह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया था तथा परवर्ती कवियों ने इस चम्पू को पूर्ण किया। भोज ने पात्रों का चरित्र–वर्णन एवं कथा–संयोजन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया। कथानक, भाव, भाषा, गुणदोष इत्यादि सभी पक्षों पर वाल्मीकि का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। भोज ने अनेक शैलियों में इस काव्य का प्रणयन किया है। कहीं वे माघ की शैली का अनुगमन करते हैं तो कहीं कालिदास की शैली में वर्णन करते हैं। इस चम्पू में गद्य भाग कम है तथा पद्यों की अधिकता है। भोज शब्दों के संयोजन में पूर्णतः सिद्धहस्त हैं।

इस काव्य की अनेक टीकाएं भी उपलब्ध होती हैं जिनके रचयिता रामचन्द्र, नारायण, कामेश्वर, मानवेद तथा घनश्याम हैं।

अनंतभट्ट— अनंतभट्ट के देशकाल का परिचय नहीं मिलता। केरल के सुविख्यात कवि नारायणभट्ट ने अपने प्रबन्ध में अनंतभट्ट प्रणीत 'भारतचम्पू' के उदाहरण दिए हैं। इस आधार पर कवि का समय षोडश शतक से प्राचीन है, सम्भवतः 15वीं शती। ये द्रविड़देशीय कवि प्रतीत होते हैं।

भारतचम्पू— महाभारत के विस्तृत कथानक को आधार बनाकर लिखे गए प्रकाशित एवं अप्रकाशित सत्ताईस चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं। इनमें से कुछ चम्पू ही सम्पूर्ण कथा पर आधारित हैं। अधिकतर चम्पू किसी विशिष्ट कथानक तथा उपाख्यान पर आश्रित हैं। इन काव्यों में भारतचम्पू सर्वश्रेष्ठ एवं सुविख्यात है। यह चम्पू 12 स्तबकों में निबद्ध है, जिसके अन्तर्गत 1041 पद्य तथा 200 से ऊपर गद्य–खण्ड हैं। इसका कथानक प्रारम्भ में अत्यन्त विस्तृत है किन्तु युद्धवर्णन संक्षिप्त है।

विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न कवि के श्लोकों पर नैषधचरित का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। महाभारत के विविध प्रसंगों का अत्यन्त मनोहारी वर्णन 'भारतचम्पू' को सजीव बनाता है। नवीन कल्पना, उत्प्रेक्षा तथा चित्ताकर्षक सूक्ति–प्रयोग से भाषा के सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। कवि का युद्धवर्णन अत्यन्त प्रभावशाली है। अनन्तभट्ट वीर रस के कवि हैं। अतः युद्ध प्रसंग में कवि ने वीर रस का सुन्दर प्रयोग किया है। वैदर्भी शैली का प्रयोग इस काव्य की विशिष्टता है।

वेंकटाध्वरी— इनका नाम केवल वेंकट था, किन्तु यज्ञ–संपादन के कारण ये यज्वा अथवा अध्वरी कहलाते थे। इन्होंने स्वनाम 'वेंकटार्ययज्वा' लिखा है। इनकी रचना 'विश्वगुणादर्शचम्पू' के अध्ययन से वेंकटाध्वरी के जीवनवृत्त का परिचय मिलता है। ये कांची के निकटस्थ 'अरशाणिपाल' नामक ग्राम में रहते थे। इनका वंश विद्वता के लिए प्रसिद्ध था। ये कर्नाटक के राजा कृष्णराय के गुरु ताताचार्य के भागिनेय, अप्पय गुरु के पौत्र तथा रघुनाथ दीक्षित के पुत्र थे। इनके पितामह अप्पय गुरु सुविख्यात अप्पयदीक्षित से भिन्न व्यक्ति हैं। इनका गौत्र क्षत्रि था। इनके पिता ग्राम के स्वामी थे। ये रामानुज सम्प्रदाय के वडकलै मत के अनुयायी श्रीवैष्णव थे जिनके आराध्य लक्ष्मीनारायण थे। इनका समय 17वीं शती का मध्य भाग है। इनकी पाँच रचनाएं हैं– (1) विश्वगुणादर्शचम्पू, (2) लक्ष्मीसहस्र, (3) वरदाभ्युदय अथवा हस्तिगिरिचम्पू, (4) उत्तररामचरितचम्पू तथा (5) यादवराघवीयम्। 'श्रीनिवासविलासचम्पू' इनकी संदिग्ध रचना मानी जाती है। 'विश्वगुणादर्शचम्पू' तथा 'लक्ष्मीसहस्र' कवि की अलौकिक प्रतिभा के परिचायक हैं। भक्ति रस से ओत–प्रोत तथा कला पक्ष से सुशोभित 'लक्ष्मीसहस्र' रचना एक ही रात में सम्पन्न की गई–यह जनश्रुति है।

विश्वगुणादर्शचम्पू– यह चम्पू सर्वथा कल्पना पर आधारित है। इस चम्पू में विश्व के अवलोकन के लिए जिज्ञासु कृशानु और विश्वावसु नामक दो गन्धर्वों की कल्पना की गई है। कृशानु केवल दोषद्रष्टा है किन्तु विश्वावसु गुणग्रहणैककौतुकी है। सर्वप्रथम विश्वावसु किसी तीर्थस्थल के गुणों का वर्णन करता है। तत्पश्चात् कृशानु उसके दोषों को प्रकट करता है। तदनन्तर विश्वावसु उन दोषों का निराकरण करके शंका–समाधान करता है। कवि ने उस युग की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा की रोचक आलोचना कथनोपकथन शैली में की है। विषय–वर्णन में निपुण कवि वेंकटाध्वरी संस्कृत भाषा के विद्वान् थे। उन्होंने वैष्णवों में तेनकलै मतानुयायी आचार्यों के आचरण, माघ गुरुओं तथा मायावादी अद्वैतियों पर तीखा व्यंङ्ग्य किया है। वेदांतियों, कवियों, तार्किकों, ज्योतिषियों आदि के गुण–दोषों का विवेचन भी अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है।

वेंकटाध्वरी के अन्य दो चम्पू अधिक विख्यात नहीं हैं। 'वीराभ्युदय' (हस्तिगिरि) चम्पू में लक्ष्मी तथा नारायण के विवाह का वर्णन है, जहाँ कांची स्थित देवराज के धार्मिक गौरव तथा महत्व का वर्णन मिलता है। इसमें 'विश्वगुणादर्श' की अपेक्षा गद्य का प्रयोग अधिक है। 'उत्तररामचरितचम्पू' का कथानक वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्डगत विषयों पर आश्रित है, जिसमें विस्तारपूर्वक रावण के चरित्र का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् हनुमान के चरित्र का भी वर्णन उपलब्ध होता है। यह काव्य भी गुण सम्पन्न है परन्तु विश्वगुणादर्शचम्पू के उत्कर्ष के कारण यह अधिक प्रसिद्ध नहीं हो पाया।

संस्कृत महाकाव्य में लगभग 250 चम्पू काव्य लिखे गए हैं जिनके कथानक कृष्णकथा, पौराणिक आख्यानों, इतिहास, जीवन–चरित, यात्रा वर्णन आदि से लिए गए हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

8. चम्पूकाव्य किस प्रकार की रचना को कहा जाता है?

   (क) गद्य–पद्य मिश्रित (ख) गद्य युक्त

   (ग) पद्य युक्त (घ) लोककथा

9. 'नलचम्पू' काव्य के रचयिता का नाम क्या है?

   (क) भास (ख) माघ

   (ग) त्रिविक्रमभट्ट (घ) भारविन

4.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (क)
4. (घ)

5. (क)
6. (ख)
7. (क)
8. (क)
9. (ग)

4.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में महाकाव्य, गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, कथासाहित्य तथा चम्पूकाव्य का प्रतिपादन किया गया है। ये सभी संस्कृत साहित्य की विधाएं हैं। संस्कृत भाषा के कुछ ग्रन्थों को इन सभी विधाओं में विभाजित किया गया है। महाकाव्य साहित्य–विधा का उद्‌भव वैदिक सूक्तों से ही प्राप्त होता है, जिनमें दान स्तुतियों, संवाद–सूक्तों तथा देवताओं के वर्णनों का महत्व काव्यात्मक शैली का वर्णन है। रामायण और महाभारत प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, जिनको आधार मानकर अनेक रचनाकारों ने महाकाव्यों की रचना की है।

संस्कृत भाषा में कुछ ऐसे काव्य भी प्राप्त होते हैं जिनका विषय श्रंगार, नीति, भक्ति, वैराग्य इत्यादि हैं और जिनमें आत्माभिव्यञ्जन की प्रधानता होती है। ऐसे काव्यों को गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य कहा जाता है।

'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च'

अर्थात् महाकाव्य के कथानक के एक खण्ड पर आश्रित रचना खण्डकाव्य कहलाती है।

गीतिकाव्य के दो भेद होते हैं–शृंगारमूलक तथा भक्तिमूलक।

'गद्य' शब्द गद् धातु से यत् प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है– मानव की अभिव्यक्ति की स्वाभाविक प्रक्रिया।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्यकाव्य लिखना कवियों की कठिन परीक्षा है। गद्य का प्रथम रूप यजुर्वेद की संहिताओं में प्राप्त होता है। गद्यकाव्य को कथा और आख्यायिका के भेद से दो भागों में विभाजित किया गया है। गद्यकाव्य के विकास में दण्डी, सुबन्धु तथा बाणभट्ट का महत्वपूर्ण योगदान है।

संस्कृत साहित्य में कथा–साहित्य का भी एक विशेष स्थान है। कथा–साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है–लोककथाएं तथा नीतिकथाएं। लोककथाएं शुद्ध मनोरंजन के लिए होती हैं किंतु नीतिकथाएं मनुष्यों को नैतिक शिक्षा देने वाली होती हैं। लोककथाओं में गुणाढय की बृहत्कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। नीतिकथाओं में पञ्चतन्त्र एवं हितोपदेश सर्वाधिक प्रचलित हैं। बौद्ध तथा जैन कवियों ने भी अनेक नीतिकथाएं लिखी हैं। कथा का बीज वैदिक वाङ्मय में विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। उपनिषदों की भी अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं, जैसे–यम–नचिकेता, उमा हैमवती इत्यादि।

काव्यात्मक गद्य में पद्य का मिश्रण होने से चम्पूकाव्य निष्पन्न होता है।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में कहा है–

'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'।

अर्थात् गद्य और पद्य युक्त काव्य 'चम्पू' कहलाता है।

'नलचम्पू' नामक चम्पू–काव्य के रचयिता त्रिविक्रमभट्ट का नाम चम्पूकाव्यों के रचनाकारों में सर्वप्रथम लिया जाता है। चम्पूकाव्यों के विषय जीवनचरित, यात्रा–वर्णन, युद्ध–वर्णन, राजसभा वर्णन इत्यादि होते हैं।

4.9 मुख्य शब्दावली

- **प्रतिष्ठा** – सम्मान।
- **शाश्वतीः** – अनन्तकाल।
- **काममोहितम्** – कामभावना से ग्रस्त।
- **अवधीः** – मार डाला।
- **खण्डकाव्य** – कथानक के एक खण्ड पर आश्रित रचना।
- **गेय** – गान।
- **चम्पूकाव्य** – गद्य–पद्य मिश्रित रचना।

4.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालिए?
2. गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य के विषय में संक्षिप्त रूप में बताइए?
3. संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध गद्यकाव्यों एवं उनके रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
4. पञ्चतंत्र एवं हितोपदेश कथाओं के विषय में संक्षेप में निरूपण कीजिए?
5. चम्पूकाव्य की परिभाषा देकर चम्पूकाव्यों के विषय में संक्षेप में बताइए?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संस्कृत काव्य–विधा गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य के विषय में विस्तृत रूप में विवेचना कीजिए।
2. कथासाहित्य पर विस्तृत रूप में प्रकाश डालिए?
3. चम्पूकाव्य का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?
4. कालिदास के महाकाव्यों के विषय में विस्तारपूर्वक निरूपण कीजिए।

4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा विश्वभारती, के. 37 / 109, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास–पी.वी. काणे।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. ए.बी. कीथ

इकाई 5 छन्द एवं अलंकार

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 छन्द–अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थम्, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, स्रग्धरा।
5.3 अलंकार–अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विभावना, विशेषोक्ति (काव्यप्रकाश से)
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

रस को काव्य की आत्मा और शब्दार्थ को उसकी देह कहा जाता है। यदि पद्य साहित्य की बात की जाए तो छन्द उस काव्यरूपी देह का सौष्ठव है जिस पर मुग्ध होकर वाणी रसवती होकर उसमें न केवल अनुरक्त हो जाती है, अपितु उसके साथ एकाकार होकर नृत्य भी करती है। कवियों ने अपने भावों को प्रकट करने के लिए भावों के अनुरूप विभिन्न छन्दों को अपनाया। कालिदास के 'मेघदूतम्' के यक्ष की 'मन्दाक्रान्ता'–छन्दोमयी वाणी ने यक्ष की व्यथा को जिस प्रकार से ललित्यमयी पदावली में प्रकट किया है उसके प्रभाव से पाठक अनेक पद्यों का निरन्तर वाचन करने पर विवश हो जाता है। इसी प्रकार गंगा की पवित्र तरंगों के प्रवाह के साथ-साथ जब पंडितराज जनन्नाथ की 'गंगालहरी' के शिखरिणी-छन्दों में निबद्ध पद्य पढ़े जाते हैं तो वाणी में एक और रसमयी गंगा नदी प्रवाहित होने लगती है।

छन्दों की इस महिमा से परिचित होना संस्कृत के प्रत्येक छात्र के लिए न केवल सैद्धान्तिक रूप से अनिवार्य हो जाता है बल्कि इनका व्यवहार करने पर ही उसे संस्कृत के साथ तादात्म्य की अनुभूति होना सम्भव है।

काव्यप्रकाश के नवम् एवं दशम उल्लास में काव्य के सौंदर्यवर्धक अलंकारों का वर्णन है। मानव स्वभावतः सौन्दर्य-प्रिय प्राणी है। उसका यह-प्रेम उसके जीवन के अय से लेकर इति तक के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिबिम्बित होता है। वह सर्वदा सुन्दर वस्तुओं का ही चयन करके अपने कार्यों को सुन्दरता से सम्पादित करने की आकांक्षा करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसकी यह प्रवृत्ति अलंकार विधान में भी परिलक्षित होती है।

संस्कृत साहित्य के सौष्ठवभूत इन छन्दों का परिभाषोदाहरण सहित विस्तृत परिचय भट्टकेदार लिखित वृत्तरत्नाकर में प्राप्त होता है।

प्रस्तुत इकाई में वृत्तरत्नाकर से लिए गए इन्द्रवज्रा, अनुष्टुप् आदि प्रमुख छन्दों की परिभाषाओं व विभिन्न उदाहरणों का अवलोकन किया गया है। साथ ही अलंकारों के बारे में भी विस्तार से समझाया गया है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप

टिप्पणी

- संस्कृत पद्यों की छन्द पद्धति को स्पष्ट रूप से जान पाएंगे;
- अनुष्टुप्, वंशस्थ आदि विविध छन्दों को स्वरांकित करके पहचान सकेंगे;
- छन्दों की परिभाषाओं को सोदाहरण समझ पाएंगे;
- संस्कृत पद्यों में अलंकार सौन्दर्य से अवगत हो पाएंगे;
- अलंकारों की परिभाषा को उदाहरण सहित जान पाएंगे।

5.2 छन्द–अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थम्, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, स्रग्धरा

छन्दों को समझने के लिए सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि पदस्थ स्वरों की प्रमुख पहचान लघु (।) अथवा गुरु (ऽ) के रूप में होती है। लघु व गुरु के विभिन्न मिश्रणों से आठ गण बनते हैं–

1. मगण (ऽऽऽ), 2. नगण (।।।), 3. भगण (ऽ।।), 4. यगण (।ऽऽ), 5. जगण (।ऽ।), 6. रगण (ऽ।ऽ), 7. सगण (।।ऽ), 8. तगण (ऽऽ।)

इस क्रम को स्मरण करने के लिए छन्द में निबद्ध निम्नलिखित श्लोक कण्ठस्थ कर लेना चाहिए–

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो
भादिगुरुः पुनरादि लघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्ये,
सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

इसके अतिरिक्त स्मरण रखें कि अ, इ, उ, ऋ के अतिरिक्त सभी स्वर गुरु होते हैं। पंक्ति के अन्त में ये चारों भी गुरु बनते हैं। साथ ही संयुक्ताक्षर से पूर्व बलाघात के परिणामस्वरूप यद्यपि ये चारों गुरु बन जाते हैं तथा सम्बोधन-पद के अन्त में ऐसा होना आवश्यक नहीं है, यथा–

ऽ ऽ ।ऽ। ऽ।। ऽ।।ऽ ऽ। ऽ ऽ

अल्पव्ययेन सुन्दरि। ग्राम्यजनो भिष्टेमश्नाति॥

में 'सुन्दरि' का पदान्त 'इ' आगे संयुक्ताक्षर के रहने पर भी गुरु नहीं हुआ।

1. अनुष्टुब्वृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

अनुष्टुप्वृत्तम् की परिभाषा

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोः ह्रस्वम् सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

अर्थ– अनुष्टुप् छन्द के चार चरणों में क्रमशः आठ-आठ स्वर होते हैं। इनमें तीसरे और चौथे चरण में छठा स्वर गुरु और प्रत्येक चरण में पाँचवां लघु होता है। दूसरे और चौथे चरण में छठा स्वर ह्रस्व होता है और पहले तथा तीसरे चरण में सातवां स्वर दीर्घ होता है, जबकि दूसरे और चौथे चरण में सातवां स्वर ह्रस्व होता है।

उदाहरण

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ

2. इन्द्रवज्रावृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

इन्द्रवज्रावृत्तम् की परिभाषा

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः॥

अर्थ– प्रत्येक चरण में यदि क्रम से दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु हों तो उसे 'इन्द्रवज्रा' छन्द कहा जाता है। पाद के अन्त में यति होती है।

उदाहरण

त.	त.	ज.	गु.	गु
ये दुष्ट	लोकाइ-	ह भूमि-	लो-	के-
ऽऽ।,	ऽऽ।,	।ऽ।,	ऽ	ऽ,

द्वेषं व्यधुर्गोद्विजदेवसङ्घे॥
तानिद्रवज्रादपि दारुणाङ्गान्।
व्याजीवयद् यः सततं नमस्ते॥

3. उपेन्द्रवज्रावृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

उपेन्द्रवज्रावृत्तम् की परिभाषा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ॥

अर्थ– उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण और तगण तथा जगण एवं दो गुरु होते हैं।

उदाहरण

जगण तगण जगण गु. गु.
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमानः
कदम्बशाखासु विलम्बमानाः।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं
शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति॥

टिप्पणी

4. वंशस्थवृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

वंशस्थवृत्तम् की परिभाषा

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ॥

अर्थ– (वंशस्थ) प्रत्येक पाद में यदि क्रम से एक जगण और एक तगण तथा, फिर एक जगण एवं एक रगण हो तो, वह 'वंशस्थ' छन्द कहा जाता है। प्रत्येक चरण के अन्त में यति होती है।

उदाहरण-

ज.	त.	ज.	र.
जनस्य-	तीव्रात-	यतार्ति-	वारणा-
।ऽ।,	ऽऽ।,	।ऽ।,	ऽ।ऽ,

जयन्ति सन्तः सततं समुन्नताः॥

सितातपन्नप्रतिमा विभान्ति ये

विशालवंशस्थतया गुणोचिताः॥

5. वसन्ततिलकावृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

वसन्ततिलकावृत्तम् की परिभाषा

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः॥

अर्थ– वसन्ततिलका छन्द में प्रत्येक चरण में क्रमशः एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण

त.	भ.	ज.	ज.	गु.	गु.
उर्द्धर्षि-	णी -	दृशां स्त-	नभार-	गु-	र्वो
।ऽ।,	ऽ।।,	।ऽ।,	।ऽ।,	ऽ,	ऽ.

नीलोत्पलद्युतिमलिग्लुचलोचना च॥

सिंहोन्नतन्निकतटी कुटिलाऽलकान्ता

कान्ता वसन्ततिलका नृपवल्लभाऽसौ॥

6. मन्दाक्रान्तावृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

मन्दाक्रान्तावृत्तम् की परिभाषा

मन्दाक्रान्ता जलधिषड्गैर्म्भौनतौ ताद् गुरुश चेत्॥

अर्थ– मन्दाक्रान्ता छन्द में प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगण दो तगण और दो गुरु होते हैं।

टिप्पणी

उदाहरण–

म.	भ.	न.	त.	त.
ऽऽऽ,	ऽ।।,	।।।,	ऽऽ।,	ऽऽ।,
गु ऽ	गु ऽ			

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु॥

7. शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् की परिभाषा

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्॥

अर्थ– शार्दूलविक्रीडित के सभी चरणों में क्रमशः एक मगण, एक सगण, एक जगण पुनः एक सगण, दो तगण एवं एक गुरु होते हैं।

उदाहरण–

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरु

ऽ ऽ ऽ, । । ऽ, । ऽ ।, । । ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्बोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

8. स्रग्धरावृत्तम् लक्षणोदाहरणान्वितम्

स्रग्धरावृत्तम् की परिभाषा

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि-
यतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्॥

अर्थ– प्रत्येक पाद में यदि क्रम से एक मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण हों तो, वहाँ 'स्रग्धरा' छन्द होता है। सात, सात और सात पर यति रहती है।

उदाहरण–

म.	र.	भ.	न.	य.	य.	य.
सारार-	म्भानुभा -	वप्रिय-	परिच-	यया स्व-	गरङ्गा-	ङ्गनानां-
ऽऽऽ,	ऽ।ऽ,	ऽ।।,	।।।,	।ऽऽ,	।ऽऽ	।ऽऽ,

टिप्पणी

लीलामर्णावतंसश्रियमतनुगुणश्लेषया संश्रयन्त्या॥
आभाति व्यक्तुमक्ताविचकिललवलीवृन्दकुन्देन्दुकान्त्या
त्वत्कीर्त्या भूषितेयं भुवनपरिदृढ! स्रग्धरेव त्रिलोकी॥
द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ॥

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' यह लक्षण किस छन्द का है?
   - (क) इन्द्रवज्रा
   - (ख) वंशस्थ
   - (ग) अनुष्टुप
   - (घ) स्रग्धरा
2. 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' यह किस छन्द का लक्षण है?
   - (क) शार्दूलविक्रीडित
   - (ख) मन्दाक्रान्ता
   - (ग) उपेन्द्रवज्रा
   - (घ) वंशस्थ
3. किस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः एक जगण, एक तगण, फिर एक जगण तथा एक रगण होता है?
   - (क) स्रग्धरा
   - (ख) वंशस्थ
   - (ग) अनुष्टुप
   - (घ) इन्द्रवज्रा

5.3 अलंकार—अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विभावना, विशेषोक्ति (काव्यप्रकाश से)

अलंकार की महिमा बड़ी विशाल है। मानव ही अपनी वस्तुओं को, अपने शरीर को तथा अपनी सामग्री को अलंकृत नहीं रखता, बल्कि प्रकृति भी अपने अंगों को अलंकृत करने में किसी भी प्रकार से विमुख नहीं होती। प्रातः काल जब सूर्य उदित होता है तो प्रकृति पूर्व दिशा को नये नवीन रंगों से रंग देती है, मालूम पड़ता है कि गाढ़ी लालिमा के रंग से किसी ने पूरब दिशा को रंग डाला है, अर्थात् प्रकृति स्वयं अलंकार की प्रेमी होती है और अपने अंग—प्रत्यंग को नाना सजावट से सजाने में, नए रंगों से रंगीन बनाने में उसे बड़ा आनन्द आता है।

काव्य में अलंकार प्रयोग की एक सीमा है। अलंकार यदि वाणी को स्पष्ट एवं रमणीय बनाकर रसात्मकता में वृद्धि करते हैं, तो वे अवश्य ही अभिनन्दनीय हैं किन्तु जब वे साधन न बनकर साध्य का रूप धारण करते हैं, तब वे भारस्वरूप ही प्रतीत होते हैं।

माना कि कविता में अलंकारों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु कविता की आत्मा का स्थान ये नहीं ले सकते। कविता की आत्मा मुख्य रूप से भाव, विचार, अभिनव कल्पना एवं रसाभिव्यव्यंजना है। इन्हीं के कारण काव्य में स्थायित्व का समावेश होता है। अलंकार कविता—कामिनी के सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही कर सकते हैं

परन्तु मूल पदार्थ का स्थान वे कदापि नहीं ग्रहण कर सकते और जब वे ऐसा करते हैं तभी कविता–कामिनी का गला घुटने लगता है तथा आत्मा भाव में अलंकार सर्वथा अनाकर्षक और श्री विहीन प्रतीत होते हैं।

टिप्पणी

अतः स्पष्ट है कि अलंकार भावाभिव्यक्ति के साधन हैं, साध्य नहीं किन्तु जब साधन ही साध्य का रूप धारण कर लेते हैं, तभी काव्य में अस्वाभाविकता आ जाती है। काव्य का जन्म हृदयगत भावनाओं से अपेक्षित है, बुद्धि–व्यायाम–जन्य अलंकारों से नहीं।

अलंकारों का महत्व

अलम् शब्द के साथ 'कृ' धातु में घञ् प्रत्यय के योग से अलंकार शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ सुशोभित करने वाला होता है। जिस प्रकार कटक, कुण्डल हारादि आभूषण कामिनी को सौन्दर्य प्रदान करते हैं उसी प्रकार अनुप्रास आदि अलंकार कविता-कामिनी को कुरूप होते हुए भी सौन्दर्य प्राप्त कराते हैं।

संस्कृत साहित्य में अलंकारों का बहुत महत्त्व है। भारतीय काव्यशस्त्र में इन वाणी–विभूषणों का बहुत गान हो चुका है। कविवर राजशेखर ने इनको वेद का सातवाँ अंग माना है।

भारतीय साहित्याचार्यों ने अलंकारों के स्वरूप तथा कविता में उनके महत्त्व का बहुत विवेचन किया है।

यहाँ पर हम कतिपय आचार्यों की अलंकार विषयक मान्यताओं को उद्धृत करते हैं।

वेदव्यास– अलंकार–सरस्वती विद्या के समान हैं।

भामह– सुन्दर होते हुए भी बिना आभूषण के मुख पर कान्ति नहीं आती।

दण्डी– काव्य शोभा के सम्पादक धर्मों को अलंकार कहते हैं।

वामन– काव्य में सौन्दर्य ही अलंकार है।

उद्भट्ट– गुण और अलंकार चारुत्व के हेतु हैं।

रुद्रट– कवि की उदार मति सालंकारों काव्यों की रचना में सफल होती है।

क्षेमेन्द्र– उचित स्थान पर धारण करने से ही अलंकार शोभाकारक है।

मम्मट– अलंकार हारादि आभूषणों के समान हैं। वे कदाचित रस का उपकार कर सकते हैं, सर्वदा नहीं। जहाँ रस नहीं वहाँ भी अलंकार रह सकता है।

जयदेव– जो अलंकार शून्य शब्दार्थ में काव्य स्वीकार करता है, वही कृती अग्नि में शीतलता स्वीकार क्यों नहीं करता।

विश्वनाथ– आभूषणादि के समान अलंकार शोभा के अतिशयिता और रस आदि के उपकारक शब्दार्थ के अस्थिर धर्म को अलंकार कहते हैं।

आचार्य मम्मट ने 6 (छः) शब्दालंकार माने हैं परंतु पाठ्यक्रम में अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विभावना और विशेषोक्ति अलंकार ही हैं। उनका उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से है–

गुणविवेचने कृतेऽलङ्काराः प्राप्तावसरा इति सम्प्रति शब्दालङ्कारानाह–

गुणों का विवेचन कर चुकने पर अलंकारों का अवसर आता है, अब पहले शब्दालंकारों को कहते हैं–

टिप्पणी

1. अनुप्रास अलंकार

सूत्रम् 103 "वर्णसाम्यमनुप्रासः

अर्थ : वर्णों की समानता अनुप्रास है।

व्याख्या– समान व्यञ्जन वर्णों की आवृत्ति अनुप्रास है।

स्वरवैसादृश्येऽपि व्यञ्जनसदृशत्वं वर्णसाम्यम्। रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रासः।

स्वरों का भेद होने पर भी व्यंजनों की समानता वर्णसाम्य है। रसादि के अनुकूल (वर्णों का) प्रकृष्ट सन्निवेश अनुप्रास (कहलाता) है।

सूत्रम् 104 छेकवृत्तिगतो द्विधा।

हिंदी अर्थ : अनुप्रास अलंकार छेकगत और वृत्तिगत के भेद से दो प्रकार का होता है।

व्याख्या– अनुप्रास अलंकार छेकानुप्रास और वृत्त्यानुप्रास के भेद से दो प्रकार का है।

छेका विदग्धाः। वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापार गत इति छेकानुप्रासो वृत्यनुप्रासश्च।

किं तयोः स्वरूपमित्याह–

'छेक' शब्द का अर्थ 'चतुर व्यक्ति' है और 'वृत्ति' वर्णों में रहने वाला रसविषयक (व्यंजना) व्यापार है। 'गत' इससे छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास का ग्रहण होता है।

उन दोनों का स्वरूप कहते हैं–

छेकानुप्रास

सूत्रम् 105 सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः

हिंदी अर्थ : अनेक वर्णों की एक बार (आवृत्ति) प्रथम (छेकानुप्रास) है।

व्याख्या– अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति रूप साम्य छेकानुप्रास कहलाता है।

अनेकस्य अर्थात् व्यञ्जनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं छेकानुप्रासः। उदाहरणम्–

"ततोऽरुणपरिस्पन्दमन्दीकृतवपुः शशी।
दध्रे कामपरिक्षामकामिनीगण्डपाण्डुताम्।।

अनेक व्यंजनों की सकृत अर्थात् एक बार सादृश्य छेकानुप्रास (कहलाता) है। उसका उदाहरण, जैसे–

तब (प्रातःकाल के समय सूर्य की सारथि) अरुण के गतिशील होने से मलिन स्वरूप वाला चंद्रमा काम से दुर्बल कामिनी के कपोल स्थल के समान सफेद हो गया।

वृत्यानुप्रास

सूत्रम् 106 एकस्याप्यसकृत्परः।

शब्दार्थ : **असकृत्**– अनेक बार, **परः**– दूसरा।

हिंदी अर्थ– एक (वर्ण) की भी अनेक बार (आवृत्ति) से दूसरा (वृत्यानुप्रास) होता है।

व्याख्या– एक वर्ण का भी और अनेक वर्णों की भी अनेक बार की आवृत्ति रूप साम्य होने पर वृत्यानुप्रास अलंकार होता है।

एकस्य अपि शब्दादनेकस्य व्यञ्जनस्य द्विर्बहुकृत्वो वा सादृश्यं वृत्यानुप्रासः। तत्र–

एक वर्ण का और 'अपि' शब्द (के प्रयोग) से अनेक व्यंजनों का एक बार या बहुत बार का सादृश्य (आवृत्ति) वृत्यानुप्रास है। उनमें से–

सूत्रम् 107 माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते।

सूत्रम् 108 ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा।

हिंदी अर्थ– माधुर्यव्यंजक वर्णों से युक्त उपनागरिका कहलाती है। ओज के प्रकाशक वर्णों से युक्त परुषा वृत्ति कहलाती है।

व्याख्या– माधुर्य व्यंजक वर्णों से युक्त वृत्ति उद्भट के मत में उपनागरिका और वामन के मत में वैदर्भी रीति कहलाती है। ओज के प्रकाशक वर्णों से युक्त वृत्ति उद्भट के मत में परुषा वृत्ति और वामन के मत में गौडी रीति कहलाती है।

उभयत्रापि प्रागुदाहृतम्। ''अनङ्गरङ्ग' इत्यादि, 'मूर्ध्नामुद्वृत्त' इत्यादि च।

इन दोनों के उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। जैसे 'अनङ्गरङ्ग' इत्यादि और 'मूर्ध्नामुद्वृत्त' इत्यादि।

सूत्रम् 109 कोमला परैः।।

हिंदी अर्थ– शेष (वर्णों) से कोमला होती है।

व्याख्या– शेष वर्णों से युक्त तीसरी वृत्ति उद्भट के मत में कोमला वृत्ति और वामन के मत में पाञ्चाली रीति होती है।

परैः शेषैः। तामेव केचित् ग्राम्येति वदन्ति। उदाहरणम्–

"अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि! मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला।।"

'परैः' (पद का अर्थ उपनागरिका और परुषा वृत्ति अथवा माधुर्य और ओज के व्यंजक वर्णों को छोड़कर) शेष से (युक्त समझना चाहिए)। उसी (कोमला वृत्ति) को कोई ग्राम्या (वृत्ति) भी कहते हैं। उदाहरण, जैसे–

"कपूर को हटा लो, हार को दूर ही रखो, कमलों से क्या लाभ और हे सखि! मृणालों को रहने दो, बाला रात–दिन यह कहती है।

सूत्रम् 110 केषाञ्चिदेव वैदर्भीप्रमुखा रीतयो मताः।

हिंदी अर्थ– (ये तीनों ही वृत्तियां) किन्हीं के मत में वैदर्भी आदि रीतियां मानी गयी हैं।

व्याख्या– उपनागरिका, परुषा और कोमला ये तीनों वृत्तियां ही वामन आदि आचार्यों के मत में क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी व पांचाली रीति मानी गई है।

एतास्त्रिस्रो वृत्तयः वामनादीनां मते वैदर्भीगौडीपाञ्चाल्याख्या रीतयो मताः।

ये तीनों वृत्तियां वामन आदि के मत में वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली नामक रीतियां मानी जाती हैं।

टिप्पणी

सूत्रम् 111 शब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः।

हिंदी अर्थ— तात्पर्यमात्र से भेद होने पर शब्दानुप्रास लाटानुप्रास है।

व्याख्या— आवर्त पद में तात्पर्य मात्र से भेद होने पर शब्दानुप्रास या पदानुप्रास नहीं अपितु लाटानुप्रास कहलाता है। लाटानुप्रास स्थल में आवृत्त पद में तात्पर्यमात्र का भेद होना आवश्यक माना गया है। पदों में उद्देश्य विधेय भाव में अन्तर आ जाने पर भी तात्पर्यमात्र का भेद माना जाता है।

(वर्णसाम्य रूप वर्णानुप्रास का और छेकानुप्रास तथा वृत्यानुप्रास नामक उसके दो भेद किये गए हैं। अनुप्रास का दूसरा भेद 'पदानुप्रास' होता है, उसको ही लाटानुप्रास कहा जाता है। इसके पांच भेद होते हैं।)

शब्दगतोऽनुप्रासः शब्दार्थयोरभेदेऽप्यन्वयमात्रभेदात्।

लाटजनवल्लभत्वाच्च लाटानुप्रासः। एष पदानुप्रासः इत्यन्ये।

शब्दगत अनुप्रास (लाटानुप्रास कहलाता है) शब्द और अर्थ के अभेद होने पर भी अन्वय अर्थात् उद्देश्य विधेय भाव या तात्पर्य मात्र के भेद से और लाट देश के लोगों का प्रिय होने से लाटानुप्रास कहलाता है। दूसरे लोग इसको पदानुप्रास कहते हैं।

सूत्रम् 112 पदानां सः।

हिंदी अर्थ— वह पदों का साम्य होता है।

व्याख्या— वह लाटानुप्रास वर्णों का नहीं अपितु पदों का साम्य होता है।

स इति लाटानुप्रासः। उदाहरणम्—

"यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य।
यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य।।"

वह अर्थात् लाटानुप्रास। उदाहरण—

जिसके समीप प्रियतमा नहीं है उसके लिए चंद्रमा (तुहिनदीधिति) दावानल है। और जिसके समीप में प्रियतमा है उसके लिए दावानल भी चंद्रमा (के समान शीतल है)।

सूत्रम् 113 पदस्यापि।

हिंदी अर्थ— वह एक पद का भी होता है।

व्याख्या— वह लाटानुप्रास बहुत पदों की आवृत्ति होने पर ही हो ऐसा नहीं है, अपितु एक पद का भी होता है।

अपिशब्देन स इति समुच्चीयते। उदाहरणम्—

अपि शब्द से 'स' का संग्रह होता है। उदाहरण—

जैसे—

"वदनं वरवर्णिन्यास्तस्याः सत्यं सुधाकरः।
सुधाकरः क्व नु पुनः कलङ्कविकलो भवेत्।।"

उस वरवर्णिनी का मुख सचमुच चंद्रमा है (अथवा उससे भी अधिक सुंदर है, क्योंकि) चंद्रमा कलंक से रहित कहाँ होता है?

सूत्रम् 114 वृत्तावन्यत्र तत्र वा।
नाम्नः स वृत्त्यवृत्त्योश्च।।

शब्दार्थ : अन्यत्र वृत्तौ– अन्य समास में, **अवृत्त्यः**– असमास में।

हिंदी अर्थ– अन्य समास में अथवा उसी समास में अथवा समास और असमास में 'नाम' (प्रातिपदिक) की (आवृत्ति) वह है।

व्याख्या– लाटानुप्रास के तीन भेद और बताए गए हैं, वे हैं– भिन्न समासों में, उसी समास में और समास व असमास में नाम (प्रातिपदिक) की (पद की नहीं) आवृत्ति होने पर भी लाटानुप्रास होता है।

एकस्मिन् समासे, भिन्ने वा समासे, समासासमासयोर्वा नाम्नः प्रातिपदिकस्य न तु पदस्य सारूप्यम्। उदाहरणम्–

"सितकरकररुचिरविभा विभाकराकार! धरणिधर! कीर्तिः।
पौरुषकमला कमला साऽपि तवैवास्ति नान्यस्य।।

1. एक समास में, अथवा 2. भिन्न समासों में, अथवा 3. समास और असमास में 'नाम' अर्थात् प्रातिपदिक की, सुबंत पद की ही नहीं, आवृत्ति 'लाटानुप्रास' होता है। जैसे–

'हे सूर्य के समान प्रतापशाली राजन्, हे धरणिधर! चंद्रमा की किरणों के समान कीर्ति, पराक्रम लक्ष्मी है तथा वह प्रसिद्ध लक्ष्मी भी आपकी ही हैं, अन्य किसी की नहीं।

सूत्रम् 115 तदेवं पञ्चधा मतः।।

हिंदी अर्थ– इस प्रकार यह पांच प्रकार का माना जाता है।

संस्कृत व्याख्या– लाटानुप्रास पांच प्रकार का माना गया है, ये हैं–

1. बहुत से पदों की आवृत्तिगत, 2. एक पद की आवृत्तिगत, 3. एक समास में, 4. भिन्न समासों में और 5. समास और असमास में 'नाम' अर्थात् प्रातिपदिकगत।

2. यमक अलंकार

सूत्रम् 116 अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।

शब्दार्थ : अर्थे सति– भिन्न अर्थ होने पर, **श्रुतिः**– श्रवण।

हिंदी अर्थ– अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों का उसी क्रम से पुनः श्रवण यमक है।

व्याख्या– अर्थ होने पर भी भिन्नार्थक वर्णों का उसी क्रम से पुनः आवृत्ति यमक नामक शब्दालंकार है।

विशेष– *"अर्थे सति अर्थभिन्नानाम्"* का अर्थ यमक अलंकार में यह आवश्यक नहीं कि आवृत्त वर्ण दोनों स्थलों पर सार्थक हो ही, इसलिए केवल *'भिन्नार्थानाम्'* न लिखकर *'अर्थे सति अर्थभिन्नानाम्'* यह पद रखा गया है।

'समरसमरसोऽयम्' इत्यादावेकेषामर्थवत्त्वेऽन्येषामनर्थकत्वे भिन्नार्थानामिति न युज्यते वक्तुम्, इति 'अर्थे सति' इत्युक्तम्। सेति 'सरो रस' इत्यादिवैलक्षण्ये न, तेनैव क्रमेण स्थिता।

यह (राजा) 'समरसमरस' अर्थात् 'युद्ध में एकरस है' इत्यादि में पहली बार के सार्थक ('समर पर') और दूसरी बार के ('सम रस' को मिलाकर बने समरस के) अनर्थक

होने से 'भिन्नार्थानाम्' यह नहीं कहा जा सकता है इसलिए 'अर्थे सति' यह कहा गया है। उसी रूप में इससे 'सरो रसः' से भिन्न रूप से नहीं अर्थात् उसी क्रम में वर्णों की आवृत्ति, यमक अलंकार कहलाता है।

टिप्पणी

सूत्रम् 117 पादतद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम्।।

शब्दार्थ : तद्भागवृत्ति– उसके एकदेश में, **याति**– प्राप्त होता है।

हिंदी अर्थ– पाद और उसके एकदेश (भाग) आदि में रहने से वह अनेक प्रकार का हो जाता है।

व्याख्या– पाद अर्थात् श्लोक का चतुर्थ भाग तथा उसके एक देश आदि में रहने से यमक के अनेक भेद बन जाते हैं।

प्रथमो द्वितीयादौ, द्वितीयस्तृतीयादौ, तृतीयश्चतुर्थे, प्रथमस्त्रिष्वपीति सप्त। प्रथमो द्वितीये तृतीयश्चतुर्थे प्रथमश्चतुर्थे द्वितीयस्तृतीये इति द्वे। तदेवं पादजं नवभेदम्। अर्धावृत्तिः श्लोकावृत्तिश्चेति द्वे।

प्रथम पाद द्वितीयादि (द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ पादों) के स्थान पर, द्वितीय पाद तृतीयादि (तृतीय व चतुर्थ) के स्थान पर, तृतीय पाद चतुर्थ स्थान पर और प्रथम पाद तीनों पादों के स्थान पर (आवृत्त हो जाता है) इस प्रकार सात भेद बनते हैं। प्रथम द्वितीय के स्थान पर तथा तृतीय चतुर्थ के स्थान पर या प्रथम चतुर्थ के स्थान पर और द्वितीय तृतीय के स्थान पर (आवृत्त) होने से दो (भेद बनते हैं)। इस प्रकार पाद (की आवृत्ति) से उत्पन्न नौ भेद होते हैं। अर्धावृत्ति तथा श्लोक की आवृत्ति ये दो भेद (मिलाकर कुल 11 भेद) हो जाते हैं।

द्विधा विभक्ते पादे प्रथमादिपादादिभागः पूर्ववद् द्वितीयादिपादादिभागेषु, अन्तभागोऽन्त भागेष्विति विंशतिर्भेदाः। श्लोकान्तरे हि नासौ भागावृत्तिः। त्रिखण्डे त्रिंशत्। चतुःखण्डे चत्वारिंशत्।

पाद के दो भागों में विभक्त करने पर प्रथम आदि पाद भाग पहले के समान द्वितीय पादादि भागों में और अंतिम भाग और अतिम भागों में (आवृत्त हो जाते हैं)। इस प्रकार बीस (20) भेद हो जाते हैं। दूसरे श्लोक में भागावृत्ति नहीं होती है। (पादावृत्ति के 11 भेदों के स्थान पर पादभागावृत्ति में 10 ही भेद रह जाते हैं।) तीन खंड करने पर तीस और चार खंड करने पर चालीस भेद होते हैं।

(यमक अलंकार के प्रकार निम्नलिखित हैं– सन्दंशयमक, युग्मयमक, महायमक, पादभागावृत्ति 'सन्दष्टक' यमक, आद्यान्तिक यमक, केवल उत्तरार्ध में समुच्चय, पूर्वार्ध–उत्तरार्द्ध दोनों में समुच्चय, अनियतपादभागावृत्तियमक इत्यादि हैं।)

इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

सन्दंश यमक का उदाहरण

"सन्नारीभरणामायमाराध्य विधुशेखरम्।
सन्नारीभरणोऽमायस्ततस्त्वं पृथिवीं जय।।

सती नारियों का भरण करनेवाली जो उमा अर्थात् पार्वती उसको प्राप्त करने वाले विधुशेखर शिव की आराधना करके शत्रुओं के हाथियों का विनाश करने वाले युद्ध के प्रवर्तक होकर उससे छल–कपटरहित आप पृथिवी पर विजय करें।

(यहाँ प्रथम चरण तृतीयपाद के स्थान पर आवृत्त हुआ है।)

युग्मयमक का उदाहरण-

"विनायमेनो नयनाऽसुखादिना विना यमेनोनयता सुखादिना।
महाजनोऽदीयत मानसादरं महाजनो दीयतमानसादरम्।।

यह हंस नामक जीवात्मा 'महाजनः' अर्थात् महात्मा और (1) उत्तम अवसरों पर शुभकर्मों में सम्मिलित होने वाले धर्मात्मा लोगों को प्रेरणा देने वाले, अथवा (2) शुभ कर्मों में विघ्न डालनेवाले दुष्टों का विनाश करने वाले को बिना अपराध (एना) के अपने स्थान यमलोक को ले जानेवाले प्राणों का भक्षण करनेवाले और सुखादि से रहित करने वाले यमराज ने मानस से प्राणरक्षण के लिए यत्न करनेवालों को दुख देकर अलग कर दिया।

(दो पादों की आवृत्ति में प्रथम पाद के द्वितीय पाद के स्थान पर तथा तृतीय पाद के चतुर्थ पाद के स्थान में आवृत्ति रूप 'युग्म' नामक यमक है।)

पादभागावृत्ति 'सन्दष्टक' यमक

"अनन्तमहिमव्याप्तविश्वां वेधा न वेद याम्।
या च मातेव भजते प्रणते मानवे दयाम्।।

अपनी अनन्त महिमा से समस्त विश्व को व्याप्त करने वाली जिस (देवी दुर्गा) को ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं ओर जो भक्तजनों पर माता के समान दया करती हैं (उस माता की चरण–रज हमारी इष्टसिद्धि करानेवाली हो)।

(उनमें पहिले पाद के दो खंड करके द्वितीय पाद के अंतिम अर्धभाग की चतुर्थ पाद के अंतिम अर्धभाग के स्थान पर आवृत्ति 'सन्दष्टक' नामक यमक का उदाहरण देते हैं।)

केवल उत्तरार्द्ध में समुच्चय

"सरस्वति! प्रसादं में स्थितिं चित्तसरस्वति।
सरस्वति! कुरुक्षेत्र कुरु क्षेत्रसरस्वति।।"

हे शरीर रूप पुण्यभूमि की सरस्वति! कृपा करो–प्रसन्न होओ और मेरे चित्त रूप सागर में अत्यंत भले प्रकार से स्थित होओ।

(इसके पूर्वार्द्ध में प्रथम पाद का आदि भाग 'सरस्वति' शब्द द्वितीय पाद के अन्त में आवृत्त हुआ है। श्लोक के उत्तरार्द्ध में तृतीय चरण का आदिभाग 'सरस्वति' चतुर्थ चरण के अन्त में आवृत्त हुआ है और तृतीय चरण का अंतिम भाग 'कुरुक्षेत्र' चतुर्थ चरण के आरंभ में आवृत्त हुआ है। इसलिए इसमें आद्यान्तिक यमक तथा अन्तादिक यमक दोनों का सन्निवेश है। अतः यह केवल उत्तरार्द्ध भाग में आद्यान्तिक अन्तादिक दोनों के समुच्चय का उदाहरण है।)

3. श्लेष अलंकार

सूत्रम् 17 "वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।

टिप्पणी

शब्दार्थ : वाच्यभेदेन– अर्थ का भेद होने से, **युगपद्**– साथ–साथ, **श्लिष्यन्ति**– मिल जाते हैं।

हिंदी अर्थ– अर्थ का भेद होने से भिन्न–भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब (परस्पर) मिल जाते हैं, तब वह श्लेष होता है और वह अक्षर आदि के भेद से आठ प्रकार का होता है।

व्याख्या– जब एक शब्द से दो भिन्न अर्थों का बोध कराया जाता है, अर्थ विचार की दृष्टि से वहाँ दो भिन्न अर्थों के बोधक दोनों शब्द जतुकाष्ठन्याय से मिलकर या चिपककर एक हो गए हैं। इसी प्रकार दो समानाकार शब्द एक बार उच्चारण किये जाने के कारण जहाँ एक शब्द के रूप में प्रतीत होते हैं वहां श्लेष अलंकार होता है।

'अर्थभेदेन शब्दभेदः' इति दर्शने 'काव्यमार्गे स्वरो न गण्यते। इति च नये वाच्यभेदेन भिन्ना अपि शब्दा यद् युगपदुच्चरणेन श्लिष्यन्ति भिन्नं स्वरूपमपह्नुवते स श्लेषः। स च वर्ण–पद–लिङ्ग–भाषा–प्रकृति–प्रत्यय–विभक्ति–वचनानां भेदाष्टधा।

'अर्थ के भेद के कारण शब्दों का भेद होता है।' इस सिद्धांत के अनुसार और 'काव्यमार्ग' में स्वर का विचार नहीं किया जाता है, इस नियम के अनुसार अर्थभेद के कारण भिन्न होने पर भी शब्द जब एक साथ उच्चारण के कारण जुड़ जाते हैं, अर्थात् अपने भिन्न–भिन्न स्वरूप को छोड़ देते हैं, तब वह श्लेष कहलाता है और वह (1) वर्ण, (2) पद, (3) लिंग, (4) भाषा, (5) प्रकृति, (6) प्रत्यय, (7) विभक्ति और (8) वचन के भेद से आठ प्रकार का होता है। इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

वर्णश्लेष का उदाहरण

"अलङ्कारः शंङ्काकरनकपालं परिजनो
विशीर्णाङ्गो भृङ्गी वसु च वृष एको बहुवयाः।
अवस्थेयं स्थाणोरपि भवति सर्वामरगुरो–
र्विधौ वक्रे मूर्ध्नि स्थितवति वयं के पुनरमी।।

भय का संचार करने वाली मनुष्यों का कपाल उनका अलंकार है। गलित अंगों वाला भृंगी (नामक शिवजी का विशेष गण) उनका सेवक है और वह अत्यंत बूढ़ा बैल उनकी संपत्ति है। समस्त देवताओं के मान्य गुरु शिवजी की भी ठेढ़े चंद्रमा के मस्तक पर स्थित होने पर यह दुरवस्था है, तब तुम्हारी तो गिनती ही क्या है।

(यहाँ 'विधौ' पद में वर्णश्लेष है। 'विधि' और 'विधु' दो अलग–अलग शब्द हैं। 'विधि' का अर्थ भाग्य और 'विधु' का अर्थ चंद्रमा है। सप्तमी एकवचन में दोनों 'विधौ' बनते हैं। केवल वर्णश्लेष का उदाहरण है। भाग्य के विपरीत होने पर बड़े व्यक्ति की तो बात ही क्या है। इस बात को शिवजी के उदाहरण द्वारा कवि प्रतिपादित कर रहा है।)

टिप्पणी

पदश्लेष का उदाहरण

"पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव!।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्।।

हे राजन्। इस समय हम दोनों का घर 1. 'पृथु–कार्तस्वरपात्र' (पहला अर्थ– बच्चों के रोने का स्थान, दूसरा अर्थ– बड़े–बड़े सोने के पात्रों से युक्त) 2. 'भूषितिनः शेषपरिजन' (पहला अर्थ– पृथ्वी पर लौटते हुए परिजनों वाला, दूसरा अर्थ– अलंकृत परिजनों वाला) और 3. 'विलसत्करेणुगहन' (पहला अर्थ– चूहों की मिट्टी से भरा हुआ, दूसरा अर्थ– झूमती हुई हथिनियों से भरा हुआ) होने से एक समान है।

(यहाँ 'पृथुकार्त्तस्वरपात्रम्' का एक अन्वय 'पृथुकानां बालानाम् आर्त्तस्वरस्य पात्रम्', दूसरा अन्वय 'पृथुनि महान्ति कार्त्तस्वरस्य सुवर्णस्य पात्राणि यस्मिन् तत्, होता है, 'भूषितनिःशेषपरिजनम्' का पहला अन्वय 'भुवि पृथिव्यामं' उषिताः सर्वे परिजना यस्मिन्' तथा दूसरा अन्वय राजा अर्थ में 'अलंकृता सर्वे परिजनाः यस्मिन्' होता है। 'विलसत्करेणुगहनम्' पद का पहला अन्वय याचक अर्थ में 'विलसन्ति इति विलसत्काः मूषकाः तेषां रेणुः' और राजा अर्थ में 'विलसन्तीभिः करेणुभिर्गहनम् व्याप्तम्' होता है।)

भाषाश्लेष का उदाहरण

"महदेसुरसन्धम्मे तमवसमासङ्गमागमाहरणे।
हरवहुसरणं तं चित्तमोहमवसरउमे सहसा।।"

हे आनंददायिनी गौरी! वेद–विद्या के उपार्जन में मेरे उस अनुराग को बनाए रखो और अवसर पर उस प्रसिद्ध चित्त के अज्ञान या मोह को तुरंत मिटा दो।

"मम देहि रसं धर्मे तमोवशात् आशां गमागमात् हरणेः।
हरवधु शरणं त्वं चित्तमोहोऽपसरतु मे सहसा।।"

दूसरा अर्थ– हे पार्वती! आप मेरी एक मात्र शरण हो, आप धर्म में मेरा प्रेम बनाये रखो और संसार से हमारी अज्ञानमयी आशा को मिला दो (जिससे) मेरा चित्त का अज्ञान तुरंत दूर हो जाए।

विभक्तिश्लेष का उदाहरण

"सर्वस्वं हर सर्वस्य त्वं भवच्छेदतत्परः।
नयोपकारसाम्मुख्यमायासि तनुवर्तनम्।।

पहला अर्थ– हे हर! आप सबके सर्वस्व हैं और भव का नाश करने वाले हैं। नीति और उपकार के अनुकूल शरीर व्यवहार को प्राप्त होते हैं।

दूसरा अर्थ– हे पुत्र! तू सबका सब कुछ छीन ले और काटने में तत्पर हो जा, किसी के साथ उपकार मत कर बल्कि पीड़ा देने वाला व्यवहार कर।

(यहाँ 'हर' और 'भव' पद दोनों पदों में विभक्ति श्लेष है। शिव पक्ष में दोनों संबोधन विभक्ति में सुबन्त पद हैं और दस्यु व्यापार की शिखा देने वाले पक्ष में ये दोनों तिङन्त क्रिया पद हैं।)

सूत्रम् 119 भेदाभावात्प्रकृत्यादेर्भेदोऽपि नवमो भवेत्।

हिंदी अर्थ– प्रकृति आदि का भेद न होने से नवम भेद भी हो सकता है।

टिप्पणी

संस्कृत व्याख्या— प्रकृति—प्रत्यय आदि का भेद न होने से पूर्वोक्त आठ प्रकार के सभंगश्लेषों से भिन्न अभंगश्लेष रूप नवम भेद भी हो सकता है। जैसे—

"योऽसकृत्परगोत्राणां पक्षच्छेदक्षणक्षमः।
शतकोटिदतां बिभ्रद्विबुधेन्द्रः स राजते।।"

पहला अर्थ— जो अनेक बार शत्रुवंशों के सहायकों से कुछ ही क्षण में नाश कर देने में समर्थ है। शतकोटि अपरिमित धन को देने वाला वह विद्वच्छिरोमणि देवराज के समान शोभित होता है।

दूसरा अर्थ— जो वज्र से नाश करने की सामर्थ्यवाला, अनेकों बार उत्तम पर्वतों (परगोत्राणाम्) के पंखों के काटने में क्षण में समर्थ है, वह देवराज इन्द्र शोभित होता है।

(यहाँ अभंगश्लेष द्वारा देवराज इन्द्र के साथ साम्य दिखलाकर राजा पर इन्द्रत्व का आरोप किया गया है।)

(अलंकारसर्वस्वकार ने अभंगश्लेष को अर्थालंकार माना है, शब्दालंकार नहीं। इसका खंडन करते हुए मम्मट कहते हैं कि 'बिना दो अर्थों की प्रतीति के श्लेष हो ही नहीं सकता है। इसलिए श्लेष के दोनों भेदों को अर्थालंकार माना जाता है। यह कहा जाए तो अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का भी उसी प्रकार अर्थमुखापेक्षित्व है इसलिए उनको भी अर्थालंकार क्यों नहीं माना जाता है?)

रसादि के व्यंजक रूप वाच्य अर्थ की अपेक्षा से ही अनुप्रास आदि की अलंकारता होती है और शब्दगुण तथा शब्द दोषों की गुण—दोषता अर्थमुखापेक्षिणी ही होती है। इसी प्रकार अर्थगत गुण, दोष तथा अलंकारों की स्थिति में भी शब्द की अपेक्षा रहती है, इसलिए उनको भी शब्दगत ही मानना चाहिए।)

इति काव्यप्रकाशे शब्दालंकारनिर्णयो नाम नवमः उल्लासः समाप्तः।

(इस प्रकार काव्यप्रकाश में शब्दालंकार निर्णय नाम का नवम उल्लास समाप्त हुआ।)

काव्यप्रकाशे दशमः उल्लासः

शब्दालंकारों की चर्चा नवम उल्लास में हो गई है। दशम उल्लास में अर्थालंकार और उभयालंकार की चर्चा है। जिनमें पाठ्यक्रम में शामिल अलंकारों का निरूपण निम्नलिखित प्रकार से है।

4. उपमा अलंकार

सूत्रम् 124 साधर्म्यमुपमा भेदे।

हिंदी अर्थ— भेद होने पर साधर्म्य उपमा है।

व्याख्या— उपमान और उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा अलंकार कहलाता है।

उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणादिकयोः साधर्म्यं भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध उपमा।

भेदग्रहणमनन्वयव्यवच्छेदाय।

उपमान और उपमेय का ही साधर्म्य होता है, कार्य–कारण आदि का नहीं, इसलिए उनका ही समानधर्म से संबंध उपमा कहलाता है। भेद का ग्रहण अनन्वय से पृथक करने के लिए है।

सूत्रम् 125 पूर्णा लुप्ता च।

हिंदी अर्थ– पूर्णोपमा और लुप्तोपमा।

व्याख्या– वह उपमा अलंकार पूर्णोपमा और लुप्तोपमा के भेद से दो प्रकार का होता है।

उपमानोपमेयसाधरणधर्मोपमाप्रतिपादकानामुपादाने पूर्णा। एकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा लोपे लुप्ता।

उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और उपमावाचक का ग्रहण होने पर पूर्णोपमा तथा (उन चारों में से) एक या दो या तीन का लोप होने पर लुप्तोपमा होती है।

सूत्रम् 126 साऽग्रिमा

श्रौत्यार्थी च भवेद्वाक्ये समासे तद्धिते तथा।।

शब्दार्थ : अग्रिमा– पहली।

हिंदी अर्थ– वह पहली श्रौती और आर्थी वाक्यगत, समासगत तथा तद्धितगत होती है।

व्याख्या– वह पूर्णोपमा श्रौती व आर्थी के भेद से दो प्रकार की होती है और दोनों ही (श्रौती व आर्थी) वाक्यगत, समासगत और तद्धितगत भेद से तीन–तीन प्रकार की और होती है। इस प्रकार पूर्णोपमा के 6 भेद हुए।

यथेवादिशब्दा यत्परास्तस्यैवोपमानताप्रतीतिरिति यद्यप्युपमानविशेषणान्येते तथापि शब्दशक्तिमहिम्ना श्रुत्यैव षष्ठीवत् सम्बन्धं प्रतिपादयन्तीति तत्सद्भावे श्रौती उपमा। तथैव 'तत्र तस्येव' इत्यनेनवार्थे विहितस्य वतेरुपादाने।

'तेन तुल्यं मुखम्' इत्यादावुपमेये एव 'तत्तुल्यमस्य' इत्यादौ चोपमाने एव 'इदं च तच्च तुल्यम्' इत्युभयत्रापि तुल्यादिशब्दानां विश्रान्तिरिति साम्यपर्यालोचनया तुल्यता प्रतीतिरिति साधर्म्यस्यार्थत्वात् तुल्यादिशब्दोपादाने आर्थी। तद्वत् 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिरिः।" इत्यनेन विहितस्य वतेः स्थितौ।

यथा, इव, या इत्यादि शब्द जिनके बाद आते हैं वह ही उपमान रूप से प्रतीत होता है, इसलिए यद्यपि वे उपमान के विशेषण होते हैं फिर भी शब्दशक्ति के प्रभाव से वे षष्ठी के समान श्रवण मात्र से ही संबंध का प्रतिपादन कर देते हैं इसलिए उनका प्रयोग होने से श्रौती होती है इसलिए 'तत्र तस्येव' इससे इवार्थ में विहित वति–प्रत्यय का ग्रहण होने पर भी (तद्धितगत श्रौती उपमा) होती है।

'उसके समान मुख है।' यहाँ उपमेय में ही प्रतीति होती है। 'वह इसके तुल्य है' इत्यादि में और 'यह तथा वह समान हैं' यहाँ दोनों (मुख व कमल) में तुल्यादि पदों की विश्रान्ति होती है। साधारण धर्म के संबंध का विचार करने पर तुल्यता की प्रतीति होती है, इसलिए साधर्म्य के इवादि के 'अर्थ' होने से तुल्यादि शब्दों का प्रयोग होने में 'आर्थी' होती है। इस प्रकार 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इससे वति–प्रत्यय के प्रयोग में भी आर्थी है। उदाहरण–

"स्वप्नेऽपि समरेषु त्वां विजयश्रीर्न मुञ्चति।
प्रभावप्रभवं कान्तं स्वाधीनपतिका यथा।।

टिप्पणी

"स्वाधीनपतिका के समान विजयश्री प्रभाव के कारण भूत आपको स्वप्न में भी युद्धों में नहीं छोड़ती है।"

(इसमें स्वाधीनपतिका 'यथा' यह वाक्यगत श्रौती उपमा मानी गयी है। 'स्वाधीनपतिका' उपमान है, 'विजयश्रीः' उपमेय, 'न मुञ्चति' यह अपरित्याग रूप साधारण धर्म और 'यथा' यह उपमावाचक शब्द है। अतः यह पूर्णोपमा है।)

"अवितथमनोरथप्रथनेषु प्रगुणगरिमागीतश्रीः।
सुरतरुसदृशः स भवानभिलक्षणीयः क्षितीश्वर न कस्य।।"

अव्यर्थ मनोरथ–मार्गों के विस्तार में प्रकृष्ट गुण गरिमा के कारण जिसकी समृद्धि प्रसिद्ध है इसलिए कल्पवृक्ष के समान हे राजन्! आप किसकी अभिलाषा या कामना के विषय नहीं हैं।

(इसमें 'सुरतरु' उपमान, 'क्षितीश्वर' उपमेय 'प्रगुणगरिमगीतश्रीत्व' तथा 'अभिलक्षणीयत्व' साधारणधर्म एवं 'सदृश' उपमावाचक शब्द हैं। 'सुरतरुसदृश' में उपमान तथा उपमावाचक पदों का समास होने से यह समासगा आर्थी उपमा का उदाहरण हुआ।)

(अब लुप्तोपमा के भेद बताते हैं।)

सूत्रम् 127 तद्वद्धर्मस्य लोपे स्यान्न श्रौती तद्धिते पुनः।

हिंदी अर्थ– उसी प्रकार धर्म का लोप होने पर तद्धितगत श्रौती को छोड़कर हो सकती है।

व्याख्या– पूर्णोपमा के छः भेदों के समान ही धर्म का लोप होने पर तद्धितगतश्रौती उपमा को छोड़कर धर्म लुप्ता उपमा छह के स्थान पर पांच प्रकार की होती है।

"धन्यस्यानन्यसामान्यसौजन्योत्कर्षशालिनः।
करणीयं वचश्चेतः! सत्यं तस्यामृतं यथा।।"

असाधारण सौजन्य के उत्कर्ष से शोभायमान उसका अमृत के समान वचन, हे चित्त! सचमुच पालन ही करना चाहिए।

(इसमें 'अमृत' उपमान और 'वचन' उपमेय है। 'परिणाम सुरसत्व' आदि उनका साधारण धर्म है, परंतु अत्यंत प्रसिद्ध होने के कारण उनका ग्रहण नहीं किया गया है। इसलिए यह धर्म लुप्ता का उदाहरण है। 'यथा' शब्द उपमावाचक है। उसके साथ समास न होने से यह वाक्यगा का उदाहरण हुआ। 'यथा' शब्द के प्रयोग से श्रौती उपमा हुई। अतः यह 'वाक्यगा' श्रौती धर्मलुप्ता' उपमा का उदाहरण है।

सूत्रम् 128 उपमानानुपादाने वाक्यगाऽथ समासगा।

शब्दार्थ : अनुपादाने– ग्रहण न करने पर।

हिंदी अर्थ– उपमान का ग्रहण न करने पर 1. वाक्यगा और 2. समासगा होती है।

टिप्पणी

व्याख्या– उपमान का ग्रहण न करने पर वाक्यगा तथा समासगा दो प्रकार की उपमान लुप्त उपमा होती है। जैसे–

"सकलकरणपरविश्रामश्रीवितरणं न सरसकाव्यस्य।
दृश्यतेऽथवा निशम्यते सदृशमंशांशमात्रेण।।

सरस काव्य के समान समस्त इंद्रियों की परम विश्रान्ति श्री का वितरण लेशमात्र भी न देखा और न सुना जाता है।

(यहाँ वर्णनीय होने से काव्य उपमेय है, उपमान का उपादान नहीं किया गया है, 'सकलकरणपरविश्रामश्रीवितरण' साधारणधर्म तथा 'सदृश' उपमावाचक पद है। उसका किसी के साथ समास न होने से यह वाक्यगा आर्थी उपमान लुप्ता का उदाहरण हुआ।)

सूत्रम् 129 वादेर्लोपे समासे वा कर्माधारक्यचिक्यङि।
कर्मकर्त्रोर्णमुलि

हिंदी अर्थ– 'वा' इत्यादि का लोप होने पर वह 1. समास में, 2. कर्म में क्यच्–प्रत्यय, 3. आधार में क्यच् प्रत्यय, 4. क्यङ् प्रत्यय, 5. कर्म उपपद रहते णमुल् प्रत्यय तथा 6. कर्ता रहते णमुल् प्रत्यय में होती है।

व्याख्या– 'वा' इत्यादि उपमावाचक का लोप होने पर वाचक लुप्तोपमा छह प्रकार की होती है, ये हैं– 1. समास में, 2. कर्म में क्यच् प्रत्यय, 3. आधार में क्यच् प्रत्यय, 4. क्यङ् प्रत्यय, 5. कर्म उपपद रहते णमुल् प्रत्यय तथा 6. कर्ता उपदद रहते णमुल् प्रत्यय।

सूत्रम् 130 एतद्विलोपे क्विप्समासगा।।

हिंदी अर्थ– इन (धर्म तथा वाचक) दो का लोप होने पर (1) क्विप्गत तथा (2) समासगत (दो प्रकार की द्विलुप्तोपमा होती है)।

सूत्रम् 131 धर्मोपमानयोर्लोपे वृत्तौ वाक्ये च दृश्यते।

हिंदी अर्थ– धर्म तथा उपमान का लोप होने पर समासगा तथा वाक्यगा (दो प्रकार की द्विलुप्ता उपमा) पायी जाती है।

सूत्रम् 132 क्यचि वाद्युपमेयासे

हिंदी अर्थ– वादि तथा उपमेय का लोप होने पर क्यच्गत।

व्याख्या– वादि अर्थात् उपमावाचक शब्द तथा उपमेय इन दो का लोप होने पर क्यच्गत एक प्रकार की द्विलुप्तोपमा होती है।

सूत्रम् 133 त्रिलोपे च समासगा।

हिंदी अर्थ– तीन का लोप होने पर समासगा होती है।

व्याख्या– तीन अर्थात् उपमावाचक, धर्म तथा उपमान का लोप होने पर त्रिलुप्ता उपमा केवल एक ही प्रकार की होती है।

5. रूपक अलंकार

सूत्रम् 138 तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।

हिंदी अर्थ— उपमान और उपमेय का जो अभेद है वह रूपक है।

व्याख्या— उपमान और उपमेय का जिनका भेद प्रसिद्ध है उनका सादृश्यातिशय—वश जो अभेद वर्णन है, वह रूपक अलंकार है।

टिप्पणी

अतिसाम्यादनपह्नुतभेदयोरभेदः।

अत्यंत सादृश्य के कारण, प्रसिद्ध भेद वाले का अभेद वर्णन रूपकालंकार कहलाता है।

सूत्रम् 139 समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा।।

हिंदी अर्थ— जब आरोपित शब्दतः उपात्त होते हैं तब समस्त वस्तु विषयक भेद होता है।

व्याख्या— जब आरोप्यमाण अर्थ शब्दतः उपात्त (श्रौत) होते हैं तब वह रूपक का समस्तवस्तु विषयक नामक भेद होता है।

आरोपविषया इव आरोप्यमाणा यदा शब्दोपात्तास्तदा समस्तानि वस्तूनि विषयोऽस्येति समस्तवस्तुविषयम्। आरोपिता इति बहुवचनमविवक्षितम्। यथा—

"ज्योत्सनाभस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थी—
न्यन्तर्द्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम्।
द्वीपाद् द्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले
न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लाञ्छनस्यच्छलेन।।

अत्र पादत्रये अन्तर्द्धानव्यसनरसिकत्वमारोपितधर्म एवेति रूपकपरिग्रहे साधकम—स्तीति तत्सङ्कराशङ्का न कार्या।

आरोप विषय (उपमेय) के समान जब आरोप्यमाण (उपमान) शब्दतः उपात्त (वाच्य) होते हैं तब समस्त वस्तुएं जिसका विषय हैं वह समस्त वस्तु विषयक रूपक होता है। 'आरोपिताः' यह बहुवचन अविवक्षित है। जैसे—

"चांदनी रूप भस्म से व्याप्त होने के कारण धवलवर्ण, तारिका रूप अस्थियों को धारण किये हुए और अन्तर्धान की रसिका यह रात्रि रूप कापालिकी चंद्रकला रूप कपाल में कलंक के बहाने से सिद्धांजनचूर्ण को रखे हुए द्वीप—द्वीपांतरों में घूमती फिरती है।

यहाँ अन्तर्धानव्यसनरसिकत्व आरोपित धर्म ही है इसलिए तीनों चरणों में रूपक मानने में (साधक) विनिगमक हेतु विद्यमान है इसलिए संकर की शंका नहीं करनी चाहिए।

सूत्रम् 140 श्रौता आर्थाश्च ते यस्मिन्नेकदेशविवर्ति तत्।

हिंदी अर्थ— जिसमें वे श्रौत आर्थ हों वह एक एकदेशविवर्ति होता है।

व्याख्या— जिस रूपक में वे अर्थात् आरोपित धर्म कुछ अंश में श्रौत अर्थात् शब्दतः उपात्त और कुछ अंश में आर्थ अर्थात् अर्थतः आक्षिप्त हों, वह एकदेशविवर्ति रूपक होता है।

केचिदारोप्यमाणाः शब्दोपात्ताः, केचिदर्थसामर्थ्यादवसेया इत्येकदेशविवर्त्तनाद् एकदेशविवर्ति। यथा—

"यस्य रणान्तःपुरे करे कुर्वतो मण्डलाग्रलताम्।
रणसम्मुख्यपि सहसा पराङ्मुखी भवति रिपुसेना।।

अत्र रणस्यान्तःपुरत्वमारोप्यमाणं शब्दोपात्तम्। मण्डलाग्रलतायाः नायिकात्वम्, रिपुसेनायाश्च प्रतिनायिकात्वम् अर्थसामर्थ्यादवसीयते इत्येकदेशे विशेषेण वर्तनादेकदेशविवर्ति।

कुछ आरोप्यमाण शब्द से गृहीत और कुछ अर्थ के सामर्थ्य से आक्षिप्त होते हैं इसलिए एकदेश में स्पष्ट रूप से विद्यमान होने से वह एकदेशविवर्ति होता है।

"जिसके रणरूप अन्तःपुर में खड्गलता को हाथ में पकड़ते ही युद्धोत्साह से बढ़ती हुई भी शत्रु सेना सहसा भाग खड़ी होती है।"

यहाँ 'रण' के ऊपर 'अन्तःपुरत्व' रूप आरोप्यमाण शब्दतः उपात्त है परंतु खड्गलता का 'नायिकत्व' तथा 'रिपुसेना' का 'प्रतिनायकत्व' अर्थतः आक्षिप्त होता है, इसलिए (रणान्तः पुररूप) एकदेश में स्पष्ट रूप से वर्तमान यह एकदेशविवर्ति (रूपक) है।

सूत्रम् 141 साङ्गमेतत्

हिंदी अर्थ– यह सांग रूपक है।

व्याख्या– यह समस्त वस्तु विषय तथा एकदेशविवर्ति सांग (सावयव) रूपक है।

सूत्रम् 142 निरङ्गन्तु शुद्धम्

हिंदी अर्थ– शुद्ध निरंग है।

व्याख्या– इसके विपरीत शुद्ध अर्थात् अंगांगिभाव से रहित, अन्य रूपकों में अमिश्रित केवल एक अद्वितीय रूपक निरंग रूपक कहलाता है।

सूत्रम् 143 माला तु पूर्ववत्।

हिंदी अर्थ– पूर्ववत् माला होता है।

व्याख्या– पूर्ववत् मालोपमा के समान माला रूपक होता है। इसमें एक आरोप विषय पर बहुतों का आरोप होता है।

सूत्रम् 144 "नियतारोपणोपायः स्यादारोपः परस्य यः।
तत् परम्परितं शिलेष्टे वाचके भेदभाजि वा।।"

शब्दार्थ : भेदभाजि– अश्लिष्ट।

हिंदी अर्थ– श्लिष्ट अथवा अश्लिष्ट शब्दों के होने पर जो अन्य का आरोप नियत अन्य अर्थ के आरोप का कारण होता है वह परंपरित रूप (श्लेषमूलक तथा अश्लेषमूलक दो प्रकार का) होता है।

"अलौकिकमहालोकप्रकाशितजगत्त्रयः।
स्तूयते देव! सद्वंशमुक्तारत्नं न कैर्भवान्।।

लोकोत्तर महादीप्ति से तीनों लोकों को प्रकाशित करने और उत्तम वंश के मुक्तारत्न रूप आपकी कौन प्रशंसा नहीं करता है।

(यहाँ आरोप विषय उत्तम कुल तथा आरोप्यमाण उत्तम बांस दोनों को वंश रूप एक ही श्लिष्ट शब्द से कहा गया है उसके द्वारा कुल (वंश) के ऊपर बांस (वंश) का आरोप किया गया है। यह आरोप राजा के ऊपर मुक्तारत्न के आरोप का निमित्त होता है इसलिए यह अश्लिष्ट परंपरित रूपक का उदाहरण है। इसमें अनेक आरोप नहीं किये गए हैं इसलिए यह अमाला रूप केवल श्लिष्ट परंपरित रूपक का उदाहरण है।)

टिप्पणी

6. उत्प्रेक्षा अलंकार

सूत्रम् 137 सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।

हिंदी अर्थ- प्रकृति की सम के साथ संभावना उत्प्रेक्षा कहलाती है।

व्याख्या- प्रकृत अर्थात् वर्ण्य उपमेय की सम अर्थात् उपमान के साथ संभावना उत्प्रेक्षा कहलाती है।

"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता।।"

इत्यादौ व्यापनादि लेपनादिरूपतया सम्भावितम्।

अंधकार अंगों को लीप सा रहा है, आकाश काजल की वृष्टि सी कर रहा है और दुष्ट–पुरुष की सेवा के समान दृष्टि विफल सी हो गयी है।

इत्यादि में व्यापन आदि लेपनादि रूप से संभावित (किये गए हैं)।

7. अर्थान्तरन्यास अलंकार

सूत्रम् 164 सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

हिंदी अर्थ— सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न के द्वारा जो समर्थन किया जाता है, वह अर्थान्तरन्यास साधर्म्य और वैधर्म्य से होता है।

व्याख्या— सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है, वह अर्थान्तरन्यास अलंकार साधर्म्य और वैधर्म्य के भेद से दो प्रकार का होता है। जैसे—

"निजदोषावृतमनसामतिसुन्दरमेव भाति विपरीतम्।
पश्यति पित्तोपहतः शशिशुभ्रं शंखमपि पीतम्।।

अपने ही दोष से जिसका चित्त व्याप्त हो गया है उनको अत्यंत सुंदर वस्तु भी बुरी जान पड़ती है। पित्त से पीड़ित को चंद्रमा के समान शुभ्र शंख भी पीला दिखलायी पड़ता है।

(यहाँ 'अपने मन में दोष होने पर अच्छी बात भी बुरी मालूम होती है' इस सामान्य सिद्धांत का समर्थन 'पीलिया रोग से पीड़ित रोगी को शंख भी पीला दिखलायी पड़ता है' इस विशेष उदाहरण के द्वारा उदाहरण दिया गया है।)

"अहो हि मे बह्वपराद्धमायुषा यदप्रियं वाच्यमिदं मयेदृशम्।
त एव धन्याः सुहृदः पराभवं जगत्यदृष्ट्वैव हि ये क्षयं गताः।।"

अरे, मेरी लंबी आयु ने यह बड़ा अपराध किया है कि जिससे मुझे इस प्रकार का अप्रिय कहना पड़ रहा है। वे ही वास्तव में धन्य हैं जो संसार में सुहृद् के पराभव को देखे बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

8. विभावना अलंकार

सूत्रम् 161 क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।।

हिंदी अर्थ— कारण का प्रतिषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति होने पर विभावना अलंकार होता है।

व्याख्या— 'क्रियतेऽनयेति क्रिया' इस व्युत्पत्ति के अनुसार यहाँ क्रिया शब्द कारण का बोधक है। इस कारण का अभाव या निषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति का वर्णन होने पर विभावना अलंकार होता है।

हेतुरूपक्रियाया निषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना। यथा—

"कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्त रुजमलिकुलैरदष्टापि।
परिवर्त्तते स्म नलिनीलहरीभिरलोलिताप्यघूर्णत सा।।"

हेतुरूप क्रिया का निषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति विभावना है। जैसे—

"खिली हुई लताओं से ताडित न होने पर भी वह (नायिका) पीड़ा को प्राप्त हो रही थी। भ्रमर कुल से न काटे जाने पर भी तड़प रही थी और कमलिनियों से युक्त लहरों के चक्कर में पड़े बिना भी चक्कर खा रही थी।"

(यहाँ बिना कारण के ही कार्य की उत्पत्ति हो रही है।)

9. विशेषोक्ति अलंकार

सूत्रम् 161 विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।

हिंदी अर्थ— संपूर्ण कारणों के होने पर फल का न कहना विशेषोक्ति है।

मिलितेष्वपि कारणेषु कार्यस्याकथनं विशेषोक्तिः। अनुक्तनिमित्ताः उक्तनिमित्ता अचिन्त्यनिमित्ता च। क्रमेणोदाहरणम्—

कारणों के एकत्र होने पर कार्य का कथन न करना विशेषोक्ति है। वह 1. अनुक्तनिमित्ता, 2. उक्तनिमित्ता तथा 3. अचिन्त्यनिमित्ता के भेद से तीन प्रकार की होती है। क्रम से उदाहरण—

(क) **निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते।**
श्लथीकृताश्लेषरसे भुजंगे चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सा।।

निद्रा खुल जाने पर, सूर्य का उदय हो आने पर, सखियों के दरवाजे पर आ जाने पर और उपपति (भुजंग) के आलिंगन के रस को त्याग देने पर भी वह आलिंगन से विचलित नहीं हुई।

(ख) **कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।**
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे।।

जो कपूर के समान भस्म हो जाने पर भी जन—जन में शक्तिमान हो गया है। उस अप्रत्याहत पराक्रम वाले कामदेव को नमस्कार है।

(ग) **स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः।**
हरताऽपि तनुं यस्य शम्भुना न बलं हतम्।।

फूलों के अस्त्र धारण करने वाला वह अकेला ही तीनों लोकों को पराजित कर देता है जिसके शरीर का अपहरण करके भी शिवजी उसकी शक्ति का विनाश नहीं कर पाए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

4. 'वर्णसाम्यमनुप्रासः' यह लक्षण कौन–से अलंकार का है?
   (क) अनुप्रास (ख) यमक
   (ग) रूपक (घ) उत्प्रेक्षा
5. श्लेष अलंकार के कितने भेद बताए गए हैं?
   (क) 4 भेद (ख) 8 भेद
   (ग) 5 भेद (घ) 7 भेद
6. 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः' यह लक्षण किस अलंकार का है?
   (क) यमक (ख) उत्प्रेक्षा
   (ग) रूपक (घ) उपमा

5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)

5.5 सारांश

'छन्दस्' शब्द के दो अर्थ हैं-(1) आच्छादन तथा (2) आह्लादन। 'छन्दांसि छादनात्' अर्थात् जिसके द्वारा भाव अथवा रस को आच्छादित किया जाता है, वह छन्द कहलाता है। छन्दों में गणों को जानने का एक प्रकार यह भी है-

यमाताराजभानसलगम्।

इसमें 8 गणों और लघु गुरु का नाम है, जो भी गण गिनना हो, उसके लिए उस गण के अक्षर को लेकर आगे के दो वर्ण और ले लें। जैसे- मगण-मातारा, तीनों गुरु हैं, नगण-नसल, तीनों लघु हैं।

प्रकृति स्वयं अलंकार की प्रेमी होती है और अपने अंग-प्रत्यंग को नाना प्रकार से सजाने में, नये रंगों से रंगीन बनाने में, उसे बड़ा आनन्द आता है। कवि भी प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने वाला भावुक व्यक्ति होता है। वह भी अपनी रचनाओं को अलंकारों से सजाने का प्रेमी तथा अभ्यासी होता है। वह जो कुछ भी लिखता है उसे अवश्यमेव सजाता है। सुन्दर बनाने के लिए नयी-नयी सामग्री एकत्रित करता है। अलंकार में जो वस्तु जीवनी

शक्ति डालकर उसे सजीव तथा आकर्षक बनाती है, वह चमत्कार के नाम से प्रख्यात है। अलंकार का अलंकारत्व तभी है जब वह चमत्कार से मण्डित हो।

इसी चमत्कार के दर्शन वाले अनुप्रास, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, विशेषोक्ति, इत्यादि अलंकारों की स्पष्ट परिभाषाएं एवं सटीक उदाहरण मम्मटाचार्य ने काव्य प्रकाश के नवें व दसवें उल्लास में दिए हैं।

टिप्पणी

5.6 मुख्य शब्दावली

- **ल** – लघु
- **ग/गु** – गुरु
- **यति** – विराम, अल्पकालिक विश्राम
- **गण** – तीन स्वरों का समूह
- **मगण** – तीनों गुरु स्वरों का समूह (ऽऽऽ)
- **गुरुमध्य** – जगण (।ऽ।)
- **अन्तगुरु** – सगण (।।ऽ)
- **त्रिलघु** – नगण (।।।)
- **आदिगुरु** – भगण (ऽ।।)
- **आदिलघु** – यगण (।ऽऽ)
- **लमध्य** – रगण (ऽ।ऽ)
- **अन्तलघु** – तगण (ऽऽ।)
- **राज्य लक्ष्मी** – धन–वैभव।
- **रेणु** – धूल।
- **विष** – जहर।
- **मुक्तारत्नम्** – मुक्तारत्नरूप।
- **कौमुदी** – चाँदनी।
- **कर्पूर इव** – कर्पूर के समान।
- **त्रिरूप** – तीन प्रकार।
- **लिम्पतीव** – लीप सा रहा है।

5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुष्टुप् छन्द की परिभाषा लिखिए?
2. इन्द्रवज्रा छन्द का उदाहरण दीजिए?
3. वंशस्थ छन्द का परिचय दीजिए।

टिप्पणी

4. मन्द्राक्रान्ता छन्द के विषय में बताइए?
5. स्रग्धरा छन्द पर संक्षेप में प्रकाश डालिए?
6. रूपक अलंकार पर प्रकाश डालिए।
7. अनुप्रास अलंकार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
8. उत्प्रेक्षा अलंकार का वर्णन कीजिए।
9. विशेषोक्ति अलंकार का वर्णन कीजिए।
10. उपमा अलंकार को लक्षण सहित बताइए?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित अलंकारों को लक्षण व उदाहरणों सहित बताइए–
   उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक, विभावना, उपमा, यमक, विभावना, विशेषाक्ति।

5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *काव्यप्रकाश,* मम्मट, टीकाकार–वामन झलकीकर, भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना।
2. *काव्यप्रकाश,* व्याख्याकार– आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमंडल लि. वाराणसी।
3. *काव्यप्रकाश,* सम्पा. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ।